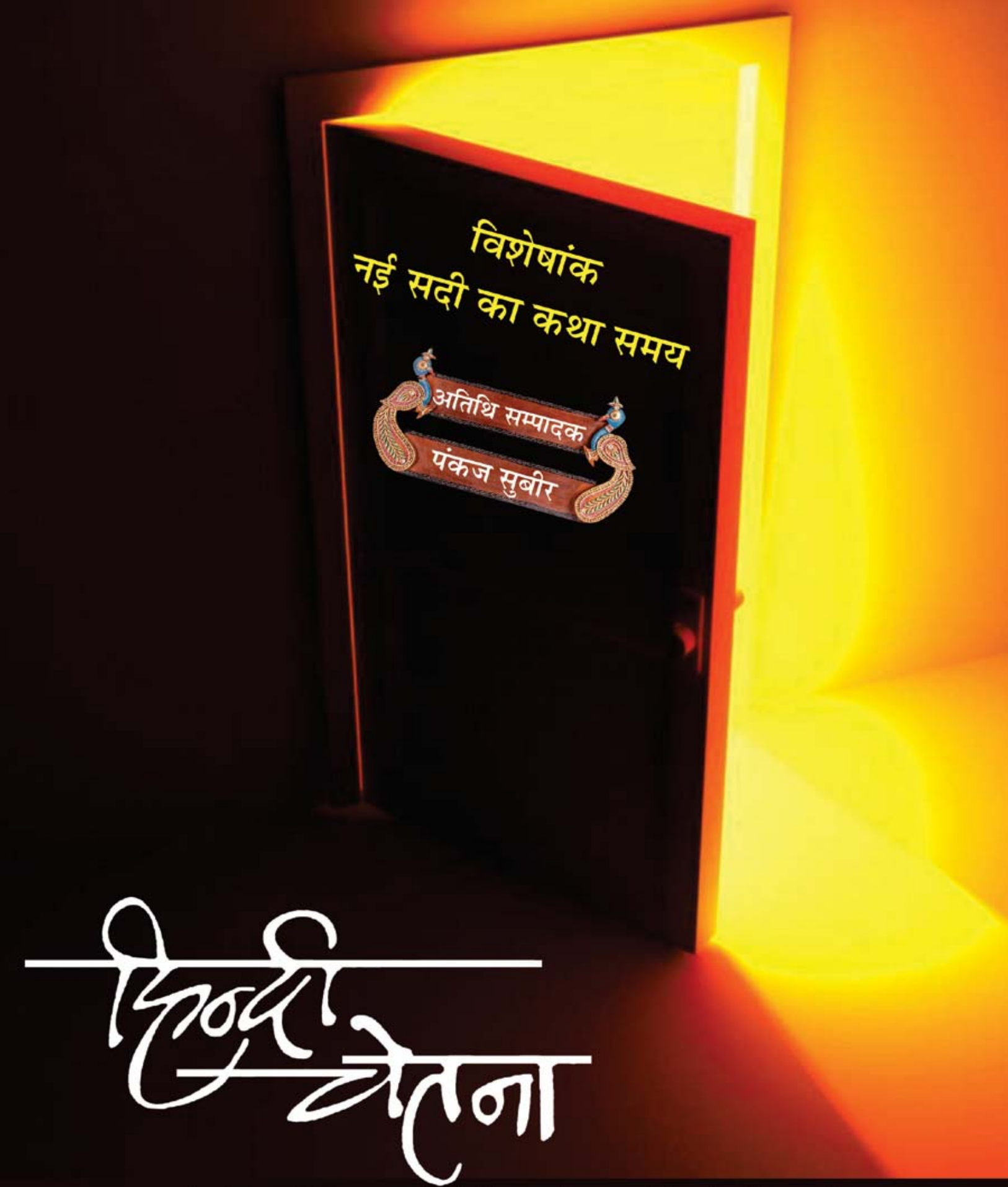

हिन्दी चेतना

हिन्दी प्रचारिणी सभा : (कैनेडा) की अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna: International quarterly magazina of Hindi Pracharini Sabha, Canada
वर्ष १५, अंक ६०, अक्टूबर २०१३ • Year 15, Issuue 60, October 2013

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक
श्याम त्रिपाठी
कैनेडा

सम्पादक
सुधा ओम ढींगरा
अमेरिका

सह-सम्पादक
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', भारत
पंकज सुबीर, भारत
अभिनव शुक्ल, अमेरिका

परामर्श मंडल
पदमश्री विजय चोपड़ा, भारत
कमल किशोर गोयनका, भारत
पूर्णिमा वर्मन, शारजाह
अफ़रोज़ ताज, अमेरिका
निर्मला आदेश, कैनेडा
विजय माथुर, कैनेडा

सहयोगी
सरोज सोनी, कैनेडा
राज महेश्वरी, कैनेडा
श्रीनाथ द्विवेदी, कैनेडा

विदेश प्रतिनिधि
डॉ. एम. फ़िरोज़ ख़ान, भारत
चाँद शुक्ला 'हदियाबादी', डेनमार्क
अनीता शर्मा, शिंघाई, चीन
दीपक 'मशाल', यूके
अमित कुमार सिंह, भारत
अनुपमा सिंह, मस्कट
रमा शर्मा, जापान

वित्तीय सहयोगी
अश्विनी कुमार भारद्वाज, कैनेडा

आवरण : शहरयार अमजद ख़ान
shaharyar7668@gmail.com
डिज़ायनिंग : सनी गोस्वामी, सीहोर
sameergoswami80@gmail.com
अंदर के चित्र : गीता घिलोरिया

हिन्दी चेतना

(हिन्दी प्रचारिणी सभा कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका)
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

वर्ष : १५, अंक : ६०
अक्टूबर-दिसम्बर २०१३
मूल्य : ५ डॉलर ($5)

विशेषांक : नई सदी का कथा समय

अतिथि सम्पादक : पंकज सुबीर

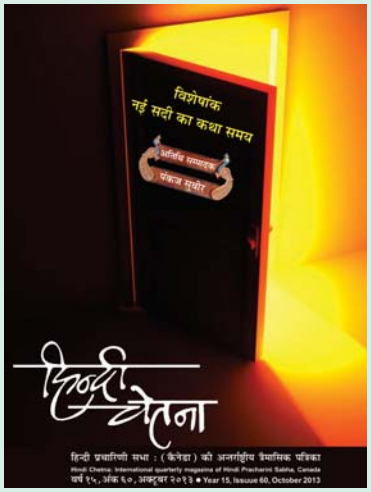

नई सदी का द्वार खुल रहा, नई रोशनी आती है,
नई चेतना नए स्वरों को, अक्षर अक्षर गाती है,
नई फसल उग रही खेत में, नई कोकिला कूक रही,
नया सृजन है, नई उमंगें, नई प्रेम की पाती है।

-अभिनव शुक्ल

HINDI CHETNA

6 Larksmere Court, Markham Ontario, L3R 3R1
Phone : (905) 475-7165, Fax : (905) 475-8667
e-mail : hindichetna@yahoo.ca
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. ShiamTripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi Literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets, and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

विशेषांक
नई सदी का कथा समय

इस अंक में

इस अंक में.....
सम्पादकीय
श्याम त्रिपाठी 4

उद्‌गार
(पाठकों के पत्र) 5

अतिथि सम्पादक
की क़लम से
पंकज सुबीर 10

नई सदी के तेरह साल
आलेख
गौतम राजरिशी 16

चित्रित विचित्र
आलेख
मनीषा कुलश्रेष्ठ 24

कहानी
टॉवर ऑफ सायलेंस
मनोज रूपड़ा 26

हिन्दी कहानी
आलेख
वैभव सिंह 40

समकालीन हिन्दी कहानी
परिचर्चा
विवेक मिश्र 44

प्रेम गली अति सांकरी
आलेख
विमल चन्द्र पाण्डेय 52

कहानी
अति सूधो सनेह को.....
मंजुलिका पाण्डेय 56

दस कहानियाँ
नई सदी की:
पसंद लेखकों की 64

प्रवासी रचनाकार:
एक गोलमेज
परिचर्चा 68

इक्कीसवीं सदी
आलेख
तेजेन्द्र शर्मा 80

यह आज के समय
आलेख
अंकित जोशी 88

कहानी
आग में गर्मी कम क्यों है
सुधा ओम ढींगरा 90

प्रवासी हिन्दी साहित्य
आलेख
अर्चना पैन्यूली 98

यह जिन्दगी के मुहाने पर
आलेख
साधना अग्रवाल 101

कहानी
क़ब्र का मुनाफ़ा
तेजेन्द्र शर्मा 104

पुस्तकें मिलीं 110
चित्र काव्यशाला 111
विलोम चित्र काव्यशाला 111
समाचार 112

आख़िरी पन्ना
सुधा ओम ढींगरा 113

हिन्दी चेतना को पढ़िये, पता है :
http://hindi-chetna.blogspot.com
हिन्दी चेतना को आप
ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :
Visit our Web Site :
http://www.vibhom.com/hindichetna.html
हिन्दी चेतना का सदस्यता फार्म
यहाँ उपलब्ध है
http://www.shabdankan.com
http://www.vibhom.com/hindichetna.html

'हिन्दी चेतना' सभी लेखकों का स्वागत करती है कि आप अपनी रचनाएँ प्रकाशन हेतु हमें भेजें । सम्पादकीय मण्डल की इच्छा है कि 'हिन्दी चेतना' साहित्य की एक पूर्ण रूप से संतुलित पत्रिका हो, अर्थात साहित्य के सभी पक्षों का संतुलन । एक साहित्यिक पत्रिका में आलेख, कविता और कहानियों का उचित संतुलन होना आवश्यक है, ताकि हर वर्ग के पाठक वर्ग पढ़ने का आनंद प्राप्त कर सकें । इसीलिए हम सभी लेखकों को आमंत्रित करते हैं कि हमें अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें । अगले अंक के लिए अपनी रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेज दें । अपना चित्र भी साथ अवश्य भेजें ।

रचनाएँ भेजते समय निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखें :

- हिन्दी चेतना जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी ।
- प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा ।
- पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर लिखित रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी ।
- रचना के स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा ।
- प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा ।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं ।
संपादक मंडल तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
सम्पादकीय

नव विशेषांक इस सदी के कथा साहित्य को समर्पित है

'हिन्दी चेतना' का सर्वदा यही उद्देश्य और प्रयास रहा है कि साफ़ सुथरे, स्वस्थ, स्तरीय साहित्य को समेटकर पाठकों तक पहुँचाया जाए और साथ ही हिन्दी के नए लेखकों को मंच प्रदान किया जाए। यह तो सर्वविदित है कि, हर वर्ष हिन्दी चेतना, अक्तूबर में विशेषांक निकालती है। पिछले वर्ष हमने 'लघुकथा' पर विशेषांक प्रकाशित किया था, जिसका श्रेय लघुकथा डाट कॉम के संपादक द्वय रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' और सुकेश साहनी को जाता है।

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। प्रकृति इसका सबसे उत्तम उदहारण है। ऋतुओं का परिवर्तन मानव जीवन में भी परिवर्तन ले आता है। मानवीय संवेदनाओं और दिनचर्या में भी इस परिवर्तन का प्रभाव दिखाई देता है। फिर हर सदी के साहित्य में परिवर्तन कैसे नहीं आएगा? नव विशेषांक इस सदी के कथा साहित्य को समर्पित है। हमारे सह संपादक पंकज सुबीर; जो स्वयं एक प्रतिष्ठित कथाकार और उपन्यासकार हैं और उन्हें कई राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है, इस विशेषांक के अतिथि संपादक हैं। इस अंक में नई सदी के कथा साहित्य में आए परिवर्तनों की पड़ताल की गई है। कहानियाँ, आलेख, परिचर्चाएँ और बहुत सी पठनीय सामग्री है; जो पंकज सुबीर के निर्देशन में तैयार हुई है।

इक्कीसवीं सदी में मनुष्यता और साहित्य के समक्ष संकट गहरे हो रहे हैं। नए-नए प्रश्न और चुनौतियाँ हमें घेर रही हैं। सहनशीलता लुप्त सी हो रही है। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली बात चरितार्थ हो रही है। बाज़ारवाद के विरुद्ध लिखने वालों पर ही बाज़ारवाद का भूत सवार हो गया है। हर चीज़ तत्काल होनी चाहिए, यही मानसिकता व्याप्त हो रही है। हमारे लेखक अंग्रेज़ी के लेखकों का अनुकरण कर रहे हैं; जहाँ पर लेखक, प्रकाशक अपनी कृति को बाज़ार में उतारने के लिए अफवाहों, आत्म प्रशंसा और सेक्स प्रदर्शन आदि का सहारा लेकर अपनी कृति को उसी साँचे में ढाल लेते हैं। इसके सहारे उन्होंने अपना बाज़ार स्थापित कर लिया है। खेद की बात यह है हम हिन्दी वालों के पास न तो कोई बाज़ार है, और न ही कोई प्रोडक्ट। दुर्भाग्य से ऐसे ही कारनामों को प्रसिद्धि भी मिल रही है। लोगों के पास अच्छी रचनाओं पर बातचीत करने का समय नहीं, लेकिन घटिया, भद्दे, अश्लील और घिनौने विषयों पर अपनी ऊर्जा नष्ट कर देते हैं। निराशाजनक स्थिति है पर साथ ही उच्च स्तरीय साहित्य भी सृजित हो रहा है, उसी साहित्य पर चर्चा है इस विशेषांक में है।

इस अंक में आपको प्रवासी कहानीकारों की कहानियों पर विमर्श मिलेगा। उनके विचारों से भी आप परिचित होंगें। आज भारत के बाहर भी एक भारत बसता है; जिसके निवासी सच्चे माने में भारतीय हैं। ये भारतवंशी 19वीं शताब्दी से ही अंग्रेज़ों के द्वारा उनके नए उपनिवेशों में मज़दूरी करवाने के लिए गुलामों की तरह लाये गए थे और वे एक रोटी और लंगोटी के साथ वहाँ गए थे और फिर कभी भारत वापस न जा सके। उनमें से कुछ लोग पढ़े-लिखे रहे होंगे और उन्होंने अपनी भाषा और संस्कृति को बचा कर पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रखा। मॉरिशस, गयाना, सूरीनाम, फीजी, इत्यादि देशों में आज भी भारतवंशी हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान को हृदय से लगाए हुए हैं और हिन्दी साहित्य की शोभा बढ़ा रहे हैं।

दूसरा प्रवासी वर्ग जो अमेरिका, कनाडा, यू.के., इटली, रूस, नार्वे, स्वीडन, नीदरलैंड, फ्रांस, डेनमार्क और आस्ट्रेलिया आदि देशों में बसा हुआ है। कुछ पारिवारिक मजबूरी से और कई स्वेच्छा से इन देशों में रहने आए हैं; इन देशों की अपनी मूल भाषा है और हिन्दी विदेशी भाषा के रूप में जानी जाती है। 21 वीं सदी में हिन्दी साहित्य में कई अच्छे कथाकारों ने इन्हीं देशों से अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। कुछ लेखक तो भारत की मुख्यधारा का हिस्सा हैं। भाषा शैली में नए मापदण्ड स्थापित कर रहे हैं। भारत से इतर देशों के कहानीकार, जीवन की यातनाओं, संघर्ष, विपरीत परिस्थितियों तथा विसंगतियों को; जो उन्हें नए देशों में जाकर झेलनी पड़ीं और नए सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक चुनौतियों से जब उनका सामना हुआ, तो लेखनी उनका सम्बल बनी। लेखकों की पीड़ा का सच्चा चित्रण उनकी कहानियों में मिलता है। इन कथाकारों की भाषा में स्थानीय भाषा के शब्द भी हैं; जो प्रस्तुति और भावों में आर्द्रता प्रदान करते हैं। संवेदनाएँ वहीं हैं; जो हमें स्वदेशी कहानियों में मिलती हैं। हाँ विषय और संदर्भ पृथक होना स्वाभाविक हैं। पर इनका हिन्दी साहित्य पर उतना ही अधिकार हैं; जितना कि भारत के साहित्यकारों का। आख़िरकार वे है तो भारतीय ही। रोटी-रोज़ी ने देश छुड़वाया पर भाषा तो नहीं छोड़ी। वैश्विक हिन्दी लेखक उसी भाषा में लिखते हैं, जिसमें स्वदेशी लेखक लिख रहे हैं।

अंक आपके हाथों में है। हमें आशा है कि यह विशेषांक आपको पसंद आएगा और आपकी प्रतिक्रियाओं का इंतज़ार रहेगा।

आपका,

श्याम त्रिपाठी

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
उद्‌गार

कारवाँ के साथ नए हमराही जुड़ते जाएँ

'हिन्दी चेतना' के दोनों अंक (जनवरी-मार्च तथा अप्रैल-जून २०१३) मिले । पढ़कर प्रसन्नता के साथ-साथ जो सुकून मिला, उसे शब्दों में बांधना मुश्किल है। सभी आलेख, कविताएँ, हाइकु तथा कहानियाँ साहित्यक दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। आपकी इस पत्रिका ने मुझे यहाँ बैठे (आस्ट्रेलिया) ही देश की झलक दिखलाई। अप्रैल अंक में नव्यवेश नवराही ने दो पंजाबी लेखकों की कविताओं का हिन्दी में अनुवाद करके हिन्दी के पाठकों से उनका परिचय करवाया, बहुत अच्छा लगा। सुधा ओम ढींगरा जी का लिखा आखिरी पन्ना 'महिलाएँ स्वयं अपना सम्मान करना सीखें' आख़िरी पन्ना न होकर पहला पन्ना बन गया ।

जनवरी अंक में लिखा सुधा जी का आख़िरी पन्ना मेरे हृदय में अंकित हो गया, जो भारतीय तथा विदेश में रहने वाले लेखकों की रचनाओं को 'हिन्दी चेतना' में प्रकाशित करने के बारे में था । सुधा जी को जो फोन आया कि 'हिन्दी चेतना' विदेशी पत्रिका हो कर भारत की तरफ़ क्यों देखती है ? शायद फ़ोन करने वाले को ये मालूम नहीं है कि जो हिन्दी भाषा के प्रसार के लिए इतना कुछ कर रहा है उसका निवास भले ही विदेश में हो, मगर जी वो भारत में ही रहा है। देश से आते समय जो मुट्ठी भर धूल अपने कपड़ों पर अपने साथ लाया है वो उसे कभी अपने से अलग नहीं करता भले ही उसे यहाँ कोई माडर्न न समझे। वह विदेश में 'देसी' बनकर जीना ज़्यादा पसंद करता है, जबकि भारत में रहने वाले अपने आपको माडर्न कहलवाकर ज़्यादा ख़ुशी महसूस करते हैं। भले ही इसमें छपने वाले रचनाकार विदेश में रहते है, मगर सबसे पहले वो भारतीय हैं।

मुझे तो यह कहना बिलकुल भी अच्छा नहीं लगता, जब कोई हिन्दी या पंजाबी रचनाकारों को दो अलग अलग भागों में विभाजित करके 'भारत तथा विदेशों के रचनाकार' के नाम से बुलाता है। भई हम हिन्दी-पंजाबी अपनी ही भाषा में लिख रहे है अपने ही लोगों के बारे में लिख रहे है तो हम विदेशी रचनाकार कैसे बन गए ? भारत में रहने वाले बहुत से लेखक ये भ्रम अपने भीतर पाले हुए हैं जो उनकी समझ से बाहर की बात है, मुझे तो लगता है ऐसे लोगों को साहित्य की जानकारी ही नहीं है, जो अपनी ही भाषा में लिखने वालों की संवेदनाएँ समझ नहीं पाए और उनको विदेशी रचनाकार होने का दर्जा देते हैं।

सुधा जी के साथ उनकी पूरी टीम इस महान कार्य (हिन्दी चेतना का प्रकाशन) के लिए बधाई के पात्र हैं । आपके कारवाँ के साथ नए हमराही जुड़ते जाएँ यही हमारी कामना है !

डॉ. हरदीप कौर सन्धु (बरनाला-पंजाब)

कहानियाँ, लेख और कविताएँ पठनीय

'हिन्दी चेतना' के जुलाई-सितम्बर के अंक में श्री नरेन्द्र कोहली की कहानी 'वरांडे का वह कोना' पढ़कर बहुत निराशा हुई। वे एक विख्यात और श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। उपन्यास की शैली में लिखी यह कहानी एक पर्वतीय झरने के सामान उछलती, कूदती आरम्भ होती है और अंत में एक रेगिस्तान में पहुँचकर सूख जाती है, मर जाती है। इस अंक में प्रकाशित अन्य कहानियाँ, लेख और कविताएँ पठनीय और सुन्दर हैं। बधाई, धन्यवाद और शुभकामनाओं सहित।

महेन्द्र दवेसर 'दीपक' (यूके)

स्वप्नदर्शी साहित्यिक पत्रिका

'हिन्दी चेतना' एक विशुद्ध स्वप्नदर्शी साहित्यिक पत्रिका है। जिसका साहित्यिक चिंतन साहित्यिक अँखुओं की फुलवारी का बागवान है। अबके जब विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ अनेकादी 'वाद की व्याधियों' से ग्रस्त है और स्वयं ही अपनी साहित्यिक चेतना का अप्राकृतिककरण करती दिखती है। इस सन्दर्भ में 'हिन्दी चेतना' अपने विशिष्ट स्थान के साथ भीड़ से अलग दिखती है।

हाँ मैं यह नहीं जानता कि आज के साहित्यिक दौर में 'हिन्दी चेतना' की लोकप्रियता का क्या क्रमांक है ? सच कहूँ तो मैं यह जानना भी नहीं चाहता ताकि 'हिन्दी चेतना' अपने मूल प्रभाव के साथ मेरी चेतना में रहे।

यहाँ मैं एक प्राइवेट कन्फेशन का खुलासा करना चाहूँगा कि जब मैंने आदरणीय सुधा जी से इस पत्रिका का लिंक पाया था, तो मैंने बड़ी बेपरवाही और बेमन से पत्रिका का लिंक खोला था। इसका मूलभूत कारण मेरा वो पूर्वग्रह था जो आजकल की साहित्यिक पत्रिकाओं की दम तोड़ती साहित्यिक चिंतन और उसकी वैचारिक दुर्दशा से जनित था। संभवत: यह 'हिन्दी चेतना' का लघुकथा विशेषांक था। जिससे मैं पहली दफा रू-ब-रू हुआ था।

'हिन्दी चेतना' ने न केवल मेरा मिथक भंग किया अपितु स्वप्नदर्शी साहित्यिक पत्रिका की नई परिभाषा गढ़ी। यहाँ मैं एक और बात जोड़ना चाहूँगा कि आप किंचित यह भ्रम न पालें कि मैं समकालीन साहित्य पत्रिकाओं और मंचों से अनभिज्ञ हूँ अपनी प्रिय पत्रिका को सम्बोधित ....।

महाभूत चन्दन राय (भारत)

'आख़िरी पन्ना' बहुत बड़ी सीख दे गया

'हिन्दी चेतना' अप्रैल २०१३ की प्रति हाथ में आते ही ऐसा लगा मानो भारत की 'मिट्टी -हवा-ख़ुशबू' हाथ लग गई हो! बहुत-बहुत शुक्रिया। 'दो पाटन के बीच आये के....' कहानी को मैंने दो- तीन बार पढ़ा। इस कहानी ने बँटवारे की कई और कहानियाँ-लेख मेरे ज़हन-यादों में ताज़ा-उजागर कर दिए। और साथ ही ये लाचारी भी दर्शाई कि कैसे राजनीतिक निर्णय-कानून-नियमावली-कागज़ अदना आम आदमी के जीवन पर विशाल-गहरे घाव-परिवर्तन-चुभन दे जाते हैं। वहीं एक सरकारी कर्मचारी के हाथ-ओहदा-समझ कैसी कशमकश से गुजरती है ये भी 'चार दिन' के अंतराल के मापदंड पर, महेंद्र दवेसर 'दीपक' जी ने बखूबी आँका-चित्रित किया है। 'संवाद' कविता, पूनम कसलीवाल की रचना ने भी मेरे दिल को छुआ और दुनिया के यथार्थ से मुझे जो़डा। 'तुलना' काव्य, ममता शर्मा का भी काफी प्रेरणा दायक रहा।

और अंतत:, पर अंत नहीं... सुधा ओम ढींगरा जी का 'आख़िरी पन्ना', बहुत बड़ी सीख दे गया। वो सीख 'सम्मान' जो हम महिलाएँ रोज़मर्राह की ज़िन्दगी में अपने-आपको नहीं देतीं हैं। हम महिलाएँ ही ख़ुद को अधिक दोषी-ग्लानि-समर्पण के भाव में घेरे रहतीं हैं, जिससे हमारी कोशिशों में कमी आती है और हम कहीं ना कहीं पूर्ण सफलता से दूर होते है। और फिर ख़ुद को ही हीन-छोटा समझने-मानने लगते हैं । ये भावनाएँ मै 'बलात्कार' से दूर

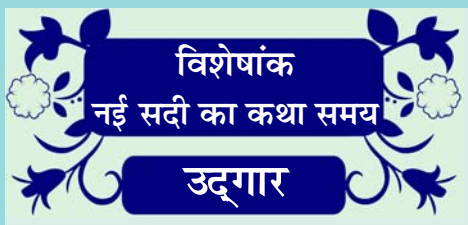

रखकर सोच रही हूँ। मैं सुधा जी से सहमत हूँ कि अगर समाज से कुछ बुराइयाँ हटानी हैं तो शुरुआत हमें अपने से, अपने बच्चों से, और अपने घर से ही करनी चाहिए। हिन्दी भाषा में इतना अच्छा-समृद्ध अंक पाकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। 'हिन्दी चेतना' से जुड़े सभी का धन्यवाद और आभार।

गीता घिलोरिया (अमेरिका)

नई पीढ़ी के लिए एक श्रेष्ठ उपहार

'हिन्दी चेतना पत्रिका' अपने नाम से ही शब्दों को पूर्ण रूप से सार्थक करती है। भाषा-साहित्य व संस्कृति संग विदेश में बसे भारतीयों को एक सूत्र में जोड़े रखने में इस पत्रिका का अमूल्य योगदान रहा है । 'ऑन लाइन', 'इन्टरनेट' के माध्यम से आज 'हिन्दी चेतना' विश्व भर में उपलब्ध है। सम्पूर्ण पत्रिका की तरह हर अंक में लेख, कविता, कहानी, ग़ज़ल, लघुकथाएँ, भिन्न-भिन्न विधाओं पर व्यक्त विचार, प्रभावशाली व ज्ञानवर्धक हैं। 'विलोम चित्र' व 'आख़िरी पन्ना' दोनों ही अति सुरुचिपूर्ण हैं। 'विशेषांक' प्रकाशित करने की परम्परा अति प्रशंसनीय है। विश्व में हर देश के लोगों की पहचान उनकी भाषा, संस्कृति व सभ्यता से होती है। वेश-भूषा, खान-पान का भी निजी स्थान है, जो समय व सहूलियत के अनुसार बदलता रहता है। आज हम बहुत गर्व से कहते हैं कि हिन्दी के कुछ शब्द 'पंडित','गुरु', 'मन्त्र', 'कर्म', अंग्रेज़ी भाषा से जुड़े हैं, जन साधारण बड़े हर्ष से उनका उचित प्रयोग कर पाते हैं।

हिन्दी हमारी मातृ भाषा है। मैं पूर्ण विश्वास से कह सकती हूँ 'हिन्दी चेतना' पत्रिका, नए युग की नई पीढ़ी के लिए एक श्रेष्ठ उपहार है। मैं 'हिन्दी चेतना' एवं हिन्दी प्रचारिणी सभा के और ज़्यादा उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना करती हूँ।

वनीता सेठ (कैनेडा)

हाइकु की प्रस्तुति अच्छी लगी

'हिन्दी चेतना' का अप्रैल-जून-२०१३ अंक

सम्पादकीय लेख देशभक्त भारतीय की पीड़ा

सम्पादकीय लेख आपकी ही नहीं, भारत का हित सोचनेवाले हर देशभक्त भारतीय की पीड़ा को व्यक्त करता है। भारत में राजनीति से नैतिकता तो लगभग समाप्ति की ओर है ही राजनीति ने व्यक्तियों से भी मानवीय मूल्यों को समाप्त करने का बीड़ा उठा लिया है। सत्ता की बागडोर सम्भालने वालों का दायित्व देश का विकास करने के साथ ही देश के नागरिकों में मानवीय मूल्यों के प्रति श्रद्धा भाव जाग्रत करने का दायित्व भी होता है। भारत में जापान की तरह सच्चाई एवं लगन से कार्य करने की प्रेरणा देने के स्थान पर नेताओं ने अपने तथाकथित त्याग की कीमत वसूली और वास्तविक त्याग करने वाले शहीदों को प्रेरणा पुरुष नहीं बनने दिया। राष्ट्रीयता की भावना को राजनीति ने अपने दलगत हितों के हिसाब से परिभाषित किया। सत्ता में बने रहने के लिए क्या नहीं हो रहा। देश में न राष्ट्रभाषा के प्रति लगाव है न राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा की चिंता। जिस देश में मनुष्य के चरित्र निर्माण के स्थान पर पैसा कमाने के लिए शिक्षा प्रायोजित हो और राष्ट्र पुरोहित घर भर रहे हों। वहाँ भारत जैसी बेईमानी और भ्रष्टाचार पर रोक लगा पाना जन लोकपाल के लिए भी मुश्किल होगा; क्योंकि वह भी तो देश की वर्तमान सामाजिक व्यवस्था से पोषित व्यक्ति होगा। देश की हितकारी नीतियों के सफल संचालन के लिए समष्टि भाव से काम करने की अवश्यकता होती जो आज देश के अधिसंख्यक लोगों में नहीं है। साहित्यकार भी आज व्यक्तिवादी अधिक है राष्ट्रीय और सामाजिक कम। आपकी पीड़ा को साहित्यकार ही नहीं हर सामान्य नागरिक, और राजनेता भी समझेंगे इस आशा के साथ अपना पत्र समाप्त कर रहा।

लक्ष्मी नारायण गुप्ता
(ग्वालियर , भारत)

प्राप्त हुआ। संपादकीय में डॉ. श्याम त्रिपाठी की पीड़ा द्रवित कर गई। वास्तव में, हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में प्रवासी हिन्दी प्रेमियों का व्यापक योगदान है। प्रवासी साहित्यकारों के योगदानों की अनदेखी करना ख़ुद हिन्दी साहित्य के लिए बड़ा घातक साबित होगा। आज हिन्दी सभी भौगोलिक और राजनीतिक सीमाएँ लाँघती जा रही है। विदेशों में लिखा जा रहा हिन्दी साहित्य हर प्रकार से स्तरीय और ध्यातव्य है। इस बाबत चर्चा भारत के साहित्यिक गलियारों में दिल खोलकर की जानी चाहिए। मॉरीशस भी हिन्दी साहित्य की उर्वर भूमि तैयार कर रहा है। इसलिए, वहाँ के हिन्दी प्रेमियों के लिए आवश्यक है कि वे प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों के योगदान को रेखांकित करें।

अस्तु, साक्षात्कार, कहानियाँ, आलेख, संस्मरण, ग़ज़लें, कविताएँ, लघुकथाएँ आदि जैसी विधाओं से विविधीकृत यह अंक हर बार की तरह इस बार भी दिलचस्प है। प्रस्तुति और संपादन काबिले-तारीफ़ है। सुधा ओम ढींगरा द्वारा रेखा मैत्र का लिया गया साक्षात्कार कवयित्री का सांगोपांग एक्स-रे है; चुनांचे, साक्षात्कृत कवयित्री की चुनिन्दा रचनाएँ भी इस अंक में प्रकाशित की जानी चाहिए थीं, तभी रचनाकार और उसकी रचनावृति का बेहतर परिचय पाठकों को मिल पाता।

इस अंक में हाइकु की प्रस्तुति अच्छी लगी। कहीं-न-कहीं कहानियों में समकाल के अनुरूप अति आवश्यक विषयों पर चर्चा का न होना खलता है। वैश्विक संदर्भ में धर्म, संप्रदाय, जाति, आतंकवाद और कुत्सित राजनीति को समेटती हुई कहानियाँ लिखी जानी चाहिए; क्योंकि मौजूदा दुनियावी आबोहवा इनसे निहायत तबाहकुन होती जा रही है।

इसके अलावा, 'हिन्दी चेतना' के व्यंग्य के संदर्भ में निकाले गए एक विशेषांक को ध्यान में रखते हुए इस अंक में एक मारक व्यंग्य की कमी काफ़ी खल रही है। कम-से-कम एक व्यंग्य तो प्रत्येक अंक में होना ही चाहिए। दरअसल, मौजूदा व्यंग्यकारों की व्यंग्य परिपाटी पर उनके कथ्य और शिल्प को लेकर अत्यधिक नुक्ताचीनी हो रही है। पता नहीं क्यों आलोचकों को इस समय के व्यंग्यकारों की व्यंग्य-रचनाएँ आपत्तिजनक लग रही हैं? उनका कहना है कि व्यंग्यकार अपनी दिशा खोते जा रहे हैं। 'हिन्दी चेतना' जैसी लोकप्रिय

विशिष्ट पत्र

जब तक प्रामाणिक सामग्री न हो, किसी भी प्रकार का लेख लिखना सर्वथा अनुचित तथा भ्रमोत्पादक है

डॉ. कमल किशोर गोयनका (भारत)

'हिन्दी चेतना' (कैनेडा) त्रैमासिक पत्रिका तथा उसके सम्पादकों से मेरा आत्मीय सम्बन्ध काफी पुराना है। मैं इसका नियमित पाठक हूँ तथा इसके सम्पादक मंडल ने अपने विशेष स्नेह के कारण मुझे पत्रिका के 'परामर्श मंडल' में रखा हुआ है। मेरा दृढ़ मत है कि इसके संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक श्री श्याम त्रिपाठी तथा संपादक डॉ. सुधा ओम ढींगरा जिस प्रबुद्धता, निष्ठा एवं अभिनवता से उसका सम्पादन कर रहे हैं, उसे देखकर उन्हें किसी परामर्श की आवश्यकता नहीं है।

'हिन्दी चेतना' अब विश्व-स्तर की पत्रिका है, परन्तु यह हिन्दी में प्रकाशित होती है तो यह संभव है कि विश्व- समुदाय की दृष्टि उस पर न जाती हो। इससे, 'हिन्दी चेतना' का महत्त्व कम नहीं हो जाता। वह अभी विश्व के अनेक देशों में जाती है और हिन्दी विश्व को एक सूत्र में बांधे रहती है तथा उत्तम से उत्तम साहित्य देने का प्रयत्न करती है। ध्यान रहे, यह सब हिन्दी-प्रेम के कारण होता है, अत: 'हिन्दी चेतना' के प्रकाशन पर इसके प्रकाशक 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' कैनेडा तथा इसके सम्पादकों का हमें अभिनन्दन करना चाहिए; जो कैनेडा में बैठे हमसे कहीं अधिक बेहतर रूप में हिन्दी की सेवा कर रहे हैं।

'हिन्दी चेतना', अप्रैल -जून, २०१३ का सम्पादकीय प्रमुख सम्पादक श्री श्याम त्रिपाठी ने लिखा है। इस सम्पादकीय ने मेरा ध्यान आकर्षित किया है, क्योंकि 'विश्व हिन्दी सचिवालय' मारीशस की पत्रिका 'विश्व हिन्दी पत्रिका', २०१२ में प्रकाशित डॉ. दामोदर खड़से तथा डॉ. कामता कमलेश के लेखों में कैनेडा में हिन्दी की स्थिति पर दिए गए झूठे विवरण से श्री श्याम त्रिपाठी आहत तथा अपमानित हुए हैं और उन्होंने भारत के हिन्दी लेखकों पर कुछ महत्त्वपूर्ण एवं विचारणीय प्रश्न उठाये हैं।

श्री श्याम त्रिपाठी विगत ४० वर्षों से कैनेडा में हिन्दी-प्रचार-प्रसार का कार्य कर रहे हैं तथा प्रो. हरि शंकर आदेश, डॉ. शिवनन्दन सिंह यादव, डॉ. भारतेंदु श्रीवास्तव, श्रीनाथ द्विवेदी, सुमन घई आदि भी हिन्दी संस्थाएँ बनाकर दशकों से हिन्दी-सेवा का कार्य कर रहे हैं। दु:ख की बात यह है कि डॉ.खड़से तथा डॉ. कमलेश ने अपने लेखों में कैनेडा के भारतीयों की हिन्दी-सेवा के सम्बन्ध में या तो अधूरी सूचनाएँ दी हैं या झूठे तथ्य दिए हैं। डॉ. खड़से ने अमेरिका-कैनेडा के उन हिन्दी-सेवकों की चर्चा ही नहीं की; जिन्होंने कई दशकों तक हिन्दी का कार्य किया है। डॉ. कामता कमलेश ने तो इतिहास को ही बदल दिया और अपनी विश्वसनीयता ही खंडित कर दी। श्री श्याम त्रिपाठी की पीड़ा मैं समझता हूँ।

हिन्दी के काफी लेखक बिना पढ़े, बिना खोजे तथा बिना गहराई में जाए जो चाहे लिख देते हैं और प्रकाशित होने पर वही पाठक के लिए प्रामाणिक बन जाता है। यह स्थिति अब शोध के क्षेत्र में भी हो रही है। हिन्दी में शोध-कर्म अधोगति की ओर उन्मुख है। शोध अब दस पुस्तकें पढ़कर शोध-प्रबंध के रूप में ग्यारहवीं पुस्तक लिखने की प्रक्रिया बन गया है। हिन्दी के अधिकांश शोध-निर्देशक शोधार्थी के विषय के ज्ञाता ही नहीं हैं तथा उन्हें इसकी कोई जानकारी नहीं है कि शोध-विषय पर क्या-क्या कुछ नया हुआ है तथा कौन-कौन सी पुस्तकें आई हैं। शोधार्थी में शोध डिग्री के लिए करता है, शोध-विषय से उसका कोई आंतरिक लगाव नहीं होता। ऐसी स्थिति में जब हिन्दी में शोध की ही दुर्दशा है, तब ऐसे प्रोफेसर अपने लेखों में कैसे तर्कसंगत तथा प्रामाणिक हो सकते हैं? हिन्दी में खड़से, कमलेश जैसों की संख्या कम नहीं है, लेकिन अफ़सोस यह है कि ये लोग विश्व-यात्री हैं, प्रोफेसर भी हैं, तब ऐसी लापरवाही से क्यों लिखते हैं कि श्री त्रिपाठी जैसे प्रवासी सम्पादक आहत और अपमानित होते हैं ? जब तक प्रामाणिक सामग्री न हो, किसी भी प्रकार का लेख लिखना सर्वथा अनुचित तथा भ्रमोत्पादक है। निश्चय ही, ऐसे लेखों को प्रकाशित करने में 'विश्व हिन्दी पत्रिका' के सम्पादकों की भी ज़िम्मेदारी है और उन्हें अपनी ग़लती को स्वीकार करना चाहिए। इस पत्रिका के संपादक ऐसे हिन्दी लेखक होने चाहिए; जिनका सम्पर्क हिन्दी विश्व से हो और प्रत्येक घटना की उन्हें जानकारी हो।

श्री श्याम त्रिपाठी से मैं हिन्दी लेखकों की ओर से क्षमा माँगता हूँ। उन्हें जो कष्ट हुआ है, मैं उससे व्यथित हूँ। यह सम्भव है, लेख में अपूर्णता रह जाए, किन्तु तथ्य प्रामाणिक होने चाहिए। भ्रामक तथ्य हमें सत्य से दूर करते हैं।

श्री त्रिपाठी का मन्तव्य यही है कि कोई भी देश हो, अमेरिका या कैनेडा, हिन्दी- सेवा की सही तस्वीर प्रस्तुत की जाए। इस दृष्टि से एक बड़ी समस्या यह है कि भारतेतर देशों में हिन्दी प्रचार-प्रसार, अध्ययन, प्रकाशन के जो कार्य हो रहे हैं, जो वहाँ हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं तथा जो पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, उनकी जानकारी किसी एक पत्रिका तथा किसी एक स्रोत से नहीं मिलती और इस प्रकार लेखक को अधूरे ज्ञान से ही संतुष्ट होना पड़ता है।

हिन्दी के प्रवासी साहित्य के सम्बन्ध में यह बड़ी समस्या है, लेकिन इसका कोई सरल हल मुझे दिखाई नहीं देता। मैं विगत तीस वर्षों से प्रवासी साहित्य के सम्पर्क में हूँ लेकिन सच तो यह है कि मेरे पास भी सम्पूर्ण जानकारी नहीं है, लेकिन मैं फिर भी यही कहूँगा कि लेखक को अधिकाधिक तथा नवीनतम तथ्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। इस संसार में सम्पूर्ण कोई भी नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण होने का लक्ष्य तो हम लेकर चल ही सकते हैं। तब निश्चय ही, ऐसी भयंकर भूलें नहीं होंगी कि श्री श्याम त्रिपाठी जैसे निष्ठावान् सम्पादक आहत हों और अपमान का अनुभव करें।

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
उद्‌गार

पत्रिका को व्यंग्य के प्रति ऐसे निराशाजनक रुझान में सुधार लाने की कोशिश अवश्य करनी चाहिए। साथ ही, अच्छे रचनाकारों के बजाय अच्छी रचनाओं पर ख़ास ध्यान देना चाहिए। मेरी ओर से 'हिन्दी चेतना' के संपादक मंडल द्वारा इतना रुचिकर अंक निकाले जाने के लिए हार्दिक बधाई!

डॉ. मनोज श्रीवास्तव (भारत)

ग़ज़लों ने दिल जीत लिया

बहुत बहुत धन्यवाद आपका; जो आपने 'हिन्दी चेतना' पत्रिका से रू-ब-रू कराया। इस पत्रिका के, आलेख / रचनाएँ / साक्षात्कार सभी उत्कृष्ट हैं और साहित्य से पाठक को जोड़ते हैं। 'महादेवी वर्मा' जी की कविता बहुत अच्छी लगी। मेरा पसंदीदा कॉलम 'ग़ज़ल' होता है, और यहाँ नुसरत साहिबा की ग़ज़लों ने दिल जीत लिया। 'हिन्दी चेतना' से जुड़े हर सदस्य को हार्दिक शुभकामनाएँ और मंगलकामनाएँ हैं। दूर देश में रहकर भी आप सभी का हिन्दी के प्रति समर्पण अनूठा है।

अभिषेक कुमार झा 'अभी' (भारत)

यह सच्ची राष्ट्र भक्ति है

'हिन्दी-चेतना' का नया अंक देखा। पत्रिका सात्विक साहित्यिक चेतना विकसित करने की दिशा में अभिनव कार्य कर रही है। यहाँ स्त्री-विमर्श भी होता है तो मर्यादा में। पत्रिका में मूल्य नज़र आते हैं। नए अंक में सुधा अरोड़ा का साक्षात्कार बेहद पठनीय है। अधेड़ उम्र में कलम थामने वाली सविता अग्रवाल 'सवि' के लेखन को सलाम। सुधा जी ये सब आपके कारण ही संभव हुआ है। वहाँ भारतीयों को मुख्यधारा से जोड़े रखने का काम प्रेरक है। यह सच्ची राष्ट्र भक्ति है कि आप पत्रिका के बहाने एक तरह से भारतीय मनीषा को दीप्त कर रही हैं। प्रेम जनमेजय और दीपक मशाल की लघुकथाएँ प्रभावित करती हैं।

गिरीश पंकज (भारत)

सामग्री सुचिंतित और सुनियोजित होती है

'हिन्दी चेतना' के ताज़े अंक में पृष्ठ ६२ पर 'ऋतुराज एक पल का' के लोकार्पण का सचित्र समाचार देखा। आपने बड़ी आत्मीयता से उसे स्थान दिया है। अनुगृहीत हूँ। लगे हाथ मैं आपका सम्पादकीय भी पढ़ गया, जिसमें आपने आज के सभी ज्वलंत प्रश्नों को समेटा है। 'हिन्दी चेतना' से मैं तब से जुड़ा हूँ, जब यह श्वेत-श्याम काया में आती थी। अब आधुनिक जीवन के सपनों की तरह इन्द्रधनुषी हो गई है। इसकी सामग्री सुचिंतित और सुनियोजित होती है। अभी उत्तराखण्ड जिस महाप्रलय के पंजे में छटपटा रहा है, उसमें इतना ही।

आज फिर से 'हिन्दी चेतना' के ताज़े अंक को दुहरा गया। आज कुछ इत्मीनान से पढ़ने का मौका मिल गया । सुधा अरोड़ा जी का पूरा साक्षात्कार पढ़ गया। लगा कि मैं भी उनके साथ ही समानांतर बरसों चलता रहा हूँ। मेरा भी जन्म ४ अक्टूबर को ही हुआ, मगर उनसे एक साल बाद। कलकत्ता में हम लोग एक समय में रहे भी, मगर कभी आत्मीय नहीं बन पाए। मेरी व्यस्तता ही ऐसी थीं। खैर अब जब कभी मुंबई जाऊँगा, तो उनसे मिलूँगा। इसका श्रेय मैं 'हिन्दी चेतना' को ही दूँगा। आप इस पत्रिका के माध्यम से कितना बड़ा काम कर रहे हैं, इसका अंदाज अभी शायद आपको भी नहीं है।

बुद्धिनाथ मिश्र (देहरादून)

संस्मरण दिल उदास कर गया

जुलाई-सितम्बर २०१३ के अंक को मैं पढ़ने बैठी तो उठ ही नहीं सकी। सबसे पहले तो सुधा अरोड़ा के साक्षात्कार ने बाँध लिया। अंकित जोशी ने अच्छे प्रश्नों का संयोजन किया, जिससे सुधा अरोड़ा ने भी बढ़िया उत्तर दिए। अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'किसलिए' पसंद आई। विकेश निझावन का संस्मरण सच में एक त्रासद संस्मरण है। दिल उदास कर गया।

कवियों को एक-एक पृष्ठ देने का प्रयोग बहुत पसंद आया। भरत तिवारी, अनिता कपूर, प्रतिभा सक्सेना की कविताएँ अच्छी हैं। नुसरत मेहदी की ग़ज़लें और महाभूत चन्दन राय की विशिष्ट कविता बेहतरीन हैं। तीनों लघुकथाओं ने आकर्षित किया। नरेन्द्र कोहली की लम्बी कहानी मुझे पहले अंक से ही अपने साथ जोड़ नहीं पाई। कहानी कम उपन्यास का अंश अधिक लगी। आख़िरी पन्ने पर तो सुधा ओम ढींगरा बहुत कुछ समेट गईं सफल अंक के लिए बधाई।

अनुपमा चन्द्रा (सिडनी, आस्ट्रेलिया)

विशिष्ट अंक

'हिन्दी-चेतना' का पत्रिका मिली। कवर देखते ही आँखों को सुकून मिला। अंकित जोशी की सुधा अरोड़ा से बेबाक बातचीत, सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'अख़बार वाला' का अंतर्पाठ, महादेवी वर्मा का स्मरण, प्रतिभा सक्सेना और चन्दन राय की कविताएँ इस अंक को विशिष्ट बनाते हैं।

रेनू यादव (भारत)

'अख़बार वाला' पर अंतर्पाठ अच्छा लगा

क्या ही अच्छा होता अगर सुधा अरोड़ा के साक्षात्कार के साथ ही उनकी कोई रचना भी पढ़ने को मिलती। आज पुरुष-विमर्श और स्त्री-विमर्श से ज़्यादा सह विमर्श की ज़रूरत है। सही कहा सुधा अरोड़ा जी ने। शायद इसी की कमी सामाजिक संतुलन को बिगाड़े हुए है। पुरुष प्रधान समाज में यह सम्भव भी हो पाएगा या नहीं। पर उम्मीद तो की जा सकती है।

अनिल प्रभा कुमार की कहानी अलग लगी। सकारात्मक अंत अच्छा लगा। चन्दन राय की विशिष्ट कविता दिल और दिमाग़ दोनों पर चोट करती है। सुकेश साहनी, प्रेम जनमेजय और दीपक मशाल

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
उद्‌गार

की लघुकथाएँ बहुत अच्छी लगीं। साधना अग्रवाल का सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'अख़बार वाला' पर अंतर्पाठ अच्छा लगा। आख़िरी पन्ने पर सम्पादक महोदया ने काउंसलिंग के बारे में बड़े कम शब्दों में बात कही है, क्या इसे विस्तार से समझाया जा सकता है?

मनमीत कौर ढिल्लों (फिरोजपुर, पंजाब)

'हिन्दी चेतना' एक पूर्ण पत्रिका है

किसी मित्र के आग्रह पर ऑनलाइन 'हिन्दी चेतना' देखी। पत्रिकाओं की भीड़ में एक स्तरीय पत्रिका पढ़ने को मिली, वह भी कैनेडा से प्रकाशित हुई पत्रिका। सुना था विदेशों में हिन्दी का बहुत काम हो रहा है। सार्थक पत्रिका देख कर लगा कि विदेशों में अनुशासित और उत्तम स्तर का काम होता होगा।

'हिन्दी चेतना' एक पूर्ण पत्रिका है। किसी विधा को छोड़ा नहीं गया, बस व्यंग्य की कमी खली। अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'किसलिए', विकेश निझावन का संस्मरण, नुसरत मेहदी की ग़ज़लें, चन्दन राय की कविता, डॉ. हरदीप सन्धु का माहिया और आख़िरी पन्ना पसंद आए। सुधा अरोड़ा का साक्षात्कार उनकी लेखनी की तरह एक परिपक्व साक्षात्कार है, स्त्री विमर्श पर बहुत कुछ कहा गया है। अंत में शुभकामनाओं के साथ इतना ही कहूँगा कि पत्रिका पठनीय और सुरुचिपूर्ण है, इसकी निरंतरता बनी रहे।

डॉ. शरद 'सरोज' (कोटा, भारत)

अदभुत, सचमुच अदभुत

कल मुझे 'हिन्दी चेतना' का लघुकथा विशेषांक प्राप्त हुआ। अगर मैं कहूँ एक शब्द में तो कहूँगा अदभुत, सचमुच अदभुत। सम्पादकीय में आप द्वारा चिह्नित विचार जिसमे श्री अमिताभ बच्चन के हिन्दी उद्‌बोधन एवं 26, 56, 86, 96 के बारे में चिंता वाकई चिंता योग्य ही नहीं कुछ करने का आह्वान है। कुछ दिन पहले हम कुछ मित्रों ने मिल कर शाहरुख, धोंनी, तेंदुलकर को ख़त व मेल द्वारा लिखा था कि आप हिन्दी में प्रेस वार्ता क्यों नहीं करते जबकि आप हिन्दी फिल्मों से कमाई करते हैं। हिन्दुस्तान के लिए खेलते हैं। भूमण्डलीकरण आज विश्व की भाषाओं के सामने सुरसा मुख खोले है, लीलने को तैयार ख़डा है।

श्री रामेश्वर काम्बोज व सुकेश साहनी ने इस अंक के सम्पादन में बहुत मेहनत की है। चुन-चुन कर माणिक सरीखी अन्तराष्ट्रीय स्तर की रचनाएँ ढूँढना कोई सहज सरल कार्य नहीं है। अंक वास्तव में संग्रहणीय बन गया है। अगर इसे पुस्तक रूप में भी निकालें तो बहुत अच्छा काम होगा।

आपके सम्पादक मंडल व अतिथि संपादक द्वय को अकूत बधाइयाँ। शुभकामनाओं सहित।

श्याम सखा 'श्याम'

यह है अपने देश का प्रेम

'हिन्दी चेतना' जब मेरे पास आती है, तब सबसे पहले मैं आपका लिखा सम्पादकीय पढ़ती हूँ फिर आख़िरी पन्ना। दोनों ही लेख अपनी समस्याओं के विषय में रहते हैं। भारत से हज़ारों मील दूर रहकर भी भारत की छोटी बड़ी समस्याओं से मन दुखित होता है। यह है अपने देश का प्रेम। जिस मिट्टी में खेल कर हम बड़े होते हैं, जिस मिट्टी से हमारा तन मन निर्मित है; उसकी सुगंध भी तन मन में बसी रहती है । उस धरती का सुख दुःख भी हमारा होता है, चाहे हम कितना दूर या पास रहें।

आपके सम्पादकीय की प्रतिक्रिया भी मेरे मन पर पर्याप्त होती है।

राजकुमारी सिन्हा (अमेरिका)

❐

लेखकों से अनुरोध

बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें । अपनी सामग्री यूनीकोड फॉण्ट में टैक्स्ट फाइल अथवा वर्ड की फाइल के द्वारा ही भेजें । पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें । रचना के साथ पूरा नाम व पता, ई मेल आदि लिखा होना ज़रूरी है । आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र भी अवश्य भेजें । चित्र की गुणवत्ता अच्छी हो तथा चित्र को अपने नाम से भेजें । पुस्तक समीक्षा के साथ पुस्तक के आवरण का चित्र अवश्य भेजें । साथ ही प्रकाशक, मूल्य एवं प्रकाशन वर्ष भी लिख कर भेजें।

सूचना

पाठकों के पत्र हमारी निधि हैं। इस बार बहुत लम्बे-लम्बे पत्र आए हैं। विशेषांक की सामग्री को स्थान देने के लिए उन्हें अगले अंकों के लिए संचित कर लिया गया है। किसी पत्र को भी छोड़ा नहीं जाता। सब को छापा जाएगा।

-संपादक

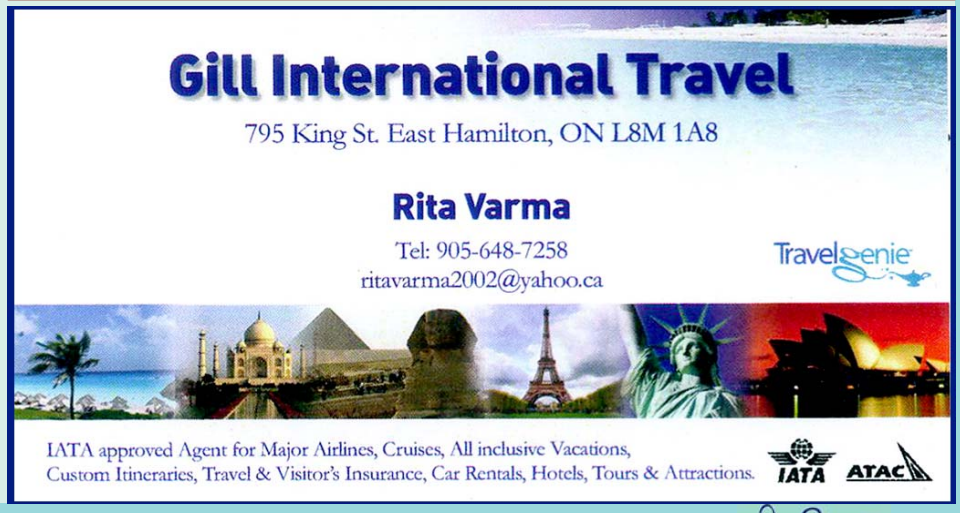

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
अतिथि सम्पादक की क़लम से

नयी सदी के अब तक बीते समय का हिन्दी कहानी के परिप्रेक्ष्य में आकलन

पंकज सुबीर

कहानी संग्रह 'महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ' को वर्ष 2012 का 'कथा यूके अंतर्राष्ट्रीय इन्दु शर्मा सम्मान'। उपन्यास 'ये वो सहर तो नहीं' को भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा वर्ष 2009 का 'नवलेखन पुरस्कार', इंडिपेंडेंट मीडिया सोसायटी द्वारा वर्ष 2011 का 'स्व. जे. सी. जोशी शब्द साधक जनप्रिय सम्मान' तथा मप्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 'वागीश्वरी सम्मान'। कहानी संग्रह ईस्ट इंडिया कम्पनी वर्ष 2008 में भारतीय ज्ञानपीठ नवलेखन पुरस्कार हेतु अनुशंसित। कहानियाँ, व्यंग्य लेख एवं कविताएँ सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित तीन कहानी संकलनों लोकरंगी प्रेम कथाएँ, नौ लम्बी कहानियाँ तथा युवा पीढ़ी की प्रेम कथाएँ में प्रतिनिधि कहानियाँ सम्मिलित। कई कहानियों का तेलगू , उर्दू, पंजाबी में अनुवाद। कहानी संग्रह ईस्ट इंडिया कम्पनी पर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में शोध कार्य। इंटरनेट पर ग़ज़ल के व्याकरण को लेकर विशेष कार्य अपने ब्लॉग के माध्यम से । जहाँ पर ग़ज़ल का व्याकरण (अरूज़) सीखने वालों को उसकी जानकारी उपलब्ध करवाते हैं । सह संपादक : हिन्दी चेतना, वेब संपादक : परिकथा तथा लमही।

संपर्क

पी.सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेण्ट, बस स्टैण्ड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001, मोबाइल : 09977855399

ई मेल : subeerin@gmail.com

ब्लॉग : http://www.subeerin.blogspot.com

हिन्दी कहानी का ये एक और स्वर्णिम काल है ऐसा कहा जा सकता है। उसके पीछे कारण भी है। कारण ये कि इस समय हिन्दी कहानी कई कई प्रयोगों के दौर से गुज़र रही है। हालाँकि प्रयोग हिन्दी कहानी के लिए कोई नई बात नहीं है। लेकिन, इस समय नए तेवरों के साथ एक पूरी नई पीढ़ी मैदान में आ डटी है। स्वर्णिम काल कहने के पीछे एक कारण और यह भी है कि हिन्दी कहानीकारों और अच्छे युवा हिन्दी कहानीकारों की एक पूरी फौज हमें दिखाई देती है। कुछ युवा हैं, कुछ युवा से आगे की अवस्था में हैं। किन्तु, अच्छा लेखन कर रहे हैं, प्रयोगों से नहीं डर रहे हैं ये महत्त्वपूर्ण बात है। एक और शुभ संकेत यह है कि नई सदी में सामने आये ये कथाकार अपने साथ अपना पाठक वर्ग भी लाये हैं। साथ मतलब ये कि इनको पढ़ने वाला, इनके लेखन को पसंद करने वाला एक अच्छा खासा पाठक वर्ग है। कहीं कहीं तो ये पाठक नितांत व्यक्तिगत है अर्थात किसी एक ही लेखक को पसंद करने वाला। ये सारे संकेत इस बात की ओर इशारा करते हैं कि अभी हिन्दी को लेकर चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

बात हो रही है नई सदी में सामने आई पीढ़ी की। यह पीढ़ी ठीक-ठाक तरीके से सामने आती है अक्टूबर 2004 में जब सुप्रसिद्ध कथाकार श्री रवीन्द्र कालिया वागर्थ का नवलेखन अंक निकालते हैं। 21 नये कहानीकारों की कहानियों को अपने में समेटे जब यह अंक आता है तो हिन्दी साहित्य जगत में एक हलचल सी मच जाती है। उन 21 कहानीकारों में से अधिकांश आज स्थापित कहानीकार हैं। चंदन पाण्डेय, विमलेश त्रिपाठी, दीपक श्रीवास्तव, मो. आरिफ, जितेन्द्र कुमार विसारिया, कुणाल सिंह, मनोज कुमार पाण्डेय, मनीषा कुलश्रेष्ठ, अरविंद शेष, राजेश प्रसाद, विमल चन्द्र पाण्डेय, टी. श्रीनिवास, राकेश मिश्रा, अंशु मालवीय, विपिन कुमार शर्मा, राजेन्द्र कुमार कनौजिया, पंकज सुबीर, नीलम शंकर, तरुण भटनागर, ओमप्रकाश तिवारी और सुरेश शॉ, ये उस अंक के कहानीकार थे। सूची को पढ़कर ही आप अंदाज़ा लगा सकते हैं कि हिन्दी के वर्तमान समय में इस अंक की क्या भूमिका रही है। अंक के संपादकीय में श्री कालिया लिखते हैं 'आज नई पीढ़ी के जितने भी समर्थ रचनाकार सक्रिय हैं, वे किसी न किसी पत्रिका के नवलेखन अंक की ही देन हैं। ये नए लेखक ही समय-समय पर साहित्य की एकरसता को भंग करते रहे हैं। प्रत्येक पीढ़ी नए मुहावरे के साथ प्रकट होती है और अपनी आवश्यकता के अनुरूप शिल्पगत प्रयोग करती है।' ये कथन उस अंक को आये लगभग दस साल हो जाने के बाद सच साबित हो रहा है। इस नई पीढ़ी ने अपने लिए नई ज़मीन तोड़ ली है।

यदि बात नई सदी की हो तो ऐसा नहीं है कि हम केवल उस पीढ़ी पर ही नज़र रखें जो उस सदी में सामने आई हो। हिन्दी के लिए तो सबसे बड़ी प्रसन्नता की बात यही है कि आज उसकी तीन या यूँ कहें कि चार पीढ़ियाँ एक साथ सक्रिय हैं। और आपस में एक स्वस्थ प्रतिद्वंद्विता करते हुए हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। न केवल भारत में, बल्कि भारत के बाहर भी हिन्दी के रचनाकार अपनी पूरी चमक के साथ लेखन कर रहे हैं। वे लेखक जो कभी प्रवासी अंकों तक ही सीमित हुआ करते थे, वे आज मुख्य धारा के लेखन का हिस्सा हैं और अब उनके लिए अलग से प्रवासी अंक नहीं निकालना होता। कहा जा सकता है कि हिन्दी की ताक़त इस नई सदी के आने के साथ ही बढ़ी है। हिन्दी के पाठक के पास आज पहले के मुकाबले ज़्यादा विकल्प हैं चयन करने हेतु।

ये जो बढ़ी हुई ताक़त है इसके पीछे इंटरनेट तथा यूनिकोड को भी एक कारण होने से इन्कार नहीं किया जा सकता। यूनिकोड हिन्दी की नई सदी की क्रान्ति है। जिसने हिन्दी को अचानक ही ग्लोबल कर दिया है। विदेशों में बसे हिन्दी के वह लेखक आज भारतीय पाठकों तक पहुँच रहे हैं और यहाँ के लेखक वहाँ के पाठकों तक पहुँच रहे हैं तो उसके पीछे कहीं न कहीं यूनिकोड एक

कारण है। दुर्भाग्य का विषय ये है कि यूनिकोड में हिन्दी का एक आकर्षक और यूनिवर्सल फॉण्ट बनाने के लिये कोई सरकारी पहल नहीं की गई है। आज भी हिन्दी में कई-कई फॉण्ट हैं, कोई पत्रिका कहती है अपनी रचना कृति में भेजो तो कोई कहती है चाणक्य में या वॉकमेन या शिवा में। हम अभी भी ऐसा माहौल नहीं तैयार कर पाए हैं कि कोई एक फॉण्ट हो जो सभी स्थानों पर उपयोग किया जाता हो। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार तेजेन्द्र शर्मा जी ने किसी साक्षात्कार में कहा था 'सरकार यदि हिन्दी सम्मेलनों पर करोड़ों रुपये फूँकने के बजाय उसका दस प्रतिशत भी हिन्दी का एक यूनिवर्सल और सुंदर फॉण्ट बनाने पर लगा दे तो उससे हिन्दी का वास्तविक भला होगा।'

जब सुधा जी ने मुझसे हिन्दी चेतना के 2013 के विशेषांक का अतिथि सम्पादन करने को कहा तो मेरे सामने विषय के चयन को लेकर काफ़ी विकल्प थे। लेकिन, फिर मुझे लगा कि मुझे अपने ही कथा समय की पड़ताल करनी चाहिए। अपना कथा समय, नई सदी में हुए लेखन से जुड़ा हुआ समय। वागर्थ के नवलेखन विशेषांक के बाद नवलेखन और युवा विशेषांकों का क्रम जारी रहा। नया ज्ञानोदय, हंस, कथाक्रम, वसुधा, परिकथा, लमही तथा अन्य कई पत्रिकाओं ने या तो युवा अंक या नवलेखन अंक निकाले। इन अंकों का भरपूर लाभ नई पीढ़ी के लेखकों को मिला। और इन अंकों से न वागर्थ नवलेखन से सामने आए लेखकों को लाभ मिला बल्कि राकेश बिहारी, प्रेम भारद्वाज, कविता, शरद सिंह, किरण सिंह, जयश्री राय, अल्पना मिश्र, गीताश्री, विवेक मिश्र, शेखर मल्लिक, प्रदीप जिलवाने, अनघ शर्मा, आकांक्षा पारे, इंदिरा दाँगी, सोनाली सिंह, सरिता शर्मा जैसे सशक्त कहानीकार भी सामने आये। इस प्रकार से यदि देखा जाए तो लगभग पचास के आस-पास नये कहानीकार इस पूरे समय में सामने आये। यह एक अच्छा लक्षण है। क्योंकि, ये सारे कहानीकार पूरी ऊर्जा के साथ लेखन में जुटे हुए हैं। इनमें से अधिकांश ने एक से अधिक याद रह जाने वाली कहानियाँ दी हैं। इनके साथ में इनसे ठीक पूर्व के कहानीकार भी सक्रिय हैं। चित्रा मुद्गल, अखिलेश, संजीव, मनोज रूपड़ा, उर्मिला शिरीष, रजनी गुप्त, आनंद हर्षुल, शैलेन्द्र सागर, मनोज रुपड़ा, महेश कटारे, गीतांजलि श्री, जया जादवानी, मधु कांकरिया, ओमा शर्मा, भाल चंद्र जोशी जैसे कहानीकार भारत में तो तेजेन्द्र शर्मा, सुधा ओम ढींगरा, सुदर्शन प्रियदर्शनी, ज़किया ज़ुबैरी, दिव्या माथुर, अर्चना पैन्यूली, अनिल प्रभा कुमार, सुषम बेदी, उषा राजे सक्सेना, महेन्द्र दवेसर 'दीपक' जैसे कहानीकार भारत से बाहर सक्रिय हैं। यह विशेषांक दरअसल उन्हीं सारे कहानीकारों पर केन्द्रित है जो नई सदी के अभी तक के वर्षों में सक्रिय रहे हैं। इसका उम्र से, युवा होने से कोई लेना देना नहीं है।

अंक को लेकर जब कहानियों के चयन की बात आई तो मुझे लगा कहानीकारों की पसंद पर ये किया जाना बेहतर होगा। मनीषा कुलश्रेष्ठ को दायित्व दिया कि वे नई सदी में सामने आई कहानियों में से अपनी पसंद की किसी लेखक द्वारा लिखी गई कहानी का चयन करें और विमल चन्द्र पाण्डेय को किसी लेखिका की कहानी चयन करने को कहा गया। परिणाम बहुत सुखद आए। विमल पाण्डेय ने अपने चयन का आधार प्रेम कहानियों को बनाया तथा नई सदी में सामने आई प्रेम कहानियों पर एक बेहतरीन आलेख के साथ मंजुलिका पाण्डेय की कहानी 'अति सूधो सनेह को....' को चयनित किया। मनीषा कुलश्रेष्ठ ने जब कहानी चयनित करके भेजी तो मैं आश्चर्य चकित था, क्योंकि, वो कहानी मेरी भी पसंद होती। यदि मुझसे भी कोई नई सदी की श्रेष्ठ कहानी चयनित करने को कहता तो मैं उसी कहानी का चयन करता। मनोज रूपड़ा की कहानी 'टॉवर ऑफ सायलेंस' एक अनोखी और रोंगटे खड़े कर देने वाली कहानी है। प्रवासी कहानियों में से चयन का दायित्व प्रसिद्ध आलोचक साधना अग्रवाल जी को दिया गया था, उन्होंने वरिष्ठ कहानीकार श्री तेजेन्द्र शर्मा की कहानी 'क़ब्र का मुनाफा' को चुना तथा उस पर अपना एक आलेख भी प्रदान किया। दूसरी चयन की गई कहानी पर सुधा जी सहमत नहीं थीं, उनको मनाने के लिए मुझे अपने अतिथि सम्पादकीय अधिकारों का उपयोग करना पड़ा। सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'आग में गर्मी कम क्यों है' पर युवा समीक्षक अंकित जोशी ने अपना आलेख लिखा है। इस प्रकार कुल चार कहानियाँ अंक में हैं, दो भारत की तथा दो भारत के बाहर की।

जब इस पूरे समय की पड़ताल किसी साक्षात्कार के माध्यम से करने की बात आई तो हमारे पास श्री सुशील सिद्धार्थ से अच्छा कोई विकल्प नहीं था। उन्होंने इस पूरे समय पर बहुत पैनी नज़र रखी है। नया ज्ञानोदय, लमही के युवा कहानी विशेषांकों से वे जुड़े रहे हैं। इस पूरे समय की उन्होंने आलोचना, समीक्षा तथा सम्पादन कभी न कभी किसी न किसी रूप में किया है।

कहानीकार विवेक मिश्र ने एक अत्यंत रोचक परिचर्चा इस अंक के लिए आयोजित की तथा उसी प्रकार की परिचर्चा हिन्दी चेतना की सम्पादक सुधा ओम ढींगरा ने भी भारत से बाहर रह रहे रचनाकारों के बीच आयोजित की। दोनों ही परिचर्चाएँ इस अंक का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। आलोचक वैभव सिंह ने एक अलग तरीके से नई सदी की कहानी की पड़ताल की है। उन्होंने नई सदी की कहानियों में से कुछ कहानियों के माध्यम से सांप्रदायिकता की समस्या को तलाशा है। यह एक महत्त्वपूर्ण आलेख है।

कहानीकार गौतम राजरिशी का प्रयोग एक पाठक के नज़रिये से किया गया प्रयोग है। गौतम ने बड़ी मेहनत से इस आलेख को रचा है। आलेख रोचक और पठनीय बन पड़ा है। तेजेन्द्र शर्मा तथा अर्चना पैन्यूली ने अपने लेखों के माध्यम से भारत से बाहर नई सदी में हुए कहानी कर्म को पाठकों के सामने लाने की सफल कोशिश की है।

लेखकों, आलोचकों की पसंद की नई सदी की दस कहानियाँ भी जानने की एक कोशिश की है कि यदि उनसे उनकी पसंद की नई सदी की 10 कहानियाँ पूछी जाएँ तो वो कौन सी होंगी। हैरत की बात है कि सूची में कई नाम समान थे।

कुल मिलाकर यह अंक ऐसी ही कोशिशों का, जो नई सदी के अब तक बीते समय का हिन्दी कहानी के परिप्रेक्ष्य में आकलन करने के लिए की गईं हैं, परिणाम है। कैसा है ये आप तय करेंगे, आपकी प्रतिक्रियाओं का इंतज़ार रहेगा।

आपका ही
पंकज सुबीर

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
साक्षात्कार

जिन्होंने नुकसान पहुँचाया है कहानी को, उन्हें पाठक क्षमा नहीं करेंगे : सुशील सिद्धार्थ

(वरिष्ठ आलोचक, व्यंग्यकार तथा दूसरी परम्परा के सम्पादक डॉ. सुशील सिद्धार्थ से सुधा ओम ढींगरा की विशेष बातचीत)

डॉ. सुशील सिद्धार्थ

जन्म : २ जुलाई, १९५८, सीतापुर (उत्तर प्रदेश)।

शिक्षा : हिन्दी साहित्य में पीएॅच.डी (लखनऊ)। पीएॅच.डी हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से फेलोशिप प्राप्त हुई।

प्रकाशित पुस्तकें : नारद की चिन्ता, प्रीति न करियो कोय, मो सम कौन (व्यंग्य संग्रह), बागन बागन कहै चिरैया, एका (अवधी कविताएँ), श्रीलाल शुक्ल संचयिता (डॉ. नामवर सिंह के साथ सम्पादन), मेरे साक्षात्कार (शिवमूर्ति के साक्षात्कार), हिन्दी कहानी का युवा परिदृश्य (३खंड, सम्पादन)

पत्र-पत्रिकाओं में : प्रमुख पत्र पत्रिकाओं में व्यंग्य, आलोचना-लेख आदि का प्रकाशन। आईना (सहारा समय), आदाब अर्ज है (राष्ट्रीय सहारा), चुटकी (दस्तक), पढ़ते-लिखते (नया ज्ञानोदय), स्तंभों का लेखन। फिलहाल, राग लन्तरानी (कथाक्रम) व वक्र दृष्टि (लोक स्वामी) स्तम्भ जारी।

सम्पादन : 'तद्भव' व 'कथाक्रम' पत्रिकाओं में सम्पादन सहयोग। 'नया ज्ञानोदय' (भारतीय ज्ञानपीठ) में २ वर्ष सह सम्पादन। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की पत्रिका 'साहित्य भारती' का सह सम्पादन। 'लमही' के तीन अंकों का अतिथि सम्पादन। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से प्रकाशित मुंशी प्रेमचन्द की १० कहानियों का चित्रोपयोगी सम्पादन। फिलहाल, त्रैमासिक पत्रिका 'दूसरी परम्परा' का सम्पादन।

अन्य : लखनऊ विश्वविद्यालय के पत्रकारिता विभाग में ३ वर्ष अतिथि अध्यापक। महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा में कुछ समय मीडिया लेखन का अध्यापन। कथाकार कमलेश्वर के साथ 'युग', 'विराट' आदि धारावाहिकों का लेखन। दूरदर्शन के लिए बीस वृत्तचित्रों और तीन धारावाहिकों का लेखन। दूरदर्शन के दिल्ली व लखनऊ केन्द्रों के साहित्यिक कार्यक्रमों में लेखन और संचालन। 'राग दरबारी' का ५२ एपीसोडों में रेडियो रूपांतर।

उल्लेखनीय सदस्य : 'कथाक्रम सम्मान' तथा 'लमही सम्मान' निर्णायक समिति के सदस्य।

समान/पुरस्कार/फेलोशिप : पी-एच.डी. हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से शोधवृत्ति। बी.ए. ऑनर्स और एम.ए. स्पेशल में प्रथम स्थान के साथ प्रथम श्रेणी प्राप्त करने पर स्वर्ण पदक और छात्रवृत्ति। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा व्यंग्य लेखन पर २ बार 'पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी नामित पुरस्कार'। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा अवधी कविता पर २ बार 'जायसी नामित पुरस्कार। कुछ अन्य संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

इससे पूर्व : पाँच वर्ष तक 'भारतीय ज्ञानपीठ', नई दिल्ली में वरिष्ठ प्रकाशन अधिकारी।

संप्रति : राजकमल प्रकाशन समूह, नई दिल्ली में सम्पादक।

अभिरुचि : साहित्य, संस्कृति, पत्रकारिता, रंगमंच और सिनेमा।

सम्पर्क :
बी.-२/८बी, केशवपुरम्,
लारेंस रोड,
नई दिल्ली-११००३५
मोबाइल:
०९८६८०७६१८२
ईमेल :
sushilsiddharth@gmail.com

सुशील सिद्धार्थ जी का कार्य वर्षों से देख रही थी। मेरा समालापक जिज्ञासु मन 'हिन्दी चेतना' के लिए उनका साक्षात्कार लेना चाहता था। भीतर बहुत से प्रश्न कुलबुलाते थे। एक दो बार फ़ोन भी किया, लेकिन बात बन नहीं पा रही थी। व्यस्तताएँ आड़े आ रही थीं। 'हिन्दी चेतना' के विशेषांक नई सदी का कथा समय की योजना के उपरांत ही तय कर लिया गया था कि अब चाहे व्यस्तताओं में सेंध लगानी पड़े, इस अंक में हमारी बातचीत ज़रूर सम्मिलित होगी। इस सदी के कथा साहित्य, व्यंग्य और आलोचना में आपका योगदान अतुलनीय है। सुशील जी ने सहयोग दिया और प्रस्तुत है नई सदी के कथा समय के इर्द-गिर्द घूमती बातचीत-

प्रश्न: सुशील जी, नई सदी में लिखी गई कहानियाँ राजनैतिक, सामाजिक बेचैनी के दौर और सांस्कृतिक परिवर्तन की उथल-पुथल में रची-बसी कहानियाँ हैं। इस सदी के कथा साहित्य ने हिन्दी साहित्य को क्या दिशा दी है ?

उत्तर: अगर व्यापक स्तर पर देखें तो ऐसा कोई भी समय नहीं बीता जब राजनीतिक बेचैनी न रही हो। या सांस्कृतिक उथल-पुथल शून्य हो गई हो। आज़ादी की लड़ाई, आपातकाल, मन्दिर-मस्जिद मुद्दा , गुजरात त्रासदी और भी बहुत कुछ बेचैनी और उथल-पुथल के संदर्भ बदलते रहे। जिस समय की बात आपने की वह एक विचित्र समय है। हम सब इसमें जी रहे हैं। सुख और दु:ख दोनों भोग रहे हैं, लेकिन इसे समझ नहीं पा रहे। या कुछ समझ रहे हैं पर कहने में हिचक रहे हैं। उदारीकरण, मुक्त पूँजी और भूमंडीलकरण आदि जितने भी बड़े-बड़े शब्द हैं उनकी सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिणतियाँ हमारे सामने हैं। कम से कम भारत में तो हालात समझे ही जा सकते हैं। इन स्थितियों में रचे गए कथा साहित्य ने हिन्दी साहित्य को क्या दिशा दी यह प्रश्न है आपका। साहित्य में यह समय 'युवा समय' के नाम से फिलहाल जाना जा रहा है। 1995 के आस पास हिन्दी में पीढ़ी बदलने की आहट मिलने

लगी। 2000 से तो स्पष्ट हो गया कि उदय प्रकाश, संजीव, शिवमूर्ती आदि के बाद एक नई पीढ़ी अपने अनुभवों को रचने के लिए तैयार है। इन तेरह वर्षों में हिन्दी कथा साहित्य में बहुत कुछ घटा।

क्या दिशा दी.... यह अभी इतना स्पष्ट नहीं है। यह तो चलता ही रहता है कि समय समय पर पुरानी होती पीढ़ी के आगे युवा पीढ़ी आती है। इससे दिशा का कोई खास रिश्ता नहीं है। कुछ बातें ज़रूर दिखती हैं। एक तो स्त्री और दलित प्रश्नो पर खूब लिखा गया..चर्चा भी हुई। दूसरे अनुभवों का वैविध्य है। इसमें नयी बात यह है कि समय को समझने की जबरदस्त बेचैनी है। एक बात आपको विचित्र लग सकती है कि समय की कमी का रोना सभी रो रहे हैं, मगर जितनी लम्बी कहानियाँ इन तेरह वर्षों में लिखी गईं उतनी पहले कभी नहीं लिखी गईं। उस लेखन ने हिन्दी सहित्य के एजेण्डा को बदला, अच्छा या बुरा इस बात पर बहस हो सकती है, मगर बदला। केवल हिन्दी नहीं, जितनी भारतीय भाषाओं का साहित्य हम पढ़ पा रहे हैं उनसे लगता है कि चेहरा बदल गया है।

दिशा देने का मामला यूँ भी खासा दिलचस्प है। एक बार नामवर जी से भेंट हुई। बात एक गोष्ठी की हो रही थी। नामवर जी ने बेज़ार होते हुए कहा कि सुशील युवा विमर्श को छोड़कर कुछ भी रख लो। अब ध्यान मूल सरोकारों से भटक रहा है। लेकिन नामवर जी सहित इतना सब मानते हैं कि हिन्दी पत्रिकाओं, सम्पादकों, प्रकाशकों और पाठकों पर इस समय के 'युवा कथा साहित्य' ने स्थायी छाप छोड़ी है।

प्रश्न: भूमंडलीकरण से भौतिकवादी संस्कृति का तेज़ी से विकास हुआ है। जीवन मूल्य, दर्शन, सोच, परिवेश तेज़ी से बदले हैं। अमेरिका में सिक्स्टीज़ में ऐसा हुआ था जिसमें कुछ पुरानी परम्पराएँ, मान्यताएँ टूटी-फूटी थीं और कुछ बच गईं थीं फ़िर एक नए समाज का जन्म हुआ था। उस समय के साहित्य पर भी बहुत असर हुआ था। नई सदी की कहानियों में भी परिवर्तन देखने को मिला है। कई महानगरीय कहानियों को पढ़ कर ऐसा महसूस होता है; पात्र और परिवेश स्वदेशी है, विषय विदेशी। जॉयश्री राय की एक कहानी पढ़ी थी जिसमें उसने एक क्रिश्चियन परिवार का ज़िक्र किया था और वे थैंक्सगिविंग पर टर्की (पीरू पक्षी) को खाते हैं। यह शुद्ध अमेरिकन त्योहार है। पहले-पहल जो अंग्रेज़ अमेरिका की धरती पर जहाज़ से उतरे थे उन्हें खाने को कुछ नहीं मिला था तो उन्होंने टर्की (पीरू पक्षी) मार कर खाया था। खाने से पहले बैठ कर परिवार और मित्रों के साथ ईश्वर का धन्यवाद किया था। विदेश से लिखी गई इस तरह की कहानी पर तो आलोचक हंगामा करने लगते हैं कि पाठक तालमेल कैसे करेगा? आपसे जानना चाहती हूँ कि ऐसी कहानियों और इस तरह की कहानियों से पाठक कैसे तालमेल करता है या ये आलोचकों के दोहरे मापदण्ड हैं।

उत्तर: देखिये परिवर्तन एक प्रक्रिया है। मुअन

सिर्फ कला और साहित्य ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें 'प्रयोग' का प्रयोग इन्हें नष्ट करने के लिए भी किया जाता रहा है। अभी कुछ रचनाकार जो विवरणों और गूगल ज्ञान से इंटरनेटी इंटेलेक्चुअल बनकर अनुभव रहित सूचना प्रधान कहानियाँ लिख रहे हैं, वे यही कर रहे हैं। कुणाल सिंह ने कुछ अच्छी कहानियों के बाद इसी प्रयोगधर्मिता के तहत 'नष्ट गद्य' लिखा।

जोड़ों की व्यवस्था कई मायने में आज से बेहतर थी, लेकिन समय तो आगे बढ़ा ही। अगर भौतिकवादी 'संस्कृति' का विकास हुआ है तो इससे पुरानी मान्यताएँ कितनी टूटीं? आप बताइये -शोषित के प्रति हमारा नज़रिया बदला? स्त्री के प्रति क्या वाकई सामाजिक दृष्टिकोण बदला? क्या किसानों, आदिवासियों को इस संस्कृति से लाभ मिला? मैकाले के क्लर्क आज टाई बाँधकर गुलामों की तरह कारपोरेट कल्चर में क्या मरे नहीं जा रहे? श्रमिकों की हितरक्षा के लिए क्या किया जा रहा है? ....जैसे अनेक प्रश्न प्रत्यक्ष हैं। आप इसे उपभोगवाद कहिए। हर शब्द में संस्कृति लगाना ज़रूरी नहीं होता। कहने को तो आप बलात्कार और भ्रष्टाचार की संस्कृति भी कह सकते हैं। इस उपभोगवाद और शेष मानवीय विवेक में संघर्ष चल रहा है। भविष्य का संसार इसी से निकलेगा। यह सही है कि नई सदी में कहानी का कंटेंट थोड़ा सा बदला है। पर इससे क्या फर्क पड़ता है? क्या हम अनुवाद के जरिए विदेशी भाषाओं की कहानियाँ नहीं पढ़ते? विषय देशी हो या संदर्भ बाहर का हो, मूल बात है कि आप कहानी रच पाए कि नहीं। पाठक और आलोचक हर अच्छी रचना से तालमेल कर लेता है। या रचना खुद ही अपनी पैठ बना लेती है। थैंक्सगिविंग के उदाहरण वाली जिस कहानी की आपने चर्चा की वह औसत रचना है। आलोचक के दोहरे मापदंड हो सकते हैं, लेकिन अच्छा कहानीकार उनकी परवाह नहीं करता। मैं तो चाहता हूँ कि हर बढ़िया कहानी मापदंडो से जड़ीभूत संसार को कँपा दे।

प्रश्न: यह वह दौर है जिसमें कहानी में बहुत से प्रयोग हुए हैं। कई प्रयोग तो सराहनीय हैं जैसे पंकज सुबीर की कहानी 'अँधेरे का गणित'। उसमें पंकज ने प्राकृतिक बिम्बों से समलैंगिक सम्बन्धों का कुशलता से वर्णन किया है। विषय को शालीनता से समेटा है, कहानी को कहीं भी अश्लील नहीं होने दिया। यह कहानी पंकज की बेहतरीन कहानियों में से एक है। पर कुछ कहानीकारों के प्रयोगों ने भाषा और कहानी दोनों को नुकसान पहुँचाया है। कहानी में गद्य कविता का आभास होता है। चित्र -चित्रण और यथार्थ के नाम पर दैहिक सम्बन्धों का लम्बा चौड़ा व्योरा है ...आधुनिक कहानी के नाम पर क्या भाषा और विधा दोनों को नुक्सान नहीं

पहुँचा ?

उत्तर: प्रयोग न हों तो रचना एक सतह पर आकर समाप्त हो जाए। प्रयोग सहज प्रक्रिया का हिस्सा हैं। मगर प्रयोग रचना की बेहतरी के लिए होना चाहिए। खाने में मसाला आदि का जो भी एक्सपेरीमेंट किया जाता है वह उसे स्वादु, पौष्टिक और पाच्य बनाने के लिए होता है। सिर्फ कला और साहित्य ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें 'प्रयोग' का प्रयोग इन्हें नष्ट करने के लिए भी किया जाता रहा है। अभी कुछ रचनाकार जो विवरणों और गूगल ज्ञान से इंटरनेटी इंटेलेक्चुअल बनकर अनुभव रहित सूचना प्रधान कहानियाँ लिख रहे हैं, वे यही कर रहे हैं। कुणाल सिंह ने कुछ अच्छी कहानियों के बाद इसी प्रयोगधर्मिता के तहत 'नष्ट गद्य' लिखा। अनुज में प्रयोगों की उद्दंड महिमा है। और गद्य कविता का आभास। यह तो पराजय है कथा भाषा की। कुछ असफल कवि भी घटनाप्रधान गद्य लिख कर उसे कहानी मनवाने की ज़िद पकड़े हैं। प्रयोग से कहानी की गुणवत्ता बढ़ाने वालों में हैं – शशिभूषण द्विवेदी, अल्पना मिश्र, नीलाक्षी सिंह, वंदना राग, रवि बुले, चंदन पांडेय, पंकज सुबीर, विवेक मिश्र, विमल चन्द्र पांडेय। एकाध नाम और भी हो सकते हैं।

प्रश्न: आपने नया ज्ञानोदय और लमही पत्रिका के कई कहानी विशेषांकों का संपादन किया है। क्या सोचते हैं आप?

उत्तर: 'नया ज्ञानोदय' में तो कालिया जी का निर्णय सर्वोपरि था। वहाँ कहानियाँ अच्छी भी छपीं और खराब भी। 'लमही' के दो कहानी केन्द्रित अंक मैंने सम्पादित किए। यहाँ मेरा निर्णय सर्वोपरि था। यहाँ भी अच्छी और खराब दोनों छपीं। पर यहाँ अच्छी कहानियों का प्रतिशत ज़्यादा रहा। यह मेरा आकलन है। कोई इसके विपरीत भी सोच सकता है। एक कहानीकार सलिल सुधाकर हैं, एक किरण सिंह हैं। कभी इनको पढ़िए तो पता चलेगा कि चित्रण, यथार्थ, ब्योरा और भाषा का सटीक प्रयोग कैसे होता है। विवेक मिश्र की

कुछ विषय भारतीय समाज में दीगर वजहों से बाज़ारवाद की रचना करते रहे हैं। सेक्स इनमें से एक है। इस पर श्रेष्ठ लेखन और संपादन हो सकता है.... हुआ है, लेकिन जब इसके लम्पट पक्षों को लेकर कुछ होता है तब बाज़ार का असर दिखता है।

कहानी 'हनियाँ' और पंकज सुबीर की 'अँधेरे का गणित' इस लिहाज से श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। बाकी जिन्होंने नुकसान पहुँचाया है कहानी को, उन्हें पाठक क्षमा नहीं करेंगे। एक नाम लेना चाहूँगा जिसकी ओर आज के कहानीकार को देखना चाहिए। बिना फ़तवेबाज़ी, बिना प्रायोजन और बिना फालतू प्रयोगों के जो शानदार कहानियाँ लिखता चला जा रहा है। मेरा प्रिय कहानीकार संजय कुंदन। 'श्यामलाल का अकेलापन' पढ़िए, जान जाएँगे। बाकी जिन्हें लिखना नहीं आता है उन्हें कोई देर तक पढ़ता भी नहीं है । अल्ला अल्ला ख़ैर सल्ला ।

प्रश्न: इस समय की कई कहानियाँ बाज़ारवाद से प्रभावित हो कर लिखी गई हैं, कई कहानियों में स्वयं बाज़ारवाद घुसा बैठा है और कई कहानियाँ बाज़ारवाद के विरोध में लिखी जा रही हैं। साहित्य में बाज़ारवाद का क्या और कितना स्थान होना चाहिए। आपकी क्या राय है?

उत्तर: बाज़ार जीवन और रचना का हिस्सा है। उसके प्रति उचित दृष्टिकोण से ही दोनों जगह बात बनती है। यह बाज़ार ही है कि आज हिन्दी साहित्य की इतनी पत्रिकाएँ निकल रही हैं। बाज़ारवाद यह है कि लेखक और सम्पादक साहित्येतर कारणों और प्रभावों से लिखना और छापना शुरू कर दें। कुछ विषय भारतीय समाज में दीगर वजहों से बाज़ारवाद की रचना करते रहे हैं। सेक्स इनमें से एक है। इस पर श्रेष्ठ लेखन और संपादन हो सकता है.... हुआ है, लेकिन जब इसके लम्पट पक्षों को लेकर कुछ होता है तब बाज़ार का असर दिखता है। 'हंस' स्त्री और दलित-विमर्श को मुख्य धारा में लाने वाली पत्रिका है। कई बार इसमें ऐसी कहानियाँ दिख जाती हैं जिनमें केवल 'बाज़ार' होता है। 'नया ज्ञानोदय' ने 'टीआरपी', 'रेटिंग' और 'रीप्रिंट' के कारनामे दिखाए हैं, लेकिन 'सुपर अंक' निकालकर उसने भी यही साबित किया। और लेखक तो कई बार डिमांड पर इतनी जल्दी लिख देते हैं जैसे पाजामे का नाड़ा सिल रहे हों। वे प्रेम, बेवफाई, बलात्कार, गाँव, स्त्री, दलित, सब पर एक सी त्वरा और निष्ठा से लिख कर फाइल में रख जाते हैं। यह बाज़ारवाद है। पहले भी रहा है...आज बढ़ गया है। बाज़ारवाद के चिन्तनीय पक्षों पर संजय कुंदन, प्रभात रंजन, पंकज सुबीर, विमलचन्द्र पाण्डेय, कैलाश बनवासी, पंकज मित्र आदि की श्रेष्ठ कहानियाँ आप पढ़ सकते हैं।

बाज़ारवाद के तहत नए पाठकों की तलाश करनी चाहिए। पत्रिका की पहुँच दूर दूर तक हो, इसका रास्ता निकालना चाहिए। आप देखिए, जिस बाज़ार में किसान खड़ा है, उसके भीषण रूपों की जानकारी रखने वाले सत्यनारायण पटेल, शिवमूर्ति, सुभाषचंद्र कुशवाहा और कैलाश बनवासी जैसे कितने हैं। बाज़ार था, है, रहेगा। बस उसे समझना पड़ेगा।

प्रश्न: नई सदी में प्रवासी कहानी ने हिन्दी साहित्य में अपनी ज़बरदस्त उपस्थिति दर्ज करवाई है। स्त्री लेखन, युवा लेखन, दलित लेखन के समनांतर प्रवासी लेखन आ गया है। फिर भी आपने उन्हें अपने संपादन के विशेषांकों में स्थान नहीं दिया। क्या आप प्रवासी कहानियों को पढ़ते नहीं या उन्हें देश में लिखी जा रही कहानियों से कमतर समझते हैं।

उत्तर: 'प्रवासी कहानी' की आज मुकम्मल पहचान बन चुकी है। एक तरह से यह विश्व हिन्दी का चेहरा है। मैं प्रवासी हिन्दी लेखकों को पढ़ता हूँ। भारत में लिखी जा रही हिन्दी कहानियों की तरह उनमें भी अच्छी या खराब कहानियाँ हैं। मैंने अपने सम्पादन में क्यों नहीं छापा, उसके दो तीन बड़े स्थूल कारण हैं। पहला अप्रैल 2013 के पहले

मैं फेसबुक आदि (आदि में संजाल से जुड़ी सक्रियताएँ हैं।) से बेखबर था। अब फोन पर तेजेन्द्र शर्मा और आपके अलावा किसी से बात नहीं होती। उषा प्रियंवदा और सुषम बेदी से बात जब हुई तब दूसरे मसलों पर। तेजेन्द्र की एक कहानी जो मैं 'लमही' के 'हमारा कहानी समय' में छापना चाहता था, नया ज्ञानोदय में छपी। मैं कुछ कारणों से नहीं छाप पाया था। तेजेन्द्र जी को सारा प्रकरण पता है। उनकी एक बढ़िया कहानी 'दूसरी परम्परा' के प्रवेशांक में छापी है। फिर भी यह मेरी कमी कही जाएगी कि मैंने इन प्रवासी लेखकों से समुचित सम्पर्क नहीं रखा। ये कहानियाँ भारत में लिखी कहानियों से भिन्न मिजाज की हैं और कई बार अपनी गुणवत्ता से ये चकित करती हैं।

प्रश्नः आपने कई साहित्यिक पत्रिकाओं के युवा विशेषांकों का संपादन किया है, पारंपरिक रूप में आपने उम्र से युवा कथाकारों की कहानियों को स्थान दिया है। जबकि युवा विशेषांकों में होना यह चाहिए कि उन कहानियों को स्थान दिया जाना चाहिए जिनमें युवा पीढ़ी की समस्याओं को लिया गया है। जिनका मूल स्वर युवा हो। जो कहानियाँ कथ्य, शिल्प, शैली, अभिधा, लक्षणा और व्यंजना से स्वयं युवा हों चाहे वह अस्सी वर्ष के लेखक ने लिखी हो। क्योंकि बात यहाँ साहित्य की हो रही है। उम्र की नहीं।

उत्तरः देखिए, कुछ शब्द तो रूढ़ हो जाते हैं। अब युवा कहने पर 35-40 तक की अधिकतम उम्र का बोध होता है। अपवाद हर जगह हैं। किसी 20-22 की कन्या के लिए वह 80 वर्ष का वर तो ठीक नहीं होगा जो मन से युवा हो। अपवादों पर न जाएँ, मगर हिन्दी में एक कहानीकार बताएँ जिसने 60-70 के आस पास 'युवा' शब्द के साथ न्याय किया हो। यह ठीक है कि युवा का व्यापक अर्थ है, मगर जीवन में अर्थ का स्वीकृत रूप लेकर ही चलना पड़ता है। जब 'युवा विशेषांक' निकाले तब यही बात ध्यान में रही। वैसे भी हिन्दी में 60-65 की उम्र के लेखक को कई बार 'युवा लेखक' कहकर पुकार लेते हैं। यह सही है कि एक 20 वर्ष का लेखक जटायु की तरह निरुपाय महसूस कर सकता है, लेकिन वह युवा कहा जाएगा। यह अनुशासन बना रहने दीजिए, वरना माहौल मज़ेदार हो जाएगा। आसाराम प्रवृत्ति के लोग डॉक्टरी जाँच के बाद बलात्कार करने की योग्यता का प्रमाणपत्र ले लेंगे और अपनी ध्यान कुटिया में कहानी का ही शारीरिक शोषण करने लगेंगे।

एक बात ध्यान रखिए। युवा होने से ही किसी को श्रेष्ठ रचनाकार का पद नहीं मिलता। अच्छा लेखन किसी भी उम्र में होता है, हो सकता है।

प्रश्नः क्या आप भी स्त्री लेखन, युवा लेखन, दलित लेखन, प्रवासी लेखन के खेमों में बाँट कर कहानियों का मूल्यांकन करते है?

साहित्य में खेमों की क्यों ज़रूरत है?

उत्तरः साहित्य में खेमों की ज़रूरत नहीं होती, यह एक ठीक बात है। स्त्री, युवा, दलित आदि वर्गों में रचना को बाँटकर मूल्यांकन नहीं करना चाहिए, यह भी ठीक है। मैं भी चाहता हूँ कि 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' या 'वसुधैव कुटुम्बकम' या 'सबका मालिक एक' की दिव्य मनोदशा में रहूँ। लेकिन जीवन सुभाषित संग्रह नहीं है- जब समाज में स्त्री और दलित एक सच्चाई है तो कहानी में क्यों नहीं होगी। अतिवादों को छोड़ दें, मगर स्त्री और दलित रचनाकारों ने अपने वर्ग की तकलीफ़ों को ज़्यादा प्रभावों के साथ उपस्थित किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि,मोहन दास नैमिषराय, जयप्रकाश कर्दम, अजय नावरिया, अनीता भारती आदि के लेखन को परखने के प्रतिमान अलग होंगे। यह मैं मानता हूँ। इसी तरह अनामिका, वर्तिका नन्दा, किरण सिंह, अल्पना मिश्र, वंदना राग,उर्मिला शिरीष, नीलेश रघुवंशी के लिए भी आपको अपना न्याय शास्त्र भी संशोधित करना होगा।

अगर किसानों और आदिवासियों के बीच से कवि लेखकों की संख्या बढ़े तो हमें उनको भी कुछ अलग तरीके से पढ़ना होगा। आप बताएँ कि निर्मल और शिवमूर्ति को बिना दो वर्गों में रखे मूल्यांकन कैसे होगा। अमेरिका और ईराक का मूल्यांकन कैसे होगा। नक्सल सक्रियता से प्रेरित रचनाओं और लिव इन संबंधों से उत्पन्न रचनाओं का निर्णय एक ही तराजू से कर देंगे।

'सब सुखी हों' यह प्रार्थना है। हमारा समय शोक गीत है और विलाप का समय है। आपने आदर्श की बात की है, जो मुझे भी अच्छी लगती है। पर कठोर सच्चाई यही है।

प्रश्नः नई सदी के किन कथाकारों में अथाह संभावनाएँ हैं। क्या आप इस सदी के कथा साहित्य की दशा से संतुष्ट हैं। इसकी कौन सी प्रवृत्तियाँ आपको भविष्य के लिए संतुष्ट करती हैं।

उत्तरः नई सदी के जिन लेखकों को मैं पढ़ना चाहता हूँ.. पढ़ता हूँ वे हैं- अलका सरावगी, अल्पना मिश्र, वंदना राग, नीलाक्षी सिंह, आकांक्षा पारे, कविता, पंकज मित्र, संजय कुंदन, शशिभूषण द्विवेदी, चंदन पाण्डेय, रवि बुले, कैलाश बनवासी, अजय नावरिया, विवेक मिश्र, प्रेम भारद्वाज, किरन सिंह, विमलचंद्र पाण्डेय, पंकज सुबीर, तेजेन्द्र शर्मा। कुछ नाम सहसा ध्यान नहीं आ रहे । कुछ आ रहे हैं, लेकिन उनके लेखन को मैं पसंद नहीं करता। वे भी मुझे नापसंद करते होंगे। और हाँ उदय प्रकाश, संजीव, महेश कटारे, सत्यनारायण पटेल, विनोद कुमार शुक्ल, राजेश जोशी, को मैं किसी भी सदी में पढ़ना चाहूँगा। जैसे श्रीलाल शुक्ल, हरिशंकर परसाई, प्रेमचंद, मुक्तिबोध को हर जीवन में पढ़ना चाहूँगा।

अगर नई सदी पर ही केन्द्रित रहूँ तो जो युवा नाम लिए हैं उनमें संभावनाओं की सिद्धियाँ अब स्पष्ट हैं। कथा और शिल्प का संतुलन मुझे प्रभावित करता है। प्रवृत्ति एक ही है समय, समाज और साहित्य की बहुस्तरीयता को समझने की उत्सुकता। मैं सन्तुष्ट भी हूँ और आशान्वित भी। विशेषांक हेतु मेरी शुभकामनाएँ।

सुशील जी, अभी मेरे समालापक और जिज्ञासु स्वभाव को संतुष्टि नहीं मिली। बहुत से विषय अछूते रह गए और बहुत से प्रश्न अनकहे। इसी आशा में यह बातचीत समाप्त कर रही हूँ कि भविष्य में हम अपनी व्यस्तताओं का पुल लाँघ कर फिर से बातचीत करें ताकि बहुत से प्रश्नों को उनके उत्तर मिलें।

बातचीत के लिए समय देने के लिए आपका हार्दिक आभार।

❐

नई सदी के तेरह साल और हिन्दी किस्सागोई : एक पाठकीय नज़रिया

गौतम राजरिशी

जन्म: १० मार्च १९७५, सहरसा, बिहार।

संप्रति: भारतीय सेना। वर्तमान में कर्नल रैंक पर सुदूर कश्मीर में कहीं एक इन्फैन्ट्री बटालियन की कमांड संभाले हुये।

साहित्य: हिन्दी-साहित्य के गंभीर पाठक। थोड़ा-बहुत लेखन भी। लेखन की शुरुआत कविता से। बाद में छंद का मोह जागा और तब से ग़ज़लगो। ग़ज़लों में नए लहजे और बिम्बों के लिए अपनी एक अलग पहचान। नियमित रूप ग़ज़लें हंस, वागर्थ, कादंबिनी, आजकल, कथादेश, लफ़्ज़, आहा ज़िंदगी, शेष, वर्तमान साहित्य आदि मुल्क की तमाम पत्रिकाओं में प्रकाशित। विगत दो-ढ़ाई साल से कहानी-लेखन में सक्रिय भागीदारी। दो कहानियाँ हंस में और एक-एक पाखी और परिकथा में प्रकाशित। इंटरनेट पर 'पाल ले इक रोग नादां (www.gautamrajrishi.blogspot.in) के नाम से लोकप्रिय ब्लॉग।

स्थायी पता द्वारा- डॉ. रामेश्वर झा, वी. आई. पी. रोड, पूरब बाजार, सहरसा-८५२२०१

संपर्क ०१९५५-२१३१७१,
०९७९७७९५९३३

ई-मेल
gautam_rajrishi@yahoo.co.in

गौतम राजरिशी की पहचान ग़ज़लकार के रूप में है किन्तु वे बहुत अच्छे पाठक भी हैं। उन्होंने इस समय के लेखन को खूब पढ़ा है। ये विस्तृत आलेख एक पाठक के नज़रिये से नई सदी के कथा समय को जानने का एक प्रयास है ।

गौतम राजरिशी

इंग्लैंड के विख्यात गेंदबाज फ्रेड ट्रूमैन जब विश्व क्रिकेट इतिहास में तीन सौ विकेट का आँकड़ा छूने वाले पहले क्रिकेटर बने, तो उनका दंभ भरा वक्तव्य था 'मेरे बाद शायद कोई और भी गेंदबाज आयेगा तीन सौ विकेट लेने वाला, लेकिन इतना तो तय है कि उस साले के घुटने थक कर टूट जायेंगे।' ट्रूमैन के इसी दम्भोक्ति के पार्श्व में कहीं से एक इच्छा पनपती है कि काश वो एच.जी. वेल्स वाली टाइम मशीन होती और मैं जा कर बैठ पाता चुपके से सदियों पहले हुई उस हिन्दी कहानी की परिचर्चा में जब कहानीकारों की एक तीन सदस्य वाली टीम ने बड़े सलीके और बड़ी ही चतुराई के साथ अपने से पहले की पीढ़ी और अपने समकालीनों को धता बताते हुये किसी कथित नई कहानी आंदोलन का आगाज़ किया था। उन्हें भी कहाँ पता था श्री फ्रेड ट्रूमैन की तरह कि आने वाली सदी में जाने कितने ऐसे गेंदबाज़ आएँगे जिनके समक्ष तीन सौ का आँकड़ा ठिठोली सा प्रतीत होगा...कि आनेवाली नई सदी में कहानीकारों की ऐसी टीम उभर कर आएगी जो हिन्दी कहानी को एक अलग ही बुलंदी पर ले जाएगी, जहाँ से वो कथित आंदोलन महज एक लतीफ़ा बन कर रह जाएगा।

नई सदी के इन तेरह सालों ने सचमुच ही चमत्कृत कर देने वाले कहानीकारों को हम जैसे हिन्दी के पाठकों से रूबरू करवाया है। बात कथ्य की हो कि शिल्प की हो कि भाषा सौंदर्य की हो...इस नई सदी की करिश्माई किस्सागोई का सम्मोहन हिन्दी साहित्य के पर्दे पर देर तक अपना जादू बिखेरते रहने वाला है।

..तो अगर इस नई सदी के इन तेरह सालों में उभर कर आए इन अजूबे हिन्दी कहानीकारों में से तेरह किस्सागोओं की एक टीम बनानी हो तो कौन-कौन से नाम शामिल होंगे इस में ?

दुश्वारी सी कोई दुश्वारी थी ये, जब इस आलेख के लेखक को यह कार्य सौंपा गया इस हिदायत के साथ कि उसकी अपनी व्यक्तिगत पसंद-नापसंद इस टीम के चुनाव में कोई सियासत ना करे। एक ही रास्ता शेष बचता था ऐसे में और वो था वोटिंग का। तकरीबन चालीस से ऊपर कथाकारों के नाम की फ़ेहरिस्त बनाई गई जिनकी कहानियाँ इस सदी के दौरान पाठकों के समक्ष आईं और फिर इन तेरह सालों में वो अपने पाठकों को और-और सम्मोहित करते चले गये। साथ में इस बात को भी ध्यान में रखा गया कि कम-से-कम एक किताब इन किस्सागोओं की आ चुकी हो हम पाठकों के हाथ में।

आलेख के लेखक ने अपने इक्यावन पाठक-मित्रों को, जिनकी रुचि हिन्दी-साहित्य में है और खास तौर पर जिन्होंने इन कथाकारों का लिखा हुआ पढ़ा है, को ये फ़ेहरिश्त मेल, व्हाटस एप और एसएमएस द्वारा भेजा और उन्हें फ़ेहरिस्त में शामिल कथाकारों के नाम के आगे अपनी पसंद के अनुसार अंक देने को कहा गया- सर्वाधिक पसंदीदा को एक अंक और उसी क्रम में बढ़ते हुये- शर्त ये भी थी कि एक अंक-विशेष देने के बाद दुबारा वो अंक किसी अन्य कथाकार को ना दिया जाये। इक्यावन में से कुल चौवालीस जवाब आए और वो भी जाने कितनी बार फरियाद करने के बाद। कुछ मित्रों से फोन पर लंबी बहसें भी हुई इसी सिलसिले में। हर कथाकार को मिले अंको को लेखक द्वारा जोड़ा गया और फिर सबसे कम अंक पाए तेरह कथाकारों की फ़ेहरिस्त बनाई गई।

आइये देखते हैं इस सदी के इन तेरह सालों में सर्वाधिक पसंद किए जाने वाले तेरह किस्सागोओं की टीम को।

फ़ेहरिस्त वर्णमाला के क्रमानुसार है, न कि प्राप्त अंकानुसार :-

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
आलेख

अल्पना मिश्र

अल्पना मिश्र की पहली कहानी 'ऐ अहिल्या' थी, जो हंस के अक्टूबर, १९९६ अंक में प्रकाशित हुई थी। तब से लेकर अपनी हर कहानियों के साथ अल्पना की लेखनी अपने पाठकों के साथ एकाकार होती गई। २००६ में अपनी पहली किताब 'भीतर का वक़्त' से एकदम से चर्चा में आईं अल्पना ने फिर अपने इस रुतबे को घटने ना दिया और अपने दूसरे संकलन 'छावनी में बेघर' और अभी साल भर पहले राजकमल से प्रकाशित 'क़ब्र भी क़ैद औ' ज़ंजीरें भी' के मार्फत अपने पाठकों से लगातार सीधा संवाद करती रही हैं। चित्रा मुद्गल के अनुसार 'गहन भीतरी संवेदना की आँच में सीझी हुई अल्पना की कहानियाँ अपने सरोकारों में सघन व्यापकता समेटे हैं, जो राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक-अनैतिक मूल्यों को उनके बहुपक्षीय बिन्दुओं की विरूपताओं और विडम्बनाओं से उपजी द्वंद्वात्मकता के तनाव में जिस दक्षता से महीन बुनावट में सिरजती हैं- चकित करती हैं।' ...और अल्पना सचमुच चकित करती हैं कि तकरीबन छः साल पहले की लिखी उनकी कहानी 'मिड डे मील' को आज सच होते देखते हैं हम...लेखिका द्वारा वर्षों पहले भाँपे गए या भाँप लिए गए किसी कड़वे हक़ीक़त को कहानी में गूँथ देने की इसी अनूठी कला ने उनके पाठकों को चमत्कृत कर रखा है। अपनी चर्चित कहानी 'बेदख़ल' में लेखिका कहती भी हैं कि 'वे सच, जो सच के भीतर छिपे रहते हैं, दिखते नहीं, जिन्हें बेदख़ल मान लिया जाता है, वे सच, अपनी अनुपस्थिति में भी उपस्थित होते हैं'। ऐसे ही सच से अपने पाठकों को मिलवाना तो एक किस्सागो की ज़िम्मेदारी है।

इन दस-एक वर्षों में कुछ अविस्मरणीय कहानियाँ भेंट दी हैं अल्पना मिश्र ने हम पाठकों को...भीतर का वक़्त, मुक्ति-प्रसंग, छावनी में बेघर, सड़क मुस्तकिल, ऐ अहिल्या, लिस्ट से गायब आदि। जल्द ही उनका एक बहुप्रतीक्षित उपन्यास 'अनिहारी पल छिन में चमका' आधार प्रकाशन से आने वाला है।

अपनी अब तक की लिखी समस्त कहानियों में अल्पना 'उपस्थिती' को सर्वाधिक पसंदीदा के रूप में चुनती हैं और अपने समकालीनों की लिखी कहानियों में नीलाक्षी सिंह की 'एक था बुझवन' और विमल चंद्र पाण्डेय की अभी-अभी लमही में आई कहानी 'काली कविता के कारनामे' का ज़िक्र करती हैं।

कविता

अपनी पहली कहानी 'सुख' (हंस, फरवरी २००२) से हिन्दी साहित्य में प्रवेश करने वाली कविता का एक अलग ही क्रेज है उनके पाठकों के बीच...जैसा कि राजेन्द्र यादव कहते हैं 'कविता की कहानियों को पढ़ना 'नई लड़की' को जानना है'। अपनी पहली कहानी के बाद तकरीबन इन ग्यारह सालों में खूब सारी किताबें दी हैं कविता ने अपने पाठकों को- भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित दो कहानी-संकलनों 'मेरी नाप के कपड़े' और 'उलटबाँसी' के अलावा सामयिक प्रकाशन से एक कहानी-संग्रह 'नदी जो अब भी बहती है' और एक उपन्यास 'मेरा पता कोई और है'।

कविता की कहानियों में...अधिकांश कहानियों में स्त्री का मौजूदा परिवेश के प्रति एक अपरिभाषित-सा सहमापन है। नहीं, ये कहीं से किसी विमर्श की तलाश करता हुआ सहमापन नहीं है...बल्कि एक फैला हुआ परिस्थितिजन्य सत्य है, इस दौर की क्रूर मानसिकता को उधेड़ने भर का प्रयास है और जिसे पाठकों ने कविता की कहानियों के मार्फत देखा, भाला और सराहा है। बेशक तमाम आलोचक, समीक्षक उनकी कहानियों पर लिखते हुये स्त्री-विमर्श आदि का ठप्पा लगाते रहे...एक पाठक जब इन कहानियों से गुज़रता है तो उन्हें इन कथित ठप्पों से परे रखता और यही कविता की लेखनी का प्लस प्वाइंट बनता है। कविता की अधिकांश कहानियों में मौजूद सूत्रधार...वो 'मैं' की जुबानी बुनता किस्से सुनाता सूत्रधार, जहाँ लेखिका को किस्सा कहना आसान करता है, वहीं उसे एक अलग-सी मुश्किल भी देता है कि कहीं बार-बार वो खुद को दोहरा तो नहीं रहा। वो मुश्किलपन चाहे 'जिरह : एक प्रेमकथा' के अद्भुत शिल्प से आसान होता हो या फिर 'देहदंश' के स्वालाप से।

अपने समकालीनों कथाकारों में से एक की अपने पसंद की कहानी चुनने के लिए कहे जाने पर कविता, नीलाक्षी सिंह की 'एक था बुझवन' और मनोज कुमार पाण्डेय की 'पानी' का ज़िक्र करती हैं। अपनी खुद की लिखी पसंदीदा कहानियों में 'देहदंश', 'उलटबाँसी', 'पत्थर माटी दूब' और 'लौट आना ली' का नाम लेती हैं। जल्द ही उनका एक और उपन्यास 'चेहरे' शीर्षक से आधार प्रकाशन से आ रहा है।

कुणाल सिंह

किसी किस्सागो की किस्सागोई का तिलिस्म अगर अपने पाठकों पर वो 'सर चढ़ कर बोलने' वाली कहावत को चरितार्थ करता है...तो वो कुणाल की किस्सागोई है। अक्टूबर, २००४ में निकले वागर्थ के नवलेखन अंक ने किस्सागोओं की जिस नई पौध का अंकुरण किया, कुणाल उनमें सबसे ज़्यादा लहलहाते नज़र आए। अपने दो कहानी संकलनों 'सनातन बाबू का दाम्पत्य' और 'रोमियो

जूलियट और अँधेरा' तथा एक उपन्यास 'आदिग्राम उपाख्यान' से भाषा-सौंदर्य और शिल्प को नया आयाम देते हुये, जहाँ कुणाल इस पीढ़ी के सबसे चर्चित कथाकारों में शुमार होते हैं, वहीं अपने नाम के साथ विवादों का अंबार भी खड़े किये हुए हैं। ज्ञानपीठ संस्था में अपनी पैठ से की जा रही मनमानी का मामला हो या फिर अपने उपन्यास 'आदिग्राम उपाख्यान' को संयुक्त रूप से मिले वर्ष २०११ का नवलेखन पुरस्कार लेने पर उठी ऊँगलियों का प्रश्न हो- कुणाल अपनी कहानियों की तरह अपने नाम को भी ज़िक्रे-सुख़न में रखने का मोह छोड़ नहीं पाते।

लेकिन तमाम विवादों के बावजूद, उनकी कहानियों को नज़रअंदाज़ करना नामुमकिन है। 'साइकिल कहानी', 'प्रेमकथा में मोजे की भूमिका', 'रोमियो जूलियट और अँधेरा', 'सनातन बाबू का दाम्पत्य', 'डूब', 'झूठ'...और ऐसी तमाम कहानियों के अद्भुत शिल्प और कथ्य के लिये कुणाल लंबे समय तक याद रखे जाएँगे।

अभी अभी उनका तीसरा कहानी संकलन 'इतवार नहीं' एक बार फिर ज्ञानपीठ प्रकाशन से साया हुआ है।

गीत चतुर्वेदी

लंबी कहानियों के बादशाह गीत चतुर्वेदी अपने अनूठे अंदाज़ और अनोखे शिल्प की वजह से इस पीढ़ी में सबसे अलग-थलग खड़े दिखते हैं। कुल जमा छः कहानियों से ही हिन्दी कथा-साहित्य के सफ़े पर अपना अमिट दस्तख़त छोड़ते हुए गीत, तमाम शोर-शराबे से दूर, चुपचाप खड़े अपनी किस्सागोई का जादू अपने पाठकों पर फैलते देखते हैं और हौले से मुस्कुराते हैं। पहली कहानी 'सावंत आंटी की लड़कियाँ'(पहल, अगस्त २००६) के पात्र, कहानी का परिवेश, अश्लीलता के टैग से बस तनिक सा खुद को बचाता हुआ कहानी का मंत्रमुग्ध करता भाषा-सौंदर्य...इन सबने अलग-अलग और इकट्ठे मिल कर गीत को एक झटके में स्थापित किस्सागो का रुतबा दे दिया। जैसा कि ज्ञानरंजन इस कहानी को लेकर कहते हैं 'ये गीत की ऐसी रचना है, जिसके पात्र कठोर क्षेत्रों में प्रवेश करते हुए लगभग बेक़ाबू हैं...उनका जोखिम ज़बरदस्त है, शास्त्रीयता का मुखौटा तोड़ने वाला। बावजूद इसके यह कहानी फ़तह नहीं, त्रासदी है'।

गीत की सारी कहानियों का फ़लक किसी उपन्यास से कम नहीं है। एकदम अलग-सी शैली में सुनाई गई ये कहानियाँ, जिनके पात्र एक कहानी से निकल कर दूसरी कहानियों में विचरते नज़र आते हैं...ठेठ गालियाँ निकालते सुनाई देते हैं...हम पाठकों को अपने आस-पास के ही दिखते हैं, नेक्स्ट-डोर नेबर जैसे और बगैर किसी भूमिका या परिचय के हम पाठक गीत के पात्रों से जुड़ते चले जाते हैं। एक किस्सागो के लिए इस से बड़ी उपलब्धि और क्या हो सकती है भला ?

तीन-तीन कहानियों वाली उनकी दो किताबें 'सावंत आंटी की लड़कियाँ' और 'पिंक स्लिप डैडी' (जिसे गीत 'पीएसडी' पुकारना पसंद करते हैं) राजकमल प्रकाशन से २०१० में आ चुकी हैं। जल्द ही उनका एक उपन्यास 'रानीखेत एक्सप्रेस' भी आने वाला है।

चंदन पाण्डेय

...एंड व्हेन ऑल अबाउट नरेटिंग ए स्टोरी वाज लुकिंग ग्लूमी...रियल ग्लूमी, देयर केम चंदन पाण्डेय ! २००७ के ज्ञानपीठ नवलेखन अवार्ड के विनर चंदन अपनी स्टोरीज में वेरायटी ऑव एक्सपेरिमेंट करने के अलावा, ही टेक्स ऑल वी रीडर्स ऑन ए डिफरेंट जर्नी...हर बार, बार-बार। फ्रॉम हिज वेरी फ़र्स्ट स्टोरी 'परिंदगी है कि नाकामयाब है...', जो वागर्थ के २००४ अक्टूबर अंक में पब्लिश हुई थी, चंदन हैज नॉट स्टॉप्ड मेसमेराइजिंग हिज रीडर्स। अपनी फ़र्स्ट स्टोरी में ही फियर और हेल्पलेसनेस का कुछ ऐसा कॉम्बिनेशन बांधा उन्होंने प्रोटेगोनिस्ट गीता के करेक्टराइजेशन के जरिये कि इट वाज लाइक एन इंस्टेंट मैजिक...ए मैजिक दैट सरपास्ड ऑल हिज कंटेम्परिज। अभी कुछ दिनों पहले, आई आस्क्ड हिम कि व्हाय दिस टाइटल 'परिंदगी है कि...' एंड व्हाय नॉट 'कक्का हौ', तो खुल के हँसे थे वो और फिर ये शेर सुनाया 'गो आस्माँ कफ़स से बहुत खुशज़हाब है' लेकिन परिंदगी है कि नाकामयाब है'। ओके, एनफ़ ऑव हिंगलिश...दरअसल ये आफ्टर इफेक्ट था चंदन की एक प्रयोगात्मक कहानी 'सिटी पब्लिक स्कूल, वाराणसी' पढ़ने के बाद का...अहा, क्या किस्सागोई है।

अपने पहले कहानी-संकलन 'भूलना', जो भारतीय ज्ञानपीठ से तकरीबन पाँच साल पहले आ चुकी है, के बाद से चंदन ने हम पाठकों को दो कहानी की किताबें और दी हैं - पेंगुइन प्रकाशन से 'इश्क़फ़रेब' और अभी इसी साल ज्ञानपीठ से 'जंक्शन'।

चंद अविस्मरणीय कहानियों का जिक्र अगर करना हो, जिनकी वजह से चंदन अरसे तक याद रखे जायेंगे, तो उनमें 'भूलना', 'रेखाचित्र में धोखे की भूमिका', 'ज़मीन अपनी तो थी', 'कवि' और 'परिंदगी है कि...' शामिल होंगी। 'रेखाचित्र में धोखे की भूमिका' चंदन के कई समकालीन लेखकों ' लेखिकाओं की भी पहली पसंद है। अभी-अभी पहल के ९१वें अंक में आई उनकी कहानी 'लक्ष्य शतक का नारा', अपने अलग ही ट्रीटमेंट और दुर्लभ शिल्प की वजह से खूब चर्चे में है।

चंदन पाण्डेय अपनी लिखी तमाम कहानियों में अपनी सर्वाधिक पसंदीदा कहानी को चुनने के आग्रह पर अपने ही खास अंदाज़ में कहते हैं 'किसी को भी नहीं, क्योंकि एक भी पत्ता अतिरिक्त नहीं' और समकालीन कहानियों में से राजशेखर की कहानी 'फिर वह कौन सा तूफान था पम्मी' को चुनते हैं।

जयश्री राय

सामने फैला अथाह समन्दर, ऊपर टंगा नीला चाँद, क्वार का महीना, अनझिप आँखें, कोई रूहानी इश्क़ का नग्मा, टकीला के शॉटस, टिटहरी की तरह कोई उदास निसंग शाम, पुटूस के फूल, वर्जित-सी छुअन एक, रिश्तों की उधड़ी सिलाई को बुनती कोई एकाकी नायिका...जयश्री की किस्सागोई ! किस्सागोई या लहराती-सी नज़्म का धीमा आलाप ? संजीव कहते हैं 'जयश्री की कहानियों में जो चीज़ पहली ही नज़र में प्रभावित करती है, वो है उनकी रंगों-सुगंधों के झरने-सी झरती, इंद्रधनुषी वितान तानती भाषा'। हंस के मार्च २०१० अंक में 'मुबारक पहला कदम' के जरिये अपनी पहली ही कहानी 'पिंड-दान' से सबका ध्यान आकृष्ट करने वाली ये लेखिका इन तीन सालों के दौरान हिन्दी कथा-साहित्य में अपनी एक विशिष्ट पहचान बना चुकी हैं। हम पाठकों की किताब वाली आलमारी में तीन कहानी-संकलनों 'खारा पानी', 'अनकही'(दोनों शिल्पायन से) और 'तुम्हें छू लूँ जरा'(सामयिक) और दो उपन्यास 'औरत जो नदी है'(शिल्पायन) और 'साथ चलते हुए'(सामयिक) डाल कर जयश्री ने अपना एक खास फैन-फौलोइंग बना रखा है।

उनकी लेखनी के पास बिंबो का भंडार है और उन बिंबों को एक खास तरह से उकेरने का अंदाज़ भी। उनकी नायिकाएँ अपनी उदासियों में भी एक अलग ही रूहानी किस्म का आनंद देती हैं अपने पाठकों को...दु:ख का भी जैसे उत्सव-सा मनाया जा रहा हो कहानियों से गुज़रते हुए...चाहे वो 'गुलमोहर' की अपराजिता हो या 'माँ' की रामेश्वरी देवी या फिर 'तेरहवां चाँद' की अंतरा। जयश्री के नायक भी उनकी नायिकाओं से अलग कहाँ ठहरे...'पिंडदान' के जोधन बाबू की ट्रेजेडी, 'निषिद्ध' के 'मैं' का डिलेमा या 'सूअर का छौना' के दुखी का स्ट्रगल...सब जैसे अपने अलग-अलग अवतार में अपनी उदासी को सेलेब्रेट कर रहे होते हैं।

अपने समकालीनों में किसी एक कहानी का चुनाव करने के लिए कहे जाने पर जयश्री, मनोज कुमार पाण्डेय के अभी हाल ही में नया ज्ञानोदय में प्रकाशित कहानी 'पानी' को चुनती हैं और अपनी लिखी कहानियों में 'सूअर का छौना' को।

नीलाक्षी सिंह

यूँ इस आलेख में सन दो हजार दशक के शुरुआत से लिखने वाले कथाकारों की पीढ़ी को ही शामिल करने की ही बात थी और नीलाक्षी की पहली कहानी 'फूल' वागर्थ के मई, १९९८ अंक में प्रकाशित हुई थी...लेकिन उस एक कहानी के बाद से लेखिका की अन्य तमाम कहानियाँ सन दो हज़ार से मंजरे-आम होना शुरू हुईं। जहाँ तक मेरी अपनी याददाश्त की क्षमता है, तो इंडिया टुडे की २००२ वाले साहित्यिक वार्षिक अंक में आई उनकी कहानी 'उस शहर में चार लोग रहते थे' से नीलाक्षी ने सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया था। ये कहानी मेरे लिए कुछ विशेष इसलिए भी थी कि कहानी की नायिका की तरह ही मेरे बैचमेट की मंगेतर ने, कारगिल युद्ध में मेरे बैचमेट की शहादत के बाद, कभी शादी ना करने का फैसला किया था। इन दस-एक वर्षों में नीलाक्षी की जाने कितनी कहानियों ने हम पाठकों को कैसे तो कैसे झकझोरा, रुलाया और हँसाया है। उनकी कुछ कहानियों के शीर्षक में ही ऐसा खिंचाव है कि शीर्षक पढ़ते ही पूरी कहानी तुरत से पढ़ने को जी चाहे। अब चाहे वो 'टेकबे त टेक न त गो'(जो अब 'प्रतियोगी' शीर्षक से उनकी किताब में संकलित है) हो या फिर 'माना, मान जाओ ना' हो या फिर 'रंगमहल में नाची राधा' हो...जितना दिलचस्प शीर्षक, उतनी ही दिलचस्प कहानियाँ।

नीलाक्षी के अब तक दो कहानी-संकलन 'परिंदे का इंतजार-सा कुछ' और 'जिनकी मुट्ठियों में सुराख़ था' और एक उपन्यास 'शुद्धिपत्र' हम पाठकों के हाथ में आ चुके हैं। तीनों किताबें भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हैं।

जब नीलाक्षी से उनकी अपनी लिखी समस्त कहानियों में उनकी पसंद की कहानी का नाम लेने को कहा तो, उन्होंने बगैर कोई वक़्त लिए 'प्रतियोगी' का ज़िक्र किया, जो उनकी पहली किताब 'परिंदे का इंतजार सा कुछ' में पहली कहानी के तौर पर शामिल है। अपने समकालीनों द्वारा लिखी कहानियों में वो कुणाल की 'सनातन बाबू का दाम्पत्य' को सर्वाधिक पसंद करती हैं।

पंकज मित्र

पंकज मित्र की भी पहली कहानी इस दशक की शुरुआत से पहले ही आ चुकी थी। उनकी पहली कहानी 'एपेन्डिसाइटिस' हंस के सितंबर १९९६ अंक में प्रकाशित हुई थी और उनकी ख़ासी चर्चित कहानी 'पड़ताल', जिसे इंडिया टुडे की १९९७ वाली वार्षिकी द्वारा आयोजित प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार मिला था, और जो बाद में हंस में भी प्रकाशित हुई थी। किन्तु महज इन दो कहानियों की बदौलत पंकज मित्र को इस पीढ़ी के किस्सागोओं में शामिल ना करना पाप-सा होगा और विशेष कर तब, जब मित्रों की वोटिंग में वो सबसे अव्वल कथाकारों में से एक हैं।

'पड़ताल' कहानी की चर्चा छेड़ने पर और यूँ ही कहने पर कि ये कहानी पहले इंडिया टुडे और फिर बाद में हंस में भी प्रकाशित हुयी थी, पंकज

मित्र तनिक सकुचा से गए थे। उनकी ये विनम्रता दिल को छू गई, जिस तरह से वो सफाई देने लगे। ये सकुचाहट एक बड़े कथाकार के एक बहुत बड़े एथिकल वैल्यू को दिखाता है और हम जैसे उनके प्रशंसकों को उनका और-और कायल बनाता है।

एक विशिष्ट-सी ठेठ शैली में कथा सुनाते पंकज मित्र अपने पाठकों को गुदगुदाते हुये किस्सागोई के चरमोत्कर्ष पर ले जाते हैं। 'क्विज़मास्टर', 'बे ला का भू', 'निकम्मों का कोरस', 'हुड्डकलुल्लु', 'हरी पुत्तर और गजब खोपड़ी' और ज्ञानोदय में छपी 'पप्पू कांट लव साला' जैसी कहानियाँ हम पाठकों के मन-मस्तिष्क पर अरसे तक ज़िंदा रहेंगी। उनकी अब तक दो कहानी की किताबें आ चुकी हैं - 'क्वीज़मास्टर' और 'हुड्डकलुल्लु'। तीसरा कहानी संकलन 'ज़िद्दी रेडियो' भी जल्द ही राजकमल प्रकाशन से आने वाला है।

अपनी लिखी पसंदीदा कहानियों में वो 'बे ला का भू' और 'क्वीज़मास्टर' का नाम लेते हैं और समकालीनों की कहानियों में कुणाल सिंह के 'सनातन बाबू का दाम्पत्य' और विमल चंद पाण्डेय के 'डर' का ज़िक्र करते हैं।

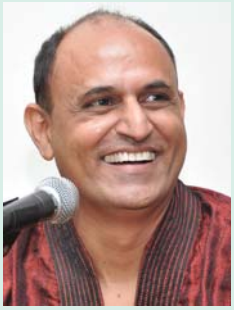

पंकज सुबीर

एक प्रसिद्ध पत्रिका के हाल के अंक में अपने एक वक्तव्य में राजेन्द्र यादव जिन कहानिकारों की कहानियाँ लंबे समय तक ज़िंदा रहेंगी के बारे में जब चर्चा करते हैं तो उसमें पंकज सुबीर का नाम लेते हैं। २०११ में अपने पहले उपन्यास 'ये वो सहर तो नहीं' के लिए कुणाल के साथ संयुक्त रूप से ज्ञानपीठ का नवलेखन पुरस्कार जीतने के पहले से, बहुत पहले से अपनी कहानियों में अलग-सी शैली और शुद्ध कथारस का आस्वादन कराते हुये पंकज सुबीर हम पाठकों को लुभाते आ रहे हैं।

अपने समकालीन किस्सागोओं में पंकज सुबीर को जो एक अलग-सा, एक हटकर-के वाला इमेज मिलता है, वो उनकी कलम से निकले अनूठे 'विट' की वजह से...चुटकियाँ लेते, अपने पाठकों को गुदगुदाते उनके खासम-खास 'वन लाइनर', जो यत्र-तत्र बिखरे पड़े मिलते हैं उनकी कहानियों में। अपनी पहली कहानी 'और कहानी मरती है', जो हंस के जुलाई २००४ अंक में छपी थी और जिस पर लेखक को प्रेमचंद स्मृति सम्मान भी मिला था और उसके तत्काल बाद दूसरी कहानी 'एनसरिंग मशीन', जो वागर्थ के अक्टूबर, २००४ वाले अंक में शामिल हुई थी, के बाद से पंकज सुबीर ने हम पाठकों को अपने एक उपन्यास के अलावा दो कहानी की किताबें-ज्ञानपीठ से नवलेखन के लिए अनुशंसित 'ईस्ट इंडिया कंपनी' और सामयिक से आयी 'महुआ घटवारिन' दे चुके हैं। 'महुआ घटवारिन' को इस साल कथा यूके सम्मान के लिए भी चुना गया है। विषय की विविधता एक विशेष दौलत है पंकज सुबीर की किस्सागोई की। जहाँ उनके पास बाज़ार की क्रूरता का रेखाचित्र है तो वहीं उनके पास रिश्तों को बखान करता नया नज़रिया भी। यदि अपने याददाश्त पर भरोसा करूँ तो मुझे नहीं लगता कि पुरूष समलिंगता पर 'अँधेरे का गणित' जैसी कोई कहानी पहले या अब तक लिखी गई है। प्रगतिशील वसुधा और बनास जन के हाल के अंकों में 'दो एकांत' और 'सी-७०९६' जैसी लीक से हट कर लिखी गई कहानियाँ पंकज की लेखनी को एक नया विस्तार देती हैं।

अपनी लिखी तमाम कहानियों में किसी एक का चुनाव करने के लिए कहे जाने पर पंकज सुबीर 'अँधेरे का गणित' और 'ईस्ट इंडिया कंपनी' का नाम लेते हैं। 'अँधेरे का गणित' का कथ्य जहाँ हर तरफ से अश्लील हो जाने की संभावना लिए खड़ा था, वहीं ये पंकज सुबीर की लेखनी का ही चमत्कार कहा जाएगा कि महज बिंबों के जरिये उन्होंने सारे दृश्यों को निभाया और उस से भी बड़ी बात कि एक स्थापित होते हुए लेखक द्वारा इतने बोल्ड सबजेक्ट को उठाना एक बहुत बड़ा रिस्क था। अपने समकालीनों की कहानियों में सर्वाधिक पसंद आई कहानियों में वो मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'कठपुतलियाँ' और 'स्वाँग' का, कुणाल की 'सायकिल कहानी' का और चंदन पाण्डेय की 'परिंदगी है कि नाकामयाब है' का ज़िक्र करते हैं...ना सिर्फ ज़िक्र करते हैं, बल्कि इन चारों कहानियों पर खूब विस्तार से चर्चा करते हैं।

प्रत्यक्षा

कोई चितेरा (इस नाम के संदर्भ में चितेरी) जब ब्रश छोड़ कर कलम उठा ले और किस्से बुनने लगे तो पन्ने पर जो शब्दों के जरिये एक तस्वीर-सी उभर कर आती है, वो प्रत्यक्षा की कहानियाँ हैं। उजले सफ़ेद पन्नों के कैनवास पर अक्षरों की कूची से शब्दों के एक-से-एक चटकीले रंग देते हुए प्रत्यक्षा जब कहानी सुनाती हैं, तो हम जैसे उनके जाने कितने ही बेरंगे पाठक रंग-रँगीले हो उठते हैं। प्रत्यक्षा की पहली कहानी 'सीढ़ियों के पास वाला कमरा' वागर्थ के अक्टूबर २००६ वाले अंक में आई थी...और तब से अपनी दो कहानी की किताबों- 'जंगल का जादू तिल-तिल' भारतीय ज्ञानपीठ और 'पहर दोपहर ठुमरी' हार्पर कॉलिन्स के साथ लगभग हुकूमत करती हैं हम पाठकों के मन-मस्तिष्क पर। 'जंगल का जादू तिल-तिल' में शामिल छोटी-छोटी कुल तेईस कहानियों से गुज़रना जैसे...जैसे किसी पेंटर के स्टूडियो में उसकी चित्र-प्रदर्शनी में खड़े होना और थमक-थमक कर एक पेंटिंग से दूसरे पेंटिंग तक टहलना है...'दिलनवाज़, तुम बहुत अच्छी हो' की नायिका से तो इश्क़ ही हो जाता है मुझ जैसे पाठक को। 'पहर दोपहर ठुमरी' में शामिल कुछ कहानियाँ जैसे 'कूचाए नीमकश' या फिर 'केंचुल' या...या फिर 'ललमुनिया, हरमुनिया'...की स्केचिंग में देर शाम को दूर से आती ठुमरी के ठहरे हुए आलाप का लुत्फ़ मिलता है। 'कूचा-ए-नीमकश' का वो

कहवाघर भी बाकी पात्रों के साथ इस तरह सजीव होकर उठता है कि पढ़ते हुये मन करे, उसका पता जानने का और वहाँ जाकर कॉफी पीने का।

कभी पूछा था बहुत पहले प्रत्यक्षा से उस कहवाघर के बारे में कि कहाँ का है वो। जवाब में लेखिका ने इतनी सादगी से बताया कि वो तो मन के किसी कोने में कल्पना की ज़मीन पर बसा है...इतनी सादगी भरा जवाब था वो कि उफ़्फ़ ! अपनी लिखी कहानियों में प्रत्यक्षा 'जंगल का जादू तिल तिल' और 'कूचा-ए-नीमकश' का नाम लेती हैं और समकालीनों की कहानियों में वंदना राग की 'स्वांग' और गीत चतुर्वेदी की 'सिमसिम' का ज़िक्र करती हैं।

प्रभात रंजन

राष्ट्रीय सहारा द्वारा २००४ की शुरुआत में आयोजित कहानी-प्रतियोगिता में अपनी अद्भुत कहानी 'जानकी पुल' से प्रथम पुरस्कार जीतने वाले प्रभात रंजन इस टीम के सशक्त गेंदबाजों में से हैं। अपनी पहली कहानी 'मोनोक्रोम', जो वर्ष १९९९ में जनसत्ता में आई थी के बाद से लगातार प्रभात अपनी कहानियों से हम तमाम पाठकों का ध्यान अपनी ओर खींचे रहे हैं...चाहे वो 'फ्लैश बैक' के बाँके बिहारी का अजब-गज़ब चरित्र चित्रण हो या फिर 'डिप्टी साहेब' के चंद्रमणि अक्का सीएम का गुदगुदाता हुआ रेखाचित्र हो या फिर 'मिस लिली' की लिली ठाकुर का छोटे शहर में बड़े सपने देखने की गुस्ताखी पर मिला दंड हो, प्रभात रंजन हमेशा एक परिपक्व किस्सागो की तरह ही खुद को अपने पाठकों के सामने पेश किया है। ज़बरदस्ती के भाषायी आडंबर से परे महज अपनी किस्सागोई के जरिये अपनी दो किताबों 'जानकीपुल' (भारतीय ज्ञानपीठ) और 'बोलेरो क्लास' (प्रतिलिपि बुक्स) को हम जैसे अपने पाठकों की किताब की आलमारी में एक ज़रूरी उपस्थिति बना दिया है। 'जानकीपुल' के २००८ में ज्ञानपीठ से प्रकाशित होने के तीन साल बाद अपनी दूसरी किताब 'बोलेरो क्लास' से खुद को और एक्सटेंड करते हुये प्रभात 'इंटरनेट, सोनाली और सुबिमल मास्टर की कहानी', 'अथ कथा ढेलमरवा गोसाईं' और 'ब्रेकिंग न्यूज उर्फ इंदल सत्याग्रही का आत्मदाह' जैसी कहानियों द्वारा एक नया धुला धुला सा आकर्षण बुनते हैं अपने पाठकों के इर्द-गिर्द। अपनी लिखी समस्त कहानियों में सबसे पसंद वाली कहानी चुनने का आग्रह करने पर प्रभात 'मिस लिली' की चर्चा करते हैं और समकालीनों में नीलाक्षी सिंह की 'परिंदे का इंतजार सा कुछ' को चुनते हैं।

मनीषा कुलश्रेष्ठ

आह ! आँखों के रस्ते दिल दिमाग पर हावी होता हुआ इश्क़ का अफ़साना था वो कोई, जब पहली बार मनीषा का लिखा पढ़ा था...'कुछ भी तो रूमानी नहीं'...नहीं, कुछ भी तो रूमानी नहीं था उसमें सचमुच...जो था सब रूहानी था, स्वर्गिक था। कहानी की नायिका वनमाला से तो इश्क़ हुआ ही साथ में लेखिका से भी। चिड़िया के अंडे को किसी आदम स्पर्श के बाद तज देने की बात को रचनाकार द्वारा फेंक दिये गये ड्राफ्ट से जोड़ना...उफ़्फ़ ! कैसी इमेजरी थी कि घंटों एक ट्रांस की अवस्था में रहा था ये पाठक। वो तब की बात थी...सदियों पहले की...तब से 'टिटहरी', 'अधूरी तस्वीरें', 'लेट अस ग्रो टूगेदर', 'कालिंदी', 'फाँस', 'स्टिकर', 'कठपुतलियाँ', 'बिगड़ैल बच्चे', 'स्वांग', 'भगोड़ा', 'कुरजां', 'केयर ऑफ स्वात घाटी'...और अभी हाल ही में आई हुई किसी पत्रिका में 'मि. वालरस'...इन तमाम कहानियों से गुज़रते हुये मनीषा के मोहपाश में बंधते ही चले गए जाने कितने मेरे जैसे पाठक।

अपनी अद्यतन किताब 'गंधर्व गाथा' में जिन फ्रीक्स का ज़िक्र उठाती हैं मनीषा, जैसे खुद को ही डिफाइन नहीं कर रही होती हैं वो ? खुद भी किसी फ्रीक से कम कहाँ लगती हैं हम पाठकों को हमारी ये महबूब लेखिका। तेरह सालों से अनवरत एक के बाद एक सम्मोहित करती कहानियाँ किसी फ्रीक के वश की ही बात तो हो सकती है। पहली कहानी 'क्या यही वैराग्य है' कथादेश के सितम्बर २००० वाले अंक में आई थी। तब से लेकर पाँच कहानी-संकलन- 'बौनी होती परछाईं' (मेधा बुक्स), 'कुछ भी तो रूमानी नहीं' (अंतिका प्रकाशन), 'कठपुतलियाँ' (भारतीय ज्ञानपीठ), केयर ऑफ स्वात घाटी' (राजकमल) और 'गंधर्व-गाथा' (सामयिक) और दो उपन्यासों- 'शिगाफ़' (राजकमल) और 'शाल-भंजिका' (भारतीय ज्ञानपीठ), के जरिये किस्सागोई की जिस ऊँचे सिंहासन पर जा बैठी हैं मनीषा कुलश्रेष्ठ वो बस कोई फ्रीक ही कर सकता है।

अपनी अब तक की लिखी सारी कहानियों में 'कुरजाँ' को दिल के सबसे करीब मानती हैं और अपने समकालीनों में पंकज सुबीर की 'सी-७०९६' और किरण सिंह की 'संझा' का ज़िक्र करती हैं।

विमल चन्द्र पाण्डेय

वर्षों पहले पढ़ी एक कहानी 'जैक, जैक, जैक रूदाद-ए-नीरस प्रेम कहानी' का शीर्षक जहाँ मेरे पाठक-मन पर अरसे तक चिपका रह गया था, वहीं इस कहानी के अपने अनूठे शिल्प, कथ्य और पात्रों में खुद को शामिल करने वाले इस लेखक से प्रथम-दृष्टि में ही एक अजब-सा मोह हो गया था।

विमल के पहले कहानी-संग्रह 'डर' को वर्ष २००८ के लिए मिला नवलेखन पुरस्कार फिर कोई हैरानी लेकर नहीं आया। अपनी पहली कहानी 'चरित्र', जो साहित्य अमृत के जुलाई २००४ अंक में आई थी और जो अब उनके पहले कहानी-संग्रह में 'वह जो नहीं' के शीर्षक से शामिल है, के बाद से इन बीते सालों में विमल ने हमें दो कहानी की किताबें सौपी हैं। दूसरा संग्रह 'मस्तूलों के इर्द गिर्द' आधार प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है और जल्द ही एक उपन्यास 'भले दिनों की बात थी' भी आधार से आने वाला है।

कुछ बड़े ही अंदाज़ में ढेरों ही चमत्कृत करने वाली कहानियाँ सुनाई हैं विमल ने हमें इन चंद कुछेक सालों में। उनकी किस्सागोई की जो एक खास बात है वो किस्सों में शामिल कुछ विशेष दृश्यों की बुनावट, जो उनकी किस्सागोई को बहुत विशिष्ट बनाती हैं...जैसे 'सोमनाथ का टाइम-टेबल' का वो सोमनाथ का गिरगिट को मारकर उसके खून में पाँच फिट लंबा धागा सानने वाला दृश्य हो या कि 'मन्नन राय गजब आदमी हैं' का वो सुनील के हाथ में तने हुये तमंचे के सामने मन्नन राय का असहाय खड़े हो जाने का दृश्य....ऐसे ही जाने कितने और जो विमल की कहानियों का हिस्सा होते हुये भी खुद का एक अलग सा अस्तित्व बनाए होते हैं...कहानी के बीच कहानी जैसा कुछ। उनकी चर्चित कहानी 'डर' का ही वो लड़की वाला एक कब्र से दूसरे कब्र के पीछे छिपने वाले दृश्य को ही लिया जाए...जैसे सामने देखे जा रहे किसी चलचित्र की भांति सब कुछ उभर कर आ जाता है पढ़ते हुये पाठक की आँखों के सामने।

'मस्तूलों के इर्द गिर्द' को विमल अपनी लिखी कहानियों में सर्वाधिक पसंदीदा कहानी के रूप में चुनते हैं और अपने समकालीनों में मंजूलिका पाण्डे की लिखी 'अति सूधो स्नेह', जो बहुत कम चर्चित रही है, का नाम लेकर चकित कर देते हैं हमें।

...तो ये बनी टीम नई सदी के किस्सागोओं की...पूर्णतया पाठकों की पसंद के आधार पर। हालाँकि ये कहना कि ये टीम अपने-आप में मुकम्मल है जायज़ नहीं होगा। महज चौबालीस पाठकों को पूरे मुल्क का नज़रिया मान लेना उचित तो नहीं ही होगा किसी भी दृष्टिकोण से। अंकों के आधार पर इस फ़ेहरिश्त में कम से कम दो और कथाकार तो आते ही हैं- वंदना राग और सुभाष चंद्र कुशवाहा। वंदना राग की पहली कहानी 'झगड़ा' १९९९ में हंस में आई थी। 'यूटोपिया', 'छाया युद्ध', 'शहादत और अतिक्रमण', 'कबीरा खड़ा बाज़ार' जैसी कहानियाँ वंदना की किस्सागोई का चरम है। राजकमल से आई उनकी पहली कहानी कि किताब 'यूटोपिया' एक ज़रूरी संग्रह है हम पाठकों के बुक-शेल्फ में। वहीं सुभाष चंद्र कुशवाहा की पहली कहानी 'भूख' कथादेश के नवलेखन अंक जून २००१ में आई थी। सुभाष के अब तक तीन कहानी संकलन आ चुके हैं- 'हाकिम सराय का आखिरी आदमी'(प्रकाशन संस्थान), 'बूचडख़ाना'(शिल्पायन) और 'होशियारी खटक रही है'(अंतिका)। 'चुन्नी लाल की चुप्पी', 'चक्रव्यूह के भीतर' और 'जागते रहो' जैसी कहानियाँ रचने वाले सुभाष अपने कहानियों के ग्रामीण परिवेश और शोषितों की आवाज़ को थीम बनाते हुये अपनी एक अलग-सी पहचान बनाते हैं। उनकी 'भटकुईयाँ इनार का खजाना' और 'लाल हरपाल के जूते' ख़ासी चर्चित कहानियाँ रही हैं।

इस नई सदी के उन किस्सागोओं की पूरी खेप का नाम लिए बगैर, जिनकी कहानियों को वोटिंग के दौरान खूब-खूब पसंद किया गया और जिनकी कहानियाँ वाकई में हम पाठकों के वास्ते किसी ग्रैंड ट्रीट से कम नहीं रहीं, ये आलेख अधूरा ही रहेगा और इसलिए भी कि इस खेप के हर नाम ने हम पाठकों के साथ एक अनूठा रिश्ता जोड़ा है अपनी लेखनी के बजरिये और हम पाठकगण शुक्रगुजार हैं इन सारे किस्सागोओं के...और आलेख पढ़ने वालों को उनकी चर्चित दो से तीन कहानियों की याद दिलाना चाहते हैं- अजय नावरिया (गंगासागर, यस सर), अनुज(कैरियर गर्लफ्रेंड और विद्रोह, बनकटा, खूंटा), इंदिरा दाँगी(एक सौ पचास प्रेमिकाएं, लीप सेकेंड), ओमा शर्मा(दुश्मन मेमना, भविष्यदृष्टा), कैलाश वाणखेड़े(सत्यापित), गीताश्री(गोरिल्ला प्यार, प्रार्थना के बाहर), तरुण भटनागर (गुलमेंहदी की झाड़ियाँ, हाइलियोफ़ोबिक, लार्ड इरविन ने इगनोर किया), नीला प्रसाद(सातवीं औरत का घर, लिपस्टिक), पंखुड़ी सिन्हा (किस्सा-ए-कोहेनूर, समांतर रेखाओं का आकर्षण), पराग मांदले (उदास रौशनी में डूबता सूरज, राजा कोयल और तंदूर), प्रियदर्शन (उसके हिस्से का जादू, ख़बर पढ़ती लड़कियाँ), मनोज कुमार पाण्डेय (चंदू भाई नाटक करते हैं, शहतूत, लकड़ी का साँप), मनोज रूपड़ा (दफ़न, रद्दोबदल, टावर ऑव सायलेंस), मो. आरिफ़ (फूलों का बाड़ा, तार, मौसम), राकेश मिश्र (लालबहादुर का इंजन, शह और मात), रवि बुले(आईने सपने और वसंतसेना, यूं न होता तो क्या होता, लापता नत्थू उर्फ दुनिया ना माने), वंदना शुक्ल (उड़ानों के सारांश, जलकुंभियाँ), विमलेश त्रिपाठी(अधूरे अंत की शुरुआत, एक चिड़िया एक पिंजरा और कहानी), विवेक मिश्र (हानिया, ऐ गंगा बहती हो क्यों), शशिभूषण द्विवेदी(ब्रह्म हत्या, काला गुलाब), श्रीकांत दूबे(उर्फ, पूर्वज), संजय कुन्दन(बॉस की पार्टी, ऑपरेशन माउस), सलिल सुधाकर(शैतान बुश के कुनबे की औरतें, गोट्या को बचा लो, बिरादर), हुस्न तबस्सुम निहाँ(गरज ये कि दुर्ग ढह चुका है, नीले पंखो वाली लड़कियां)।

अव्वलो-आखिरश-दरम्यान की तर्ज पर कुछ ऐसी अपेक्षायें जगा दी हैं इन किस्सागोओं ने हम पाठकों के मन-मस्तिष्क पर कि अब उनकी मुश्किलें बढ़ गई हैं...हर बार उन अपेक्षाओं पर खरे उतरने की मुश्किल। पहली बात ये कि इनमें से कई किस्सागोओं की कहानियाँ अलग-अलग पत्रिकाओं में छप कर जहाँ एक तिलिस्म बुनती हैं, वहीं संकलन में एक साथ आने के बाद यही कहानियाँ एक दोहराव का अहसास दिलाती हैं...कि जैसे कहानीकार एक ही परिवेश, एक ही पात्र और एक ही प्लॉट को बार-बार दुहरा रहा हो। दूसरी बात कि इनमें से कई आत्म-मुग्धता के उस वृत में जा खड़े हो गए हैं, जिसके बाहर तख्ती लगी हुई है डेंजर जोन की, लेकिन जिसे ये कुछ किस्सागो देख कर भी नज़रअंदाज़ कर रहे हैं। जितनी जल्दी इन्हें ये तख्ती दिखे, उतना ही बेहतर जहाँ उनके लिए तो होगा ही वहीं हम पाठकों के लिए भी होगा...क्योंकि जिस ऊँचे सिंहासन पर हम पाठकों ने इन्हें बिठा रखा है, उस से नीचे उतार देने की निर्दयता दिखाने में दरअसल इन्हीं पाठकों को ज़रा भी विलंब नहीं लगेगा।

❐

Beacon Signs
1985 Inc.

7040 Torbram Rd. Unit # 4, Mississauga, ONT. L4T 3Z4

Specializing In:

Illuminated Signs awning & pylons

Channel & Neon letters

Banners

Architectural signs

VEHICLE GRAPHICS

Engraving

Silk screen

Silk screen

Design Services

Precision CNC cutout plastic, wood & metal letters & logos

Large format full Colour imaging System

SALES – SERVICE - RENTALS

Manjit Dubey

दुबे परिवार की ओर से हिन्दी चेतना को बहुत बहुत शुभकामनायें

Tel: (905) 678-2859 **Fax: (905) 678-1271**

E-mail: beaconsigns@bellnet.ca

चित्रित विचित्र और वैविध्य का प्रतिसंसार

मनीषा कुलश्रेष्ठ

मनीषा कुलश्रेष्ठ

जन्म : 26 अगस्त 1967, जोधपुर।

शिक्षा : बी.एससी., एम. ए. (हिन्दी साहित्य), एम. फिल., विशारद (कथक)।

प्रकाशित कृतियाँ : कहानी संग्रह – गंधर्व गाथा, कठपुतलियाँ, कुछ भी तो रूमानी नहीं, बौनी होती परछांई, केयर ऑफ स्वात घाटी।

उपन्यास- शिगाफ़ (कश्मीर पर), 'शालभंजिका' अनुवाद – माया एँजलू की आत्मकथा 'वाय केज्ड बर्ड सिंग' के अंश, लातिन अमरीकी लेखक मामाडे के उपन्यास 'हाउस मेड ऑफ डॉन' के अंश, बोर्हेस की कहानियों का अनुवाद।

अन्य : हिन्दीनेस्ट के अलावा, वर्धा विश्वविद्यालय की वेबसाइट 'हिन्दी समय. कॉम' का निर्माण, संगमन की वेबसाइट 'संगमन डॉट कॉम' का निर्माण व देखरेख।

पुरस्कार व सम्मान फैलोशिप : लमही सम्मान 2013, चन्द्रदेव शर्मा नवोदित प्रतिभा पुरस्कार – वर्ष 1989 (रा. साहित्य अकादमी), कृष्ण बलदेव वैद फैलोशिप – 2007, डॉ. घासीराम वर्मा सम्मान – वर्ष 2009, रांगेय राघव पुरस्कार वर्ष 2010 (राजस्थान साहित्य अकादमी), कृष्णप्रताप कथा सम्मान –2012, हायडलबर्ग जर्मनी के साउथ ऐशियन इंस्टीट्यूट में 'शिगाफ' का वाचन, विश्व हिन्दी सम्मेलन 2012 जोहानसबर्ग में भागीदारी।

संप्रति : स्वतंत्र लेखन और इंटरनेट की पहली हिन्दी वेबपत्रिका 'हिन्दीनेस्ट' का 12 वर्षों से संपादन।

ईमेल : manishakuls@gmail.com

यह मैं हमेशा महसूस करती हूँ, और कहती भी हूँ कि हमसे ठीक पहले लिखने वाली कथाकार पीढ़ी हमारी तरह असंख्य, अबाध और वाचाल नहीं रही है। वे गिनती के थे और अपने आप में मगन थे। उनके पास ज़मीन के लिए छीन-झपट नहीं थी....अपने समकालीन विस्तार के लिए सबके पास अपनी क्यारियाँ थीं। इसलिए वे पूरे पोषण के साथ उगे, फले और हरेक द्वारा सराहे गए। तरतीबी और विस्तार इनके लेखन में हमेशा बने रहे। आनंद हर्षुल, मनोज रुपड़ा, गीतांजलि श्री, अखिलेश, देवेन्द्र, जया जादवानी, मधु कांकरिया, ओमा शर्मा, भाल चंद्र जोशी, नैथानी जी.....

एक नैरंतर्य में इन सबको पढ़ते हुए ही अपनी लेखनी को काँपते हाथों से थामा था। उन दिनों मनोज रूपड़ा का उपन्यास 'प्रतिसंसार' तब किश्तों में किसी पत्रिका में आता था, और उसे पढ़ कर महसूस होता था कि कितनी पायदान नीचे हैं हम, आश्चर्य नहीं हुआ कि जब मैंने 'साज़और नासाज़' पढ़ा तब भी यही लगा और पिछले वर्ष 'टॉवर ऑफ सायलेंस' पढ़ा तब भी यही महसूस हुआ। कथा-संसार में मनोज रूपड़ा ने अपनी जगह अक्षुण्ण रखी, क्योंकि उनके पास वो तेवर थे, जो एक कथाकार कलाकार का पाथेय हैं। जिसके लिए बहुत कुछ छोड़ना और स्थगित करना होता है। खुद को भी। मनोज रूपड़ा को आप किसी वाद और विचारधारा और परंपरा में नहीं बाँध सकते क्योंकि वे इसे स्वयं तोड़ते चलते हैं। और उनके लिए उनकी उपलब्धि वहीं उनकी डेस्क पर पूरी हो जाती है, जब वह लिखने का लुत्फ़ उठा रहे होते हैं। यह आजकल विरल है।

मनोज निसंदेह मेरे प्रिय कहानीकार हैं, और वे ऐसे कहानीकार हैं कि जिनकी लंबी कहानियों का विस्तार पठन का आनंद संप्रेषित करता है, न कि रसभंग की वजह बनता है। गत समय में उनकी दो लंबी कहानियाँ मुझे बेहद पसंद रही हैं। आमाज़गाह और टॉवर ऑफ सायलेंस ! आमाज़गाह पर फिर कभी! यहाँ हम 'टॉवर ऑफ सायलेंस'पर बात करेंगे। यह एक अनूठी कहानी है। एक ऐसे समुदाय की कहानी जिसके लिए स्वयं मनोज नायक के द्वंद्व के बहाने कहानी के शुरुआती पैरा में लिखते हैं-' टेम्पटन दस्तूर सोचते सोचते अकसर बहुत दूर चले जाते-क्या इतिहास सिर्फ आंदोलनों, विद्रोहों, पुरुषोचित वीरता या विरोधी कौमों की आपसी मारकाट के जघन्य कारनामों, लड़ाइयों, बंटवारों और बलिदानों का होता है? उद्यमिता, नियोजन और आत्मनिर्भरता का कोई इतिहास नहीं होता? '

पारसी समुदाय पर लिखी यह प्रथम कहानी हो के न हो, पर ऐसी गहरी कहानी ज़रूर है जो इस समुदाय के अंतर्विरोध और संघर्ष और विशिष्ट जीनोटायप को रेखांकित ही नहीं बल्कि कहें गहन तौर पर विश्लेषित करती है। उल्लेखनीय बात यह है कि इस विश्लेषण में यह उबाऊ कहानी नहीं बनती बल्कि एक आम पाठक के लिए बहुत दिलचस्प घटनाक्रमों के साथ प्रस्तुत होती है।

टेम्पटन दस्तूर यानी कथा नायक ऐसी समृद्ध परंपराओं और विरासत का वाहक है कि वह अपने परिवार के विघटन और ढेरों उद्यम और श्रम भरी उपलब्धियों को पाने के बाद, वृद्धावस्था में आकर मानसिक तौर पर विक्षिप्त अपने पिता रैमिंग्टन दस्तूर के जीवन के समानांतर पूरे पारसी समाज का आकलन करता है। रैमिंग्टन जो शुरुआती दौर के कारखानों और मिलों की रीढ़ रहीं चिमनियों, भट्टियों और तापसंवाहक यंत्रों के एक्पर्ट रहे, एक धर्मभीरू व्यक्ति हैं। जिन गुणों और धार्मिक नियमों अंतर्मुखी पारसी समुदाय वहन करता है, सादगी, आदि अग्नि की पूजा, ईमानदारी, काले धन से परे साफ़ सुथरा व्यापार, देश की राजनीति से अलग थलग, अति अल्प बल्कि न्यून होते हुए भी, न कोई अधिकारों की मांग, न ही दखल! बस मेहनत और अपना योगदान देश को। इसी जीनोटायप के वाहक हैं, रोमिंग्टन और फिर टैम्पटन।

लेकिन टैम्पटन के मन में यह विचार लगातार बने रहते हैं कि, उसका समुदाय के अनुसंधान और उद्योग के क्षेत्र में इतने योगदान रहे फिर भी यह समाज पल्लवित और पुष्पित होने की जगह मुरझा क्यों रहा है? धार्मिक पवित्र अग्नि को तो बचा लिया मगर भीतर की आग?

इस सोच और खोज में टैम्पटन पिता के रास्ते न

जाकर अपना रास्ता चुनता है, अध्ययन और लेखन। इस जुनून में वह विवाह और व्यवसाय दोनों से छिटक जाता है। बचपन ही में उसे उसके पिता अपनी बहन 'हक्कू फई' के पास छोड़ देते हैं। 'हक्कू फई' के रूप में बहुत दिलचस्प और स्मृति में बने रहने वाला स्त्री चरित्र गढ़ा है मनोज ने। वे खुद उसे गढ़ कर भी लिखते हैं–' उस बेहद सनकी, गुस्सैल, अतिभावुक, दयालु, निर्मम, सहिष्णु और उतनी ही कट्टर औरत का चरित्र चित्रण करना बहुत कठिन है। जिस औरत ने दो मर्दों और वो भी सगे जुड़वां भाइयों के साथ एक साथ प्यार किया हो और जो सरेआम उनके कान मरोड़ देने और बीच रास्ते में उन्हें अपनी छतरी से पीट–पाट देने में कोई हिचकिचाहट महसूस नहीं करती हो, जो रेडियो और ग्रामोफोन एक साथ बजाती हो जिसे सब्जी और दूधवाले से रुपए आठ आने के लिए लंबी लड़ाइयाँ लड़ते समय अपनी करोड़ों की प्रॉपर्टी का ज़रा भी ध्यान न रहता हो और जो अपनी काम वाली बाई के बच्चों के एडमिशन के लिए तो कभी दूधवाले की बीवी की जचगी और कभी अपने ड्राइवर के बाप के ऑपरेशन के लिए रुपयों भरा बैग लिए घंटो स्कूल से अस्पताल, अस्पताल से मैटरनिटी होम के चक्कर लगाती हो, जिसके लिए एक वॉल्व का खराब होना उतना ही चिंताजनक है, जितना किसी किडनी या गुर्दे का ख़राब होना, उसके बारे में क्या कोई लिख सकता है?'

हक्कू फई के दोनों अधपगले प्रेमियों के बारे में मनोज रोचक उद्घाटन करते हैं कि वे एक ज़माने में बेस्ट जैसी देश की सबसे कामयाब बस सर्विस की नींव डालने और उसे मुंबई के चप्पे चप्पे तक पहुँचाने का पराक्रम कर चुके थे, जिसे बाद में सरकार के हवाले कर दिया गया।

इन बूढ़ों के मटियामेट अतीत के साथ रहते टेम्पटन को जब अपने अधेड़ जनक की खबर लगती है कि जिस इंप्रेस मिल में वे काम करते थे, अरसा हुआ वह बंद हो चुकी है, तब वह पिता को खोजने वहाँ पहुँचता है। वहाँ वे अर्धविक्षिप्त हालत में, मिल के बहुत बड़े अहाते में मिलते हैं,' मशीनों के मकबरे' एक विशाल भट्टी की आग को बचाते हुए,' यह आग नहीं हमारी संकल्पना शक्ति है।'उस आग में वे उजाड़ पड़ी मिल के हज़ारों मज़दूरों के दस्ताने जलाते हुए मिलते हैं, अंतत: अपनी अर्ध विक्षिप्तता में स्वयं को भी झौंक देते हैं। टाटा ग्रुप की पहली मातृ ईकाई और उसकी भट्ठी और चिमनी और तापमान संरक्षक रोमिंग्टन दस्तूर अपने विलुप्त एकालाप में जो बोलते हैं वह एक मातृ इकाई के ज़रिये बड़े एंपायर के जन्म लेने और फिर तकनीकी के बूढ़े होने पर उस इकाई और उससे जुड़े लोगों के निर्वासन की गाथा है। वह गाथा है जिसे टेम्पटन पारसी समुदाय के 'लिटिल फ्लावर' के खिलने और खिलकर मुरझाते जाने के इतिहास के आख़िरी अध्याय के मर्म की तरह देखते हैं। बाज़ार, तकनीकी की अतिअधुनातन रेस और एक बहुत छोटा सा समुदाय! मनोज रूपड़ा बहुत गहन शोध ज़रूर करते हैं, मगर कहानी लिखने से पहले, कहानी लिखने जो बैठता है वह विशुद्ध कहानीकार होता है, कल्पना के अंतहीन विस्तार के साथ गल्प लिखता हुआ। ऐसे में कहानी जो लिखी जाती है, वह 'रीडर्स प्लेज़र' से लबालब होती है। वहाँ शोध का यथार्थ मोटी बर्फ़ के नीचे झील सा होता है। यही वजह है कि ये कहानियाँ पाठकीय एकाग्रता और दक्षता की माँग करती हैं।

यह सच है कि लेखक को लेखक उसकी भाषा और अध्ययन बनाते हैं, मगर तीसरा आयाम अनुभव जीवन की खुरदुरी ज़मीन का उसको मक्सिम गोर्की बनाते हैं। मनोज रूपड़ा और उनके जीवन संघर्ष हिन्दी कथा जगत में बहुत से आस्वादों के साथ अनुभवों का विस्तार लाते हैं, भट्टियाँ, चिमनियों के बीच बीतते जीवन के ये अनुभव हर किसी कथाकार का पाथेय नहीं हो सकते, बल्कि हो सकता था कि इस संघर्ष के तापमान पर कथाकार कुम्हला जाता।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि मनोज के अनुभव अथाह और विचित्र हैं। हो सकता है कि सभी के अनुभव होते हों, मगर विचित्र ही विचित्र की तरफ़ आकृष्ट होता है, जो विचित्रता जीवन में मनोज रूपड़ा खोज लेते हैं, हमसे वह अनदेखी रह जाती हैं। भाषा और शिल्प में भी दक्षता, इन्हें बाकि समकालीनों से अलग करती है। शायद यह अनूठापन संसार की समस्त भाषाओं की फिल्में देखने और किताबी कीड़े की तरह किताबें पढ़ने से अवक्षेपित हुआ हो मगर इत्मीनान से लिखने का अंदाज़, एक एक वाक्य पर मेहनत....वह अनुशासन और लिखते समय की तन्मयता से ही आती है।

मनोज रूपड़ा ने इस कहानी के संदर्भ में मुझसे फ़ोन पर बात की थी–'इस समाज की अंतर्मुखी प्रवृत्ति के चलते, यह सब भीतर से जानना बहुत कठिन था। कौम के प्रति निष्ठा और धार्मिकता इनके यहाँ इतनी कड़ी है कि इनकी 'अग्यार' (धार्मिक प्राचीन आग) के निकट कोई अन्य नहीं जा सकता। काले धन से दूरी और सत्ता से अलगाव इनका मूल स्वभाव है।'

मेरे लिए 2000 के बाद की कहानियों में यह कहानी 'टावर ऑफ साइलेंस' विशिष्ट का दर्ज़ा पाएगी, इसलिए कि बहुत कम कहानियाँ होती हैं, जिन्हें पढ़ने के लिए हम गैरसाहित्यिक लोगों से इसरार करते हों, मैंने किया, अपने निकट परिवेश में और पलट कर न केवल मुझे शुक्राने मिले बल्कि एक ऐतिहासिक कथा सुनने को मिली पारसी समाज पर– कि जब दमन और दीव पर ईरान से निकले जोरथ्रास्टियन पारसियों का समूह उतरा, और वहाँ से आगे बढ़ा तो सौराष्ट्र के राजा जडी राणा से उन्होंने पनाह माँगी। उनके एक प्रतिनिधि को जडी राणा ने विनम्रता से दूध का कटोरा दिया और मना कर दिया, इस पर उस संतनुमा प्रतिनिधि ने दूध में चीनी के कुछ दाने मिला कर राजा को कटोरा वापस कर दिया और कहा 'हम आपके देश में इन दानों की तरह घुल कर रहेंगे और मिठास ही देंगे सौहार्द की।' इस बात पर राजा ने न केवल पनाह दी बल्कि उन्हें अपना धर्म और समुदाय फैलाने, व्यापार करने की इजाज़त भी दी। मगर वे अपने ही समुदाय के भीतर बढ़ते रहे और अपने धर्म का पालन करते रहे। इस कहानी के तथ्य और सत्य तो पता नहीं कितने खरे हैं, पर पारसी समुदाय ने अपना वादा सदा निभाया! लेकिन इस कहानी के मुख्य किरदार टेम्पटन के बहाने मनोज रूपड़ा ने गहरी चिंताएं व्यक्त की हैं, इस अंतर्मुखी और भारत के विकास में अपनी उद्यमिता और अनुसंधानी दृष्टिकोण के चलते मूलभूत योगदान देने वाले समुदाय के प्रति। यही वजह है कि यह कहानी शोध, विषय वस्तु, भाषा, रोचकता के साथ 'आई ओपनर' भी है, जो कथाकार मनोज रूपड़ा के समग्र कृतित्व की भी विशेषता है।

❐

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
चयनित कहानी

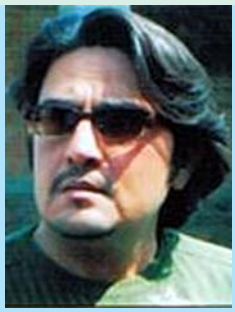

मनोज रूपड़ा

जन्म : 16 दिसंबर 1963, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

मुख्य कृतियाँ:

कहानी संग्रह : दफन तथा अन्य कहानियाँ , साज-नासाज, टॉवर ऑफ सायलेंस

उपन्यास : प्रति संसार

सम्मान: इंदु शर्मा कथा सम्मान, वनमाली कथा सम्मान

संपर्क

अमन फूड्स, चांदेकर मन्दिर के पीछे, रम्भा जी रोड, टिमकी, नागपुर-18 (महाराष्ट्र)

फोन 09823434231, 0712-3224450

अनोखी और लम्बी कहानियों के लिए प्रसिद्ध मनोज रूपड़ा के गल्प में आपकी मुलाकात होती है टेम्पटन और रोमिंगटन दस्तूरजी से, हक्कू फई से और हमशक्ल मुकादम बंधुओं से जिनकी दास्तान भारत के सबसे बड़े व्यावसायिक घरानों में से एक टाटा की एक पुरानी, परित्यक्त मिल पर मंडराते हुए शोकगीत बन जाती है। एक पुरानी पड़ चुकी टेक्नोलॉजी, एक ख़त्म हो चुकी संस्कृति और कभी मुंबई को उसका किरदार देने वाले पारसी समुदाय के नाम लिखी गई इस कहानी 'टॉवर ऑफ सायलेंस' का चयन सुप्रसिद्ध कहानीकार मनीषा कुलश्रेष्ठ ने हिन्दी चेतना विशेषांक के लिए नई सदी में लिखी गई लेखकों (पुरुष लेखक) की कहानियों की प्रतिनिधि कहानी के रूप में किया है।

टॉवर ऑफ सायलेंस

मनोज रूपड़ा

आत्म कथ्य

टावर आफ़ साइलेंस लिख चुकने के बाद मुझे पहली बार लगा कि कहानी लिखने का भरपूर शक्तिशाली तत्व सिर्फ कथ्य के भीतर समय के प्रवाह को अभिव्यक्त कर देना भर नहीं है, और किसी बड़ी सामाजिक-आर्थिक परिघटना की ख़ातिर कोई बड़ी बिम्ब योजना बना लेना भी ज़्यादा मुश्किल नहीं है, असली तत्व है, उन नन्हे नन्हे बिंदुओं को फ्रेम में लाना, जिसे हम संपादन कहते हैं। कुछ कहानियाँ स्वतः स्फूर्त ढंग से संपादित होती है, उसे लिख चुकने के बाद लेखक की असली समस्या शुरू होती है, कि उसे संपादित कैसे किया जाए। एक वक्त होता है गहरे आवेग में लिखते चले जाने का, और एक वक्त काटने-जोड़ने का भी होता है, अपनी कहानी की बनावट और बुनावट को पहचानना और विभिन्न टुकड़ों को तार्किक और स्वाभाविक लय में संयोजित करना बहुत आसान नहीं है। लेखक का बोध हर वक्त उसका साथ नहीं देता। कुछ टुकड़े लाज़िमी तौर पर कहानी की आंतरिक बनावट के अनुसार संबद्ध हो जाते हैं और कुछ टुकड़े प्रतिरोधी भी होते हैं, जो कहानी के फ्रेम को तोड़कर बाहर निकल जाते हैं, टावर ऑफ़ साइलेंस में यही हुआ।

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
चयनित कहानी

टॉवर ऑफ सायलेंस

टेम्पटन दस्तूर जब छोटे थे तब उन्होंने अपने घर की छोटी सी वीथी में सुबह-सवेरे एक कली को खिलते देखा था। वह गुलाब की कली छोटी सी और सुगठित। उसकी पंखुरियाँ आपस में गुँथी हुई थीं। हरी पत्तियों से घिरी उस मखरूती कली के ऊपरी हिस्से में एक बहुत बारीक सा छिद्र था, जिसे दस्तूर जी टकटकी लगा कर देख रहे थे। जैसे-जैसे धूप बढ़ती गई, वह छोटा सा छिद्र नामालूम तरीके से खुलता गया और देखते ही देखते आपस में गुँथी हुई पंखुरियाँ एक-दूसरे से मुक्त होकर बाहर की तरफ खुलने लगीं।

टेम्पटन दस्तूर बहुत अन्तर्मुखी थे। उनके बालमन में बहुत उत्सुकता और कुतूहल था। कई दिनों से वे यह जानने के लिये व्यग्र थे कि फूल कैसे खिलता है। उस दिन जब कई घण्टों की एकाग्रता, स्थिर दृष्टि और समझने की सच्ची लगन के बाद उन्होंने फूल को खिलते देखा तो वे भी खिल उठे। यह एक सुखद घटना थी। उस अत्यन्त मासूम, नाज़ुक और अनछुए सुख को वे छूना चाहते थे। थोड़ी शर्म और झिझक के बावजूद उनका हाथ अनायास सुख की तरफ बढ़ा और अचानक दर्द से कराहते हुए वे पीछे हट गए। उनके सफेद दूध जैसे हाथ की गुलाबी उँगली पर रक्त की एक बूँद उभर आई।

वे काफी देर तक दूसरे हाथ से उस उँगली को पकड़कर कराहते रहे उनकी आँखों में आँसू उभर आए। फिर इस डर से कि कहीं कोई उन्हें देख न ले, उन्होंने काँटे के दंश से पीड़ित उंगली को अपने मुँह में डाल लिया।

इस चुभन और उससे होने वाली जलनदार पीड़ा ने टेम्पटन जी की अवयस्क और अर्धविकसित चेतना पर एक अमिट छाप छोड़ दी। खून की वह इकलौती बूँद, जिसे उन्होंने चूस लिया था, उनके भीतर घुल-मिल न सकी। वह बूँद उनके समूचे रक्त-प्रवाह से भिन्न थी। वह आश्चर्यजनक ढंग से कठोर, अलग और अकेली थी। पहले वह बूँद उनके खून में इधर-उधर भटकती रही लेकिन बाद में उसमें अड़ियलपन आ गया और जैसे-जैसे वे बड़े होते गए, उन्हें अपने अंदर एक तरह की खटक और चुभन निरन्तर बढ़ती महसूस होती रही।

वे हालाँकि आनुवांशिक रूप से उतने ही शर्मीले, शान्त और एकान्तप्रिय थे, जितने उनके माँ-बाप, दादा-दादी और उनके पूर्वज। लेकिन उस अलग तरह की आन्तरिक खटक और चुभन ने उस आनुवांशिकी में विचलन पैदा कर दिया और विरासत में मिले एक समान स्वभाव में थोड़ा खब्त और थोड़ी व्यग्रता भी शामिल हो गई।

अपने समुदाय के स्वाभाविक गुणों में भिन्नता के बावजूद जिस परिवेश में उनकी परवरिश हुई थी उसका असर किसी न किसी रूप में उनके जीवन पर पड़ता रहा। धोबी तालाब, मरीन लाइन्स, सन्तूकजी लेन, नवरोज डावर लेन, सोहराबजी सन्तूक लेन, दादी अग्यारी लेन, कावशजी हरमुशजी स्ट्रीट, इंजीनियर हाउस, दस्तूर हाउस, दादी सन्तूक हाउस और आस पास फैली सैकड़ों चार मंजिली पत्थर की पुरानी इमारतों से घिरा आतश बेहराम (पारसियों का पूजा-स्थल)।

वे तब लिटिल फ्लावर स्कूल में पढ़ते थे। सुबह अपने घर से प्रिन्सेस स्ट्रीट तक जाते समय और स्कूल से दोपहर की भीड़भाड़ में वापस लौटते समय उनकी नज़रें सड़कों पर नहीं, उन बरसों पुरानी पत्थर की इमारतों पर रहती थीं, जिनमें लगभग सभी घरों में एक जैसे लकड़ी के जीने, एक जैसी शीशम की रेलिंग और एक समान बड़ी-बड़ी बरोठेदार खिड़कियाँ थीं और उन खिड़कियों में से उन्हें हर वक्त कुछ बूढ़े चेहरे झाँकते दिखाई देते। इतने स्थिर और शान्त मानो उन्हें खिड़की के साथ ही मढ़ दिया गया हो। उन सब बूढ़ों का पहनावा एक जैसा था। सबकी उम्र भी एक जैसी थी और इसमें कोई सन्देह नहीं कि सबके चेहरे भी एक जैसे थे। वे कभी किसी से कुछ नहीं कहते थे। चुपचाप एक समान सपाट भाव लिये वे सिर्फ देखते रहते थे। आपाधापी, उलझी हुई किचकिच, मचलती हुई महत्त्वकांक्षाओं और अति व्यस्तता से लथपथ शहर से वे उतने ही तटस्थ, जितना यह शहर उनकी स्टिल इमेज से।

और टेम्पटन दस्तूर जब लिटिल फ्लावर स्कूल से निकल कर सर जे. जे. हाई स्कूल जाने लगे, तब उन्हें पता लगा कि सिर्फ़ शहर को ही नहीं बल्कि लड़ाइयों, दंगों, अकालों और विद्रोह से भरे बीते जमाने को भी उन सब बूढ़ों ने सिर्फ़ दर्शकों की तरह चुपचाप अपनी खिड़की से देखा है।

लेकिन खिड़की से बाहर की सजीव दुनिया से वे जितने तटस्थ थे, घर के भीतर की निर्जीव चीजों के लिए उतने ही आतुर और बाहर सड़क से एक समान सपाट दिखाई देने वाले उनके चेहरे खिड़की से परे हटते ही विभिन्न भाव मुद्राओं के एक से बढ़कर एक नमूने पेश करने लगते थे, क्योंकि स्वभाव की समानता के बावजूद उनमें से हर एक बूढ़ा अजीबोगरीब आदत का शिकार था। किसी को दिन में चार बार अपनी रबर की चप्पलें धोने की आदत थी, किसी को पाँच बार जूते चमकाने की, किसी को अपने ग्रामोफोन से लगाव था तो कोई अपने पुराने वाल्व वाले रेडियो का दीवाना था। वे उसे बार-बार धोते-पोंछते और सहलाते रहते थे और अपनी सेहत से ज़्यादा उनकी दुरुस्ती का ध्यान रखते थे।

यह एक ऐसी समरूपता में समाई हुई विविधता थी जो बाद में दस्तूरजी के लिए कठिनाई से समझ में आने वाला पाठ बन गई।

वे उन छतरियों, घड़ियों, सोने की कमानी वाले चश्मों, बड़े-बड़े वाल्व रेडियो, ग्रामोफोन, लमटँगी कुर्सियों, गोलाकार टेबिलों, महोगनी की बुकशेल्फों, चीनी मिट्टी के बर्तनों, इण्डिज कम्पनी की कटलरी, बाहेमिया के क्रिस्टलों, हाथी दाँत के मूठ वाली छड़ियों, सफेद सूती कपड़ों, गोल टोपियों, गेंडे की खाल की सूटकेसों, झालरदार कच्चे रेशम के पर्दों, ऐतिहासिक टेबिल लैम्पों, फाउण्टेन पेनों, पेन होल्डरों, हॉलैण्ड के मेजपोशों, ईरान के कालीनों, जापान के शमादानों और फूलदानों और ब्रिटिशकालीन मोटरकारों के बीच पल बढ़ रहे थे, जिनकी उम्र उनसे कई गुना ज़्यादा बड़ी थी उनके आसपास ऐसी कोई चीज़ नहीं थी जिसकी उम्र सौ-डेढ़ सौ या दो सौ सालों से कम हो। लेकिन वे सब चीज़ें सिर्फ चीज़ों की तरह नहीं, पारिवारिक सदस्यों की तरह उन घरों में रहती थीं, उतने ही आदर-सम्मान के साथ, जितने आदर-सम्मान की एक मनुष्य को दरकार होती है।

वे सब चीज़ें अपने बूढ़े साथियों की तरह हमेशा

स्फूर्त और सक्रिय रहती थीं और शायद यही वजह है कि उन चीज़ों को कभी जंग और दीमक ने नहीं घेरा था। बेशक वे बहुत पुरानी थीं और इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे मौजूदा ट्रेण्ड के हिसाब से चलन से बाहर थीं लेकिन उनके छोटे से समुदाय के छोटे-छोटे परिवारों में वे अब भी चलन में थीं। समय के प्रवाह ने अपने साथ बहाकर उन्हें कबाड़खाने तक नहीं पहुँचाया था।

टेम्पटन दस्तूर जब बड़े हुए तब उनके लिए यह एक शोध का विषय था। उपभोक्ता चीज़ों की बाढ़ और यूज एण्ड थ्रो के तेज़ प्रवाह में ये सब पुरानी चीज़ें और पुरानी जीवन शैलियाँ और उनका अन्तर्मुखी समुदाय अभी तक डूबने से कैसे बचा हुआ है?

दूसरी बात जो इससे ज़्यादा आश्चर्यजनक और विरोधाभासपूर्ण थी कि इस देश के दूसरे समुदाय जब अपना वर्चसव और शक्ति बढ़ाने के लिए जनसंख्या बढ़ाने पर तुले हैं तब उनके समाज में खुद को समेट लेने की यह आत्मघाती वृत्ति और प्रजनन के प्रति इतनी विरक्ति क्यों है? वह हमेशा घरघुस्सू क्यों बना रहना चाहता है। उद्योग और अनुसन्धान में अपने बेहद महत्त्वपूर्ण योगदानों के बावजूद वह कभी किसी मुख्यधारा में शामिल नहीं हुआ जबकि उसने इस देश की सुदूर सांस्कृतिक जड़ों से सत हासिल किया है।

फिर उसकी लतरें पुष्पित होने के लिए उत्सुक क्यों नहीं हैं? वह मुर्झा क्यों रहा है? क्या इस लिटिल फ्लावर को मुर्झाने से कोई नहीं बचा सकता? क्या कोई जानता भी है कि बहुत धीरे-धीरे बिल्कुल नामालूम तरीके से उसकी पंखुरियाँ नीचे गिर रही हैं और उसकी अद्वितीय सुषमा उसकी अलग-सी आभा यूँ ही बिसरा दी जा रही है।

टेम्पटन दस्तूर सोचते-सोचते अकसर बहुत दूर तक चले जाते-क्या इतिहास सिर्फ़ आन्दोलनों, विद्रोहों, पुरुषोचित वीरता या विरोधी कौमों की आपसी मारकाट के जघन्य कारनामों, लड़ाइयों, बँटवारों और बलिदानों का होता है? उद्यमिता, नियोजन और आत्मनिर्भरता का कोई इतिहास क्यों नहीं होता?

जब उन्होंने कुछ लिखने का निश्चय किया तब एक बार फिर से उन्हें बचपन के दिनों जैसी उत्सुकता और जिज्ञासा ने घेर लिया लेकिन यह एक सामाजिक तथ्य था कोई फूल नहीं, जिसे सिर्फ़ एकाग्र होकर खिलते हुए देखा जा सके। उनके पास न तो लेखन कला का कोई अनुभव था न अन्य इतिहासकारों जैसी व्यापक समझ और न कोई दस्तावेज, जिसका उनके निर्धारित विषय से कोई सीधा वास्ता हो, जिसके आधार पर वे बहुस्तरीय शाब्दिक भवन का निर्माण कर लेते। उनके पास अगर कोई चीज़ थी तो वही थी खून की इकलौती बूँद जो उनकी नसों नाड़ियों में निरन्तर इधर-उधर भटक और खटक रही थी। दूसरे समुदाय का प्रत्यक्ष जीवन और उनकी स्मृतियाँ और इसके अलावा उनकी एक अस्सी साल की चिर कुँवारी बुआ और उनके बेहद अन्तर्मुखी लेकिन उतने ही दृढ़निश्चयी पिता, जो उनके अतीत, वर्तमान और भविष्य की धुरी थे।

इतनी सीमित जानकारियों के बावजूद दस्तूरजी अपने समुदाय को उतने ही गौर से देखने लगे जितने गौर से उस कली को देखा करते थे। लेकिन अब मामला वनस्पति का नहीं, मनुष्य का था। उन्हें पता भी नहीं चला कि कब बढ़ती हुई एकाग्रता ने उन्हें संज्ञान के दायरे में घसीट लिया। वे अग्यारी लेन की बड़ी-बड़ी बाबा आदम के ज़माने की किताब की दुकानों में घण्टों पुरानी किताबों को उलटते-पुलटते, रात-रात भर जागकर उन्हें पढ़ते और हर रात किसी न किसी कारवाँ के हमसफर बन तो। कुछ विस्थापित और जड़ से उखाड़े गए समुदायों के देशाटन, पर्वतों, दर्रों, नदियों और समन्दर को पार कर अनजानी जगहों और नई भौतिक परिस्थिति में उनके संघर्ष और दो भिन्न संस्कृतियों के टकराव या मेलजोल से उपजी और एक-दूसरे में उलझी अनेक सामाजिक संरचनाएँ जिन्हें समझने के लिए वे अनेक धारणाओं, प्रचलित मतों को लाँघते कई वादों से टकराते कभी सार्त्र के अस्तित्ववाद, कभी लाइबनिज के अनिश्चितता के सिद्धान्त, कभी काण्ट की कॉस्मोलॉजी, तो कभी फूको और देरिदा की संरचना और उत्तर-संरचनावाद लहरों में थपेड़े खाते हुए कार्य-कारण के सर्वाधिक चर्चित सिद्धान्तकार मार्क्स तक पहुँच गए। लेकिन अपने मूलभूत स्वभाव, जिसमें कोई द्वन्द्वात्मकता नहीं थी और दलीलों और तर्कों से दूर हटकर केवल इन्तज़ार करने की अपनी आदत के कारण वे किसी निष्कर्ष तक नहीं पहुँच पाये। और तब उन्होंने उन कारणों को समझने में समय दिया, सिर्फ कारणों को ही नहीं उन्होंने समय को भी समय दिया, उतना ही समय जितना उनके पुरखों ने अपने कार्यों के नियोजन में दिया था।

और तीस साल लम्बे इस पीरियड ने उनकी उम्र के उस हिस्से को निगल लिया, जो आदमी को दुनियादारी सिखाता है उसे अपना जीवन-साथी और कॉरिअर चुनने का अवसर प्रदान करता है। ऐसे अवसर टेम्पटन दस्तूर की ज़िन्दगी में कब आए और कब चले गए उन्हें बिल्कुल पता नहीं चला और अब वे हर तरह की दुनियादारी से बेनियाज़ हैं और किसी भी तरह के कॅरिअर के बगैर अपनी तमाम नैसर्गिक अनुभूतियों को स्थगित करते हुए वे उम्र की छियालीसवीं पायदान पर पहुँच गए हैं। जहाँ से पीछे पलटकर देखने पर उन्हें सुदूर शाम की याद आती है जब उनके पिता उन्हें आग से परिचित करवाने के लिए संजान ले गये थे। तब वे सिर्फ़ सोलह साल के थे और उनके पिता रोमिंगटन दस्तूर ने उन्हें बताया था कि जब वे सोलह साल के हुए तब उनके पिता भी उन्हें जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण सबक देने के लिए संजान लेकर आये थे।

यह वो प्राचीनतम आग थी जिसे तेरह सौ साल पहले सोलह अषवणों (पुरोहितों) ने जरथोश्ती क्रिया-कर्मों के द्वारा खास निरंगे (आह्वान) अमल में लाकर आसमान में कड़कड़ करती बिजली के आतश (अग्नि) को ज़मीन में एक हिन्दोरे (एक गोलाकार पत्थर जिस पर अग्नि का पात्र रखा जाता है) पर सजाई गई चन्दन की लकड़ियों की तरफ आकर्षित कर प्रज्वलित किया था। और तब से आज तक वह कभी बुझी नहीं है। और यही वह आग थी जिसकी रोशनी में उनके पूर्वजों ने निवेश के लिए नए-नए रास्ते खोजे और जिसके ताप में उन्होंने अपनी संकल्पशक्ति को तपाकर अनेक उद्यमों में ढाला। उन तपस्वियों की आत्मा भले ही धार्मिक और प्राचीनतम तत्वों से बनी थी लेकिन नए उद्यमों में ढलकर उन्होंने नई परिस्थितियों के अनुकूल तकनीकों का ईजाद किया। गुणवत्ता पर खरे उतरने

वाले उनके उत्पादों में कहीं कोई मिलावट नहीं थी और उनके बहीखातों में कभी काली पूँजी के नाग इधर-उधर रेंगते नज़र नहीं आते, क्योंकि उनके सारे यान्त्रिक और व्यावसायिक कार्यकलाप उनकी धार्मिक आस्थाओं के साथ बहुत मज़बूती से गुँथे हुए थे।

मुम्बई से संजान, संजान से उधवाड़ा और उधवाड़ा से नौसारी तक की यात्रा हालाँकि एक धार्मिक यात्रा थी, लेकिन टेम्पटन दस्तूर के लिए वह एक शैक्षणिक यात्रा बन गई। हमेशा चुप रहने वाले उनके पिता इस चलती-फिरती क्लास में लेक्चरर की भूमिका निभा रहे थे।

वे सारी बातें संजान के समुद्री किनारे से सुदूर ईरान तक फैली थीं, जहाँ से उनके पूर्वज तेरह सौ साल पहले विस्थापित होकर आये थे। सबसे पहले उन्हें संजान के पाव महेल में ले जाया गया। जब उन्हें बताया गया कि इस अग्यारी के गर्भ-गृह में जो आतश बेहराम है, वह आज से बारह सौ पचहत्तर साल पहले प्रज्वलित की गयी अग्नि से बना है, तो उन्हें आश्चर्य हुआ। उस पवित्र अग्नि के सामने बोए (एक तरह की प्रार्थना) देने और माथे पर आतेश-बेहराम की भस्म लगाकर नीआऐश (अग्नि को समर्पित धार्मिक मन्त्र) करने और निरंग पढ़ने के बाद वे उस ऐतिहासिक धार्मिक स्थल से बाहर आ गये।

यह सबकुछ बहुत रहस्यमय था। टेम्पटन दस्तूर की अर्धव्यस्क चेतना में एक साथ ये सारी पुरानी, अबोध, जटिल और अलौकिक बातें चकराने लगीं। उस ऐतिहासिक शहर की पथरीली सँकरी गलियों, खण्डहरों और वर्षो से बन्द पड़े मकानों के बीच से गुजरते हुए वे समुद्र के किनारे पहुँचे गये, जहाँ एक पुरानी पारसी सराय थी। यह उनकी यात्रा का पहला पड़ाव था।

रोमिंटगटन दस्तूर ने विश्राम के लिए जो कमरा खुलवाया, उसकी खिड़की समुद्र की तरफ खुलती थी। यह वही खिड़की थी, जिससे छनकर आते प्रकाश और समुद्री हवाओं के थपेड़ों में आज से तीस साल पहले उनके पिता सोहराबजी दस्तूर ने उन्हें दीक्षित किया था। और अब एक लम्बी कालावधि के बाद वे खुद उस कुर्सी पर बैठे थे और उनके पिता ने अपने पिता और उनके पिता के पिता ने अपने पिताओं, दादाओं और लकड़दादाओं से सीखा था।

यह क्लास दो दिन तक चली। और तब टेम्पटनजी को यह मालूम हुआ कि उनके नाम के आगे जो दस्तूर शब्द जुड़ा है, उसके क्या मायने हैं और कल वे जिस अग्नि का दर्शन कर आये हैं वह अग्नि कितनी गहरी आस्थाओं और कितने जटिल प्रयत्नों का प्रतिनिधित्व करती है और यह कि वह आतेश अकेली एक आतेश नहीं है, बल्कि उसमें पन्द्रह अन्य आतेशों का समायोजन है। और ये पन्द्रह आतेशें वायवीय और अलौकिक नहीं हैं, बल्कि सीधे ज़मीन से जुड़े कार्य-कलापों से अवतरित हुई हैं ये अलग-अलग आतेशें हमारे रोजगार का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसमें लाश जलाने वाले डोम से लकर कुम्हार, नाई, रँगरेज, कीमियागर, मूर्तिकार, लुहार, चरवाहे, बढ़ई, लकड़हारे, नानबाई, लश्कर के योद्धा, शस्त्र बनाने वाले कारीगर, दस्तकार और काश्तकार सब आ जाते हैं।

उन दो दिनों में टेम्पटनजी अपने पिता की उँगली पकड़कर कई सदियों की दूरी पार करते हुए पाषाण युग तक पहुँच गये। उन पुरानी राख के विशाल गड्ढों वाली गुफाओं में जहाँ मनुष्य आग की अपनी सबसे बड़ी निधि की तरह रक्षा करता था, क्योंकि वह उसकी अब तक की सबसे बड़ी उपलब्धि थी और आज लाखों सदियाँ गुज़र गई हैं लेकिन अग्नि का महत्त्व किसी न किसी रूप में मनुष्य की आवश्यकताओं में सबसे प्राथमिक है।

समय बीतता गया और समुद्र के सामने अग्नि का यह आख्यान घण्टों चलता रहा। उन दो दिनों में रोमिंगटन दस्तूर द्वारा बताई गई बातों के छोटे-छोटे टुकड़े आज भी टेम्पटन दस्तूर की स्मृतियों में तैरते रहते हैं-'अग्नि मानव को अनुशासित करती है ... उसमें उत्तरदायित्व की भावना जगाती है .... काल की गति पर ध्यान रखना सिखाती है....आग जलाने और उससे जलाए रखने से बड़ा मनुष्य का कोई कर्त्तव्य नहीं है ..... '

.... जब कोई इनसान अपने काम-धन्धों से अपनी आजीविका चला रहा होता है तब उसके दिन-रात के विचारों का सीधा सम्बन्ध उसके घर के चूल्हे और उसके धन्धे की भट्ठी के आतेश पर पड़ता है..... असली आतेश परस्त बस्ते कुस्तियान जरथोस्त्री केवल वही होता है जो इन आतेशों को भी मरने नहीं देता और उन पर कोई अजाब नहीं पड़ने देता।

'... जब जब इन आतशों पर अजाब पड़ने के दुर्योग अनिवार्य हो जाते हैं तब-तब जरथुस्त्र साहेब की बतायी हुई तरकीबों को अमल में लाना चाहिए। जो ऐसा नहीं करता और आतेश पर अजाब पड़ने देता है, वह असली जरथोस्त्री नहीं।....'

अपने समुदाय की धार्मिक मान्यताओं के बारे में उनके पिता ने और भी कई बातें कही थीं। वे सब बातें टेम्पटन दस्तूर की मेमोरी में ज्यों की त्यों दर्ज हैं। सात दिनों की उस यात्रा के बाद वे वापस मुम्बई लौट आये थे, लेकिन बाम्बे-सेण्ट्रल के गेट से बाहर निकलने के बाद जब उनके पिता ने नवरोज डाबर लेन के दस्तूर हाउस का पता बताने की बजाय 'डूँगरवाडी' के लिए टैक्सी तय की तब वे सोच में पड़ गये। यह शब्द उन्होंने पहले भी दो-चार बार सुना था। स्मृति पर ज़ोर देने पर याद आया, यह शब्द केवल तब इस्तेमाल में आता था जब उनके समुदाय के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती थी।

शुरू में उन्होंने निरपेक्ष रूप से कुछ भी लक्ष्य नहीं किया। उनके अन्दर किसी तरह की डरावनी आशंका भी नहीं थी। लेकिन पिता के रिक्त और भावशून्य चेहरे को देखकर वे विचलित हो उठे। टैक्सी जब भीड़भाड़ और चिल्ल-पों के बीच से रास्ता बनाती हुई खुली सड़क पर आकर तेज़ी से दौड़ने लगी, तब उन्होंने पूछा, 'डूँगरवाडी सा माटे जइ रहया छो ?' (डूँगरवाडी किसलिए जा रहे हैं?) पिता ने तुरन्त कोई जवाब नहीं दिया। पसीने से नम उनके सफ़ेद चेहरे पर भूरी लटें फरपरा रही थीं। फिर उनके कोमल चेहरे पर एक लम्बी लकीर उभरी-ऐसी लकीर जो केवल तब उभरती है जब कोई दु:ख में मुस्कुराता है। एक ऐसी मुस्कराहट जिसमें पीड़ा और सान्त्वना दोनों एक साथ प्रकट होती है।

कुछ देर बाद उसने अपने बच्चे को बड़ी हलीमी से अपने करीब खींच लिया-'तने बि लागे छे?'(तुम्हें डर लग रहा है?)

टेम्पटन दस्तूर हल्के से सहमे, फिर उन्होंने

हड़बड़ी में सिर हिलाया, जिसका मतलब था नहीं। फिर पिता ने अपने बच्चे के कन्धे को कस लिया।

डूँगरवाडी पहुँचने के बाद टैक्सी से उतरते ही उनके पिता ने उनका हाथ थाम लिया और एक रहनुमा की तरह आगे बढ़ते चले गये। वे टेढ़े-मेढ़े और कुबड़े दरख्तों के झुरमुट से घिरे एक रास्ते पर तेजी से ऊपर चढ़ते जा रहे थे। डूँगरवाडी की सुनसान दोपहर की उष्ण और बेहद श्लथ नीरवता में कहीं दूर से कौओं की काँव-काँव और चीलों की लम्बी चिल्लाहट सुनाई दे रही थी। जैसे-जैसे वे आगे बढ़ते गये, वह आवाज़ और ज़्यादा तेज़ होगी गई।

दो-तीन मोड़ के बाद वह रास्ता जब खत्म हुआ, तो सामने एक पच्चीस-तीस फुट ऊँचा और बहजुत बड़ा गोल घेरा दिखाई दिया, जिसके मुहाने पर अनगिनत चील कौए मँडरा रहे थे। उस ऊँचे मुहाने तक जाने के लिए पत्थर की सीढ़ियाँ भी बनी थीं।

'आसूँ छे आ गोल घेरा ने शूँ केवाय?' (यह क्या है ? इस गोल घेरे को क्या कहा जाता है?)

'टावर ऑफ सायलेंस।' उनके पिता उन्हें फिर समझाने लगे-'पारसियों नी भाषा माँ तेने डखमू केवाय।' (पारसियों की भाषा में इसे 'डखमू' कहा जाता है।)

वे असमंजस की स्थिति में पिता के चेहरे को निहारते रहे-'आनी अन्दर शूँ छे ?' (इसके अन्दर क्या है ?)

जवाब में पिता ने उनका हाथ सख्ती से भींच लिया और वे सीढ़ियाँ चढ़ने लगे।

टेम्पटनजी सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे जब उनके मन में सिर्फ़ कुतूहल था, जैसे उनके पिता उन्हें किसी जू में ले आये हों। लेकिन ऊपर चढ़कर जब उन्होंने नीचे झाँका तो सन्न रह गये। उन्होंने दोनों हाथों से अपना मुँह ढँक लिया। मगर अन्दर से उठती उबकाई को रोकना असम्भव था। वे वहीं दोहरे हो गए और बेसँभाल तेज़ी से उनके मुँह से उल्टी का फौव्वारा फूट निकला। फिर वे ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे। उनके पिता ने जब उन्हें छूना चाहा तो उन्होंने उनके हाथ को झटक दिया और उसी तरह सिसकते हुए सीढ़ियाँ उतरने लगे।

एक सुखद और ज्ञानवर्द्धक यात्रा का अन्तिम पड़ाव इतना भयानक होगा, यह उन्होंने बिल्कुल नहीं सोचा था।

वे कुछ दूर जाकर पत्थर की एक बेंच पर बैठ गये। काफी देर तक वे यूँ ही पत्तियों की सरसराहट और कौओं की काँव-काँव सुनते रहे। एक लम्बे मौन और जड़ता के बाद आख़िर पिता का हाथ उठा और बेटे को अपनी पीठ पर एक सान्त्वनादायी स्पर्श महसूस हुआ और इस स्पर्श ने सारी कटुताओं और विरक्ति को परे हटाकर बेटे का सिर बाप की गोद में डाल दिया। अब बाप के दोनों हाथों की दसों अँगुलियाँ बेटे के मस्तिष्क की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझा रही थीं।

'आ आपणु छेलू मुकाम छे। जीवन नी दरेक मुसाफिरी नूँ छेवाडु। जीवन ना कोई पण रस्ता माँ थी प्रसार थता वक्ते आपणे नो भूलवूजोइए के छेली तके वधू अहिंयाज मुकी जवू पड़े छे....।' (यह हमारा आख़िरी मुकाम है। जीवन की हरेक यात्रा का अन्त। जीवन के किसी भी रास्ते से गुज़रते समय हमें नहीं भूलना चाहिए कि आख़िरकार सब कुछ यहीं छोड़कर जाना पड़ता हैं।)

कुछ ही देर में बेटे की उखड़ी हुई साँसे सम पर गईं। दिमाग में चल रही उथल-पुथल धीरे-धीरे शान्त होने लगी और कौओं की काँव-काँव के बावजूद उन्हें अपने पिता का मन्द स्वर बिल्कुल साफ सुनाई दे रहा था-

'टावर ऑफ सायलेंस।' उनके पिता उन्हें फिर समझाने लगे-'पारसियों नी भाषा माँ तेने डखमू केवाय।' (पारसियों की भाषा में इसे 'डखमू' कहा जाता है।)

'जुदा-जुदा धर्मों माँ अन्तिम संस्कार ना जुदा-जुदा रिवाजो छे। आपणा धर्म नो पायो चेरिटी ऊपर राखेलो छे एटले आपणा बुजुर्गों ऐवी फरमान मुकी गया छे के मड़धाने डाटी बारी ने नासी नाखवा करता तेने कागडाव-गिधडाव ने सोंपी दो तेथी तेनू पेट ठरे तेने शान्ति मड़े...।' (अलग-अलग धर्मो में अन्तिम संस्कार के अलग-अलग रिवाज हैं। अपने धर्म की नींव चैरिटी के ऊपर रखी गई है इसलिए हमारे बुजुर्गों ने फरमाया है कि मुर्दों को दफना-जलाकर नष्ट करने की बजाए उन्हें चील-कौओं को सौंप दो। इससे उनके पेट तृप्त होते हैं। उन्हें शान्ति मिलती है।)

पिता की गोद में सिर डाले वे सब कुछ सुनते रहे। यह उनके तरुणाई के दिन थे। जब किसी भी किशोर को सिर्फ़ खुशनुमा माहौल, सिर्फ़ खेल तमाशे और सिर्फ़ रसीली चटपटी चीज़ें अच्छी लगती हैं, तब उन्हें गहनतर रंग, साफ खुली हवा में लहराती खुश्बू, हल्की रुपहली सरगम और सलीकेदार और खूबसूरत लड़कियों की ज़रूरत होती है। रंग बिरंगी पोशाकों और जलवेदार अदाओं की उत्साह से उफनती यह उम्र अपनी दिलकश घबराहटों, मुलायम, शगुफ्ता और रूहानी जज्बातों और ज़मीन से पचास मीटर ऊपर उड़ते खयालातों से अपनी स्वप्निल दुनिया रचती है, जिसका वास्तविक दुनिया और उसके नियम-कायदों से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

लेकिन टेम्पटन दस्तूर उन अभागों में से थे, जिन्हें किसी मौलवी, पुजारी, पादरी, या दस्तूर (प्रीस्ट) के घर में जन्म लेना पड़ता है और जैसे आम परिवारों में दुर्भाग्यवश कोई बच्चा जन्म से ही अन्धा या गूँगा-बहरा होता है, ठीक वैसे ही इन धार्मिक घरों में पैदा होने वाले ये बच्चे जन्म से ही आज्ञाकारी होते हैं।

उस दिन डूँगरवाडी में जीवन के अन्तिम पड़ाव को देखने के बाद वे वापस लौट रहे थे, तब अपनी कमरे से बँधी कुश्ती की डोर के एक सिरे को अपनी तर्जनी में बार-बार लपेटते और खोलते हुए वे बहुत गहरी सोच में डूब गये थे। उन्हें डर था कि इस धार्मिक यात्रा और पिता द्वारा दिये जा रहे उपदेशों का असली उद्देश्य उन्हें दस्तूर बनाना और धार्मिक काम-काज के लिए दीक्षित करना तो नहीं है? वे मन ही मन इस स्थिति से निबटने की तैयारी करने लगे। उन्हें बिल्कुल पता नहीं था कि यह

सब सोचते हुए उनका सिर खुद-ब-खुद इनकार में हिल रहा था और उनके पिता बहुत स्पष्ट रूप से उस छुपे हुए अव्यक्त इनकार को देख रहे थे।

दूसरे दिन वे उन्हें अपनी बड़ी बहन यानी हक्कू फई (बुआ) के भरोसे छोड़कर नागपुर चले गये। जाते समय उन्होंने कोई उपदेश नहीं दिया। उनके चेहरे से बिल्कुल यह जाहिर नहीं हो रहा था कि वे हमेशा कि लिए इस शहर और इस घर को छोड़ कर जा रहे हैं। वे भट्टी और चिमनी और बायलर के विशेषज्ञ थे। इम्प्रेस मिल की भट्टियाँ उन्हें बुला रही थीं और वे अग्नि के किसी भी बुलावे को टालते नहीं थे। अब उस बात को तीस साल हो गये। पिता ने उन्हें जो आज़ादी दी थी और अपनी राह खुद चुनने का अधिकार दिया था, उसके लिए वे उनके बहुत आभारी थे। शायद यही वजह थी कि उन्होंने कुछ और बनने के बजाय इतिहासकार बनने का निश्चय किया और किसी अन्य ऐतिहासिक घटनाओं की बजाय वे लगातार आग की तरफ बढ़ते गये। जैव परिस्थितिकी और आग। ऊर्जा और बदलती हुई टेक्नोनॉजी बस इन्हीं चीजों के बारे में वे सोचते थे। इसके अलावा कभी कुछ नहीं सोचते थे।

उनकी बुआ हक्कू फई ने कई बार उन्हें कुछ दूसरी चीज़ों की तरफ मोड़ने की कोशिश की लेकिन उनकी कोशिशें दमदार होने के बावजूद विफल हो जाती थीं। क्योंकि उन कोशिशों में फोर्स तो बहुत होता था, लेकिन कोई दिशा नहीं होती थी। क्योंकि वे खुद नहीं जानती थी कि गलत क्या है और सही क्या है। अच्छे बुरे का फर्क भी कभी-कभी उनके लिए सिफर हो जाता था, क्योंकि जैसा कि सब जानते हैं कि वह एक 'गयेली केस' है। यही विशेषण मुकादम बन्धुओं की ईजाद है, जिनके बारे में यह माना जाता है कि वे खुद भी 'गयेली केस' हैं।

आज भी अपनी ज़िन्दगी का सिंहावलोकन करते समय टेम्पटन दस्तूर को यह बात समझ में नहीं आती थी कि उनके पिता ने उनकी देखभाल के लिये उन्हें हक्कू फई के हवाले किया था या हक्कू फई, जो निश्चित रूप से किसी दूसरे ग्रह की प्राणी थीं, की देख-भाल उनके जिम्मे छोड़ गये थे।

उम्र के बीसवें साल में जब उन्हें हर चीज़ के बारे में थोड़ी-थोड़ी समझ आ गई थी, उन्होंने यह साफ़ देख लिया था कि दुनिया की कोई भी तहजीब हक्कू फई का इलाज नहीं कर सकती। और वे जिन्दगी की आखिरी साँस तक वैसी ही रहेंगी जैसी हैं। उनकी विस्फोटक हँसी हमेशा कबूतरों को डराती रहेगी। तड़पा-तड़पाकर प्यार करने की उनकी आदत और अपने उद्धत चुम्बनों से किसी को भी वश में कर लेने की उनकी क्षमता हमेशा बरकरार रहेगी। उनकी दबंग दखलअन्दाजी, उनकी बेलौस और फूहड़ गालियाँ और हर काम में चाहे वह कितना भी फौरी हो, बिना हिचकिचाए तुरन्त फैसला लेने और बिना देर किए उसे अमल में लाने का साहस कभी खत्म नहीं होगा। उनकी बखेड़ेबाजी और अजीबोगरीब कारनामों से उनके पड़ोसी हमेशा हलकान रहेंगे। और उनके दोनों प्रेमी (मुकादम बन्धु) कयामत तक पिल्लों की तरह उनके आगे-पीछे दुम हिलाते रहेंगे। और उनका छोटा भाई रोमिंगटन दस्तूर मार खाने के डर से हमेशा उनसे छुपता फिरेगा।

उस बेहद सनकी गुस्सैल, अतिभावुक, दयालु, निर्मम, सहिष्णु और उतनी ही कट्टर औरत का चरित्र चित्रण करना बहुत कठिन है। जिस औरत ने दो मर्दों, और वह भी सगे जुड़वाँ भाइयों के साथ एक साथ प्यार किया हो और जो सरेआम उनके कान मरोड़ देने और बीच रास्ते में उन्हें अपनी छतरी से पीट-पाट देने में कोई हिचकिचाहट महसूस नहीं करती हो, जो रेडियो और ग्रामोफोन एक साथ बजाती हो, जिसके लिए ऑमलेट बनाते-बनाते प्यानो बजाना और प्यानो बजाते-बजाते ऑमलेट बनाना एक साथ सम्भव हो, जिसे अपनी अधेड़ावस्था के बावजूद सीटी बजाना और आँख मारना आता हो। जो अपनी खिड़की के छज्जों पर कबूतरों के जोड़े का प्रजननकालीन चोंच मिलन देखकर किसी कमसिन किशोरी की तरह शरमा जाती हो, जिसे सब्जी और दूधवाले से रुपये-आठ आने के लिए लम्बी लड़ाइयाँ लड़ते समय अपनी करोड़ों की प्रापर्टी का जरा भी ध्यान नहीं रहता और जो अपनी कामवाली बाई के बच्चों के एडमिशन के लिए तो कभी दूधवाले की बीवी की जचगी और कभी अपनी कार के ड्राइवर के बाप के ऑपरेशन के लिए रुपयों से भरा बैग लिए घण्टों स्कूल से अस्पताल और अस्पताल से मेटरनिटी होम के चक्कर लगाती हो, जिसके लिए रेडियो के एक वाल्व का खराब होना उतना ही चिन्ताजनक हो जितना किसी के लिए किडनी या गुर्दे का खराब होना, उसके बारे में कोई क्या और कैसे लिख सकता है ?

इस बात पर भी कोई यकीन कर सकता है कि चलती-फिरती यह गफलत की गठरी, जिसे एक ऑमलेट तक ठीक से बनाना नहीं आता, एक जमाने में बहुत कामयाब फूड टेक्नोलॉजिस्ट थी। और उसके वे दो अधपगले और मरगिल्ले आशिक (टी.एफ. मुकादम और एच.एफ. मुकादम) जिन्हें अपने पाजामे का नाड़ा भी ठीक से बाँधना नही आता, एक जमाने में बेस्ट जैसी बेहद कामयाब और देश की सबसे बड़ी सिटी बस सेवा की नींव डालने और उसे शहर के चप्पे-चप्पे तक फैलाने का पराक्रम कर चुके थे और रोमिंगटन दस्तूर यानी उनकी बुआ के चहेते छोटे भाई, जो इतने डरपोक थे कि लकड़ी की सीढ़ियों पर अपनी बहन की पदचाप सुनते ही सहम जाते थे और हमेशा छींकते और नाक सुड़सुड़ाते रहते थे और अपनी कमज़ोर और बच्चे जैसी मधुर आवाज़ में दिन-भर में मुश्किल से दो-चार वाक्य बोल पाते थे, के बारे में यह जानकर कितना आश्चर्य होता है कि देश की सबसे महत्त्वपूर्ण और अपने जमाने की सबसे बड़ी कपड़े की मिल का पूरा तापमान उनके हाथों निर्धारित होता था।

अब वे सब बेहद बूढ़े हो चुके हैं और उनके द्वारा रचे गये इतिहास को नई चीजों ने या तो मटियामेट कर दिया है या बिल्कुल बदल दिया है। फेण्टा, लिमका और पेस्टनजी आइसक्रीम अस्तित्व में होते हुए भी अदृश्य हैं। बेस्ट को सरकार के हवाले कर दिया गया और इम्प्रेस मिल एक प्राचीन मकबरे में बदल गई है, जिसके घास-फूस भरे ध्वंसावशेषों के बीच बन्द पड़ चुके स्टाफ क्वार्टर में आज भी रोमिंगटन दस्तूर अकेले रहते हैं। उनकी बूढ़ी जर्जर काया पावरलूमों की कब्रों के आसपास किसी मुजाबिर की तरह मँडराती है।

टेम्पटन जी को जब मालूम पड़ा कि मिल को बन्द हुए छह महीने हो गए हैं तो वे चिन्तित हो उठे थे। उनके पिता ने न तो मिल बन्द होने की

कोई जानकारी दी थी और न अपने बारे में कोई सन्देश कि वे अब क्या कर रहे हैं और आगे उनका क्या विचार है। कई बार कोशिश करने के बाद भी जब उनसे सम्पर्क नहीं हो गया तो टेम्पटनजी सीधे नागपुर चले आये। इम्प्रेस मिल के सौ साल पुरोन स्टाफ क्वार्टर के अहाते का गेट जो हमेशा भव्य बेगुनिया की लतरों से सुसज्जित रहता था, इस बार बिल्कुल वीरान पड़ा था। बेगुनिया की अस्थियों का कंकाल गेट पर और बाउण्ड्री वाल पर बिखरा पड़ा था और टेम्पटनजी का स्वागत इस बार सदाबहार गमलों और क्यारियों ने नहीं, उलझे हुए झाड़-झंखाड़ ने किया। वे बहुत देर तक दोनों हाथों से उन आदमकद झाड़ियों से लड़ते रहे और जब क्वार्टर नं.छह तक पहुँचे तो बहुत मुश्किल से अपने पिता के घर को पहचान पाये। घर का आँगन सूखी पत्तियों से पटा पड़ा था। झाड़ियाँ दरवाज़ों और खिड़कियों के रास्ते घर के अन्दर तक घुस गई थीं और फर्श की दरारों में भी घास उग आई थी। सबकुछ धूल-धूसरित और वीरान था। कहीं जीवन का कोई चिह्न नहीं था। टेम्पटनजी डरते-डरते घर के अन्दर घुसे। उन्होंने चारों कमरे छान मारे, यहाँ तक कि टायलेट, बाथरूम और रसोई में भी झाँक आये। पर कहीं कोई नज़र नहीं आया। तब वे फिर अहाते में निकल आये। और झाड़ियों को हाथों से हटाते और पाँव से फलाँगते हुए दूसरे क्वार्टर की तरफ बढ़े अधिकांश घर बन्द पड़े थे। सिर्फ़ एक घर के आँगन में दो पेड़ों के बीच बँधी रस्सी में उन्हें कपड़े सूखते दिखाई दिए। वह आँगन बिल्कुल साफ-सुथरा था। खिड़की-दरवाजे, पर्दे सब ठीक-ठाक थे। टेम्पटन दस्तूर ने राहत की साँस ली और सीधे घर के दरवाज़े तक पहुँच गए। उन्होंने दरवाज़े की कुण्डी की धीरे से ठकठकाया। भीतर से कोई आवाज़ नहीं आयी। फिर दूसरी बार उन्होंने थोड़े ज़ोर से कुण्डी खड़कायी और इस बार अन्दर से एक स्त्री स्वर सुनाई दिया, ' कौन छे?' (कौन है?)

'हूँ रोमिगटन नो दिकरो। ' (मैं रोमिंगटन का बेटा।)

'कोण?' (कौन?)

'रोमिंगटन नो दिकरो टेम्पटन।' (रोमिंगटन का बेटा टेम्पटन।)

'हा हा आऊ छू।' (हाँ-हाँ आजी हूँ।)

कुछ देर बाद दरवाजा खुला और एक सफेद छोटे-छोटे बालों वाली बिल्कुल पतली-दुबली और गोरी-चिट्टी बुढ़िया उनके सामने थी। उसके एक हाथ में ऊन कातने की छोटी-सी घिरनी और दूसरे हाथ में ऑस्ट्रेलियन ऊन का गोला था। कुछ देर वह अपनी सन्दिग्ध आँखों से टेम्पटन दस्तूर को परखती रही, फिर आश्वस्त होकर धीरे से मुस्करायी, 'आव दिकरा आवा...!'

टेम्पटनजी अन्दर आ गये।

'केम छे तारी फई मजा माँ छे ?' (कैसी है तुम्हारी बुआ, मजे में है ?)

'पापा क्याँ छे?' (पापा कहाँ हैं ?) टेम्पटनजी ने उनके औपचारिक प्रश्न का जवाब दिये बगैर सीधा प्रश्न किया। बुढ़िया कुछ देर यूँ ही देखती रही। उसके दोनों हाथों के बीच ऊन की पतली-सी डोर कँपकँपा रही थी। फिर उसने ऊन और घिरनी को टेबिल पर रख दिया और धीरे से अपने दोनों हाथ टेम्पटनजी के कन्धों पर रख दिये।

'तारो बाप गाँडो गयो छे।' (तेरा बाप पागल हो गया है।)

टेम्पटनजी ने इस बात पर कोई आश्चर्य व्यक्त नहीं किया, क्योंकि अपने पिता के बारे में ऐसी बातें वे पहले भी हक्कू फई के मुँह से सुन चुके थे। कुछ देर वे यूँ ही बिना कुछ कहे खड़े रहे और कमरे में मौजूद छिट-पुट चीजों को देखते रहे। कुछ ही देर में उन्हें अन्दाजा हो गया कि यही बुढ़िया अब उनके पिता की देख-भाल कर रही है। 'क्याँ छे पापा ?' (कहाँ हैं पापा?)

'मिल माँज हसे बिजे क्याँ जाए।' (मिल में ही होंगे और कहाँ जाएँगे।)

'मिल माँ?' इस बार टेम्पटन जी को थोड़ा आश्चर्य हुआ-'मिल तो महीनों थी बन्द पड़ेली छे!'

'गँड़ाव ने शूँ भान पड़े। ऐ तो हजू टाइमसर डयूटी करे छे। घणीवार तो रात ना आँधारी माँ नाइट शिफ्ट करवा पण जाए छे। हूँ काँई पूछू तो मारा ऊपर खिजाया जाए। एक बार तो मने गाल ऊपर लाफो चोंडी दिघो....।' (पागलों को क्या समझ आजा है। वह तो अभी भी निश्चित समय पर डयूटी पर जाता है। कई बार तो रात के अँधेरे में नाइट शिफ्ट भी करने जाता है। पता नहीं वहाँ जाकर क्या करता है। मैं कुछ बोलती हूँ तो भड़क जाता है। एक बार तो मेरे गाल पर उसने तमाचा भी मार दिया था।)

बुढ़िया का स्वर थोड़ा भर्रा गया। अपनी ऐनक उतारकर वह आँखें पोंछने लगी-'सारू थयू दिकरा तूँ आवी गयो। हवे तूँ ऐने साचव मारा थी नथी थतू।'

(अच्छा हुआ बेटा, तू आ गया। अब तू उसे सँभाल। मेरे से नहीं होता।)

टेम्पटनजी को समझ में नहीं आया कि किस तरह उस बुढ़िया के प्रति कृतज्ञता प्रकट करें। वे इन नई सूचनाओं से हतप्रभ थे। कुछ देर वे यूँ ही खड़े रहे। फिर जाने लगे। आठ-दस कदम चलने के बाद वे फिर रुक गये। मिल के गेट पर तो ताला लगा है। फिर अन्दर जाने का रास्ता कहाँ है ? उन्होंने सिर खुजाते हुए पलटकर बुढ़िया की तरफ देखा। बुढ़िया उन्हें पिछवाड़े तक ले गई और सरकण्डों की घनी झाड़ी से ढँकी एक पगडण्डी पर उनके आगे-आगे चलने लगी।

पगडण्डी के आड़े-तिरछे अवरोधों को लाँघते हुए उसकी बड़बड़ाहट और झल्लाहट लगातार जारी थी। लगभग दस मिनट तक चलते रहने के बाद उन्हें मिल के अहाते की चाहारदीवारी दिखाई दी। टेम्पटन जी सोच में पड़ गये कि इतनी ऊँची और कण्टीली तारों से घिरी हुई दीवार को कोई कैसे फाँद सकता है। लेकिन जब वे दीवार के पास पहुँचे तो, उन्होंने देखा पगडण्डी जहाँ खत्म होती थी, वहाँ दीवार के निचले हिस्से में एक बहुत बड़ा छेद था, जिसमें से साधारण कद-काठी का कोई भी इनसान आ-जा सकता था। उस छेद के आजू-बाजू में टूटी-फूटी ईंट और पलस्तर का चूरा बिखरा पड़ा था।

'आ रस्तो तारा बापे जते बनायवो छे। आ बउ सिक्रेट रस्तो छे। मारा सिवाय कोई ने खबर नछी। ' (ये रास्ता तेरे बाप ने खुद बनाया है। यह बहुत गुप्त रास्ता है। मेरे सिवाय किसी को मालूम नहीं है।)

बुढ़िया अब बुरी तरह हाँफ रही थी-' जा अन्दर राइट साइड माँ चल्यो जा पाँच नं. ना शेड माँ, जो त्याँज हसे।' (जा अन्दर राइट साइड में

चला जा, पाँच नं.के शेड में। देख वहीं होगा।)

टेम्पटन जी को एक बार फिर समझ में नही आया कि पसीने से तर-ब-तर उस हाँफती हुई बुढ़िया का किन शब्दों में आभार प्रकट करे, जो जून की चिलचिलाती धूप में उन्हें रास्ता दिखाने आयी थी। वे बेवकूफों की तरह अपनी पलकें झिपझिपाते हुए खड़े रहे। बुढ़िया ने पास आकर उनका कन्धा थपथपाया और उन्हें ढाढ़स देकर चली गयी।

और अब टेम्पटनजी चहारदीवारी को उघाड़कर बनाये गये उस गुप्त रास्ते को देख रहे थे। कुछ देर लम्बी-लम्बी साँस लेते हुए वे अपने अन्दर साहस इकट्ठा करते रहे जैसे उन्हें दीवार के उस पार नहीं, बल्कि किसी दूसरी दुनिया में जाना हो। कुछ देर बाद वे झुके, अपना सिर छेद के भीतर घुसाया फिर अनभ्यस्त तरीके से अपने हाथ-पाँव को मोड़-सिकोड़कर अन्दर घुसने की कोशिश करने लगे। कुछ देर की कसरत के बाद वे दूसरी दुनिया में आ गये। वहाँ भी उनके सामने वैसी ही पगडण्डी थी- अपने दोनों हाथों से सूखी वनस्पतियों के डण्ठलों और झाड़ियों को हटाते हुए वे दायीं तरफ बढ़ते चले गये। चलते-चलते उन्हें बचपन में पढ़ी एक चीनी कहावत याद आयी-जब यह दुनिया बनी थी, तब इसमें रास्ते नहीं थे। वे लोग ही हैं जिन्होंने चल-चलकर रास्ते बनाये।

पगडण्डी पर उन्हें अपने पिता के चिर-परिचित केनवास के जूतों की छाप दिखाई दी। उनके छोटे-छोटे जूतों की छाप की अलावा वहाँ दूसरा कोई निशान नहीं था। उन्हें यह सोचकर एक विचित्र डरावना-सा अहसास हुआ कि यह खुद अपने पाँव से बनी एक ऐसी अकेली रहा है, जिस पर उनके पिता के अलावा आज तक किसी ने पैर नहीं रखा होगा।

पगडण्डी पाँचवें शेड के पास जाकर खत्म हो गयी थी, लेकिन झाड़ियों, डण्ठलों और सूखी पत्तियों का शेड में चारों तरफ कब्जा था। सिर्फ़ लोहे के कालमों को ही नहीं, उसने बन्द पड़ी पावरलूमों को भी धर-दबोचा था। खर-पतवारों की यह फौज बहुत दृढ़ निश्चयी और अपराजेय थी। वे उस उद्यम की लाश की चारों तरफ से घेरे हुए थी। ये वही मशीनें थीं जो अपनी दानवी क्षमता से करोड़ों टन कपास धुन चुकी थीं। जो असंख्य बेनाप सूत उगल चुकी थीं और सूत के उन धागों को आपस में मिलाकर करोड़ों मीटर कपड़ा बुन चुकी थीं।

लेकिन अब वहाँ कोई हलचल नहीं थी। सिर्फ़ वीरानगी थी। टेम्पटन जी बहुत गौर से मशीनों के मकबरों को देख रहे थे। 'सिर्फ़ आदमी ही रिटायर नहीं होता, टेक्नोलॉजी भी रिटायर होती है'-उन्हें फिर से किसी भूमण्डलीय व्याख्याकार की टिप्पणी याद आयी। और आदमी तो एक उम्र के बाद रिटायर होता है, लेकिन टेक्नोलॉजी उसके रिटायरमेण्ट से पहले भी रिटायर हो सकती है। फिर उन लोगों का क्या होगा जिनका जीवन उस पुरानी तकनीक में ढल चुका था और वे उसके उतने ही आदी हो गये थे जितने बच्चे अपने माँ-बाप के आदी हो जाते हैं?

टेम्पटनजी कुछ देर के लिए अपने पिता को भूल गये और बहुत गहरी सोच में डूब गये। मशीनें जब चलन से बाहर हो जाती हैं तो उनके कल-पुर्जे अलग कर दिये जाते हैं। उन्हें तपाकर गलाया जाता सकता है। और कोई दूसरा रूप भी दिया जा सकता है। लेकिन मनुष्य और उसका जीवन? टेम्पटनजी के अन्दर

लहू की वह इकलौती बूँद फिर से गर्दिश करने लगी। वे इस बारे में सोचते-सोचते जाने कब तक

टेम्पटनजी की नज़रें आसपास फैली बदहाली के ऊपर से गुजरती हुई दूर मिल की चिमनी की तरफ उठ गयीं। वह चिमनी आधी टूटी हुई थी। चिमनी के आसपास टूटी-फूटी ईटों और पलस्तर का ढेर लगा था।

वहाँ खड़े रहे। फिर उन्हें वर्षों पहले की वह यात्रा और अग्यारी की वह आग याद आयी और अपने पिता की वह बात भी जो उन्होंने आरम्रस के सामने खड़े होकर कही थी-ये सिर्फ़ अग्नि नहीं है। यह हमारी संकल्पशक्ति है। इसे कभी बुझने नहीं देना चाहिए।

टेम्पटनजी की नज़रें आसपास फैली बदहाली के ऊपर से गुजरती हुई दूर मिल की चिमनी की तरफ उठ गयीं। वह चिमनी आधी टूटी हुई थी। चिमनी के आसपास टूटी-फूटी ईटों और पलस्तर का ढेर लगा था। बहुत देर तक वे उन भग्नावशेषों को देखते रहे। उसकी लम्बाई-चौड़ाई और गोलाई और उनके आसपास फैली खामोशी और वीरानी ने टावर ऑफ़ सायलेंस की याद को ताजा कर दिया। उन्हें एक बार फिर अपने अन्दर ठीक वैसी ही उबकाई महसूस हुई, जैसी वर्षों पहले डूँगरवाड़ी में हुई थी। लेकिन इस बार उन्होंने उस उबकाई को जब्त कर लिया।

उन्हें यहाँ आये बहुत देर हो चुकी थी। धीरे-धीरे दोपहर भी ढलने लगी। ढलती दोपहर की पीली धूप अब सिन्दूरी रंग में बदल रही थी। कुछ देर बाद गाढ़े सिन्दूरी और हल्के काले के बीच खड़े अपने साये को देखकर वे डर गये। जब ढलती शाम का मंजर इतना भयानक है तो रात में यह सब कैसा दिखाई देता होगा? वे यह सोचकर हैरान रह गये कि रात में उनके पिता यहाँ कैसे आते होंगे। और उससे बड़ा सवाल तो यह है कि वे यहाँ आकर आखिर करते क्या हैं ?

उन्होंने एक बार फिर दूर-दूर तक नज़र डाली। हर तरफ कुण्डलित केबलों का बीभत्स फैलाव, टेढ़े-मेढ़े और एक-दूसरे में उलझे-फँसे लोहे के एंगल, ध्वस्त और धराशायी स्ट्रक्चर, एक-दूसरे पर गिरे पड़े बीम और गर्डर। गैस कटर से काट-काटकर अलग किये गये धूल में धँसे और घास-फूस से ढँकी मशीनों के पुर्जे। और सैकड़ों कालिख सने दस्ताने, जो अब जिन्दा मानवीय हाथों के अभाव में लावारिस लाशों की तरह यहाँ-वहाँ पड़े थे।

इन सब निर्जीव चीजों पर एक सर्किल में घूमती हुई नजर डालने के बाद उनकी दृष्टि फिर चिमनी पर जा टिकी। इस बार उन्होंने बहुत निश्चयात्मक ढंग से अपनी गर्दन हिलायी और उसके कदम चिमनी की तरफ बेखौफ बढ़ने लगे।

अब उस अहाते में सिर्फ़ उनके खरपतवारों से उलझते कदमों की सरसराहट के अलावा दूसरी कोई आवाज नहीं थी। अन्त में जब वे चिमनी के बिल्कुल पास भट्ठी के मुहाने तक पहुँचे, तब उन्होंने अपने पिता को देखा। वे बहुत गौर से भट्ठी के अन्दर देख रहे थे। भट्ठी के अंदरूनी हिस्से से धुएँ के छोटे-छोटे अलसाये से बादल ऊपर उठ रहे थे। उनके कदमों के पास दस्तानों का ढेर था।

कुछ देर बाद जब भट्ठी की आँच धीमी पड़ गयी, उन्होंने झुककर कुछ दस्ताने उठाये और उन्हें एक-एक कर आग के हवाले कर दिया। और अगले ही पल वे बहुत ऊँची आवाज़ में आतश नीआऐश पढ़ने लगे जैसे वे किसी अग्यारी में खड़े हों। इस संक्षिप्त धार्मिक क्रिया के बाद जब वे चुप हो गये तक टेम्पटनजी ने धीरे से उनके कन्धे पर हाथ रखा। इस स्पर्श से वे चौंक गये। उन्होंने तुरन्त गरदन फेरकर पीछे देखा और जैसे ही टेम्पटन दस्तूर की नजर अपने पिता के चेहरे पर पड़ी, वे स्तब्ध रह गये। मारे डर के उनके सिर के बाल तक थर्रा गये। वे तुरन्त पलटकर भागने लगे। एक भयभीत रुलाई अन्दर से फूट पड़ी। इस बौखलाहट और हड़बड़ी में उनके पाँव झाड़ियों से उलझ गये और वे मुँह के बल गिरे। उन्होंने किसी शुतुरमुर्ग की तरह सूखी घास में अपना चेहरा छुपा लिया।

वे बुरी तरह हाँफ रहे थे। कुछ देर बाद उन्हें खरपतवार की सरसराहट सुनाई दी, जो स्पष्ट रूप से किसी के धीमे कदमों से पैदा हो रही थी। वह आवाज उनके कान के पास आकर रुक गयी। एक बार फिर सन्नाटा छा गया और टेम्पटनजी, जो दोनों हाथों से अपने चेहरे को ढाँपे औंधे पड़े थे, एक बार फिर इस कल्पना से सिहर गये कि अभी कोई हाथ उनकी बाँह या पीठ को छुएगा, अभी कोई पुकार सुनाई देगी ओर एक बार फिर उन्हें उस चेहरे को देखना पड़ेगा जिसे इतने वर्षो बाद इतने गमगीन बदलावों के साथ देखकर वे डर गये थे।

लेकिन वैसा कुछ नहीं हुआ जैसी आशंका थी। न कोई स्पर्श न पुकार। कुछ देर बाद फिर वही सरसराहट सुनाई दी। लेकिन अब वह आवाज क्रमशः दूर जा रही थी। खरपतवारों से उलझते कदमों की धीमी मर-मर।

जब उन्होंने सिर उठाकर देखा तो उन्हें अपने पिता की कमजोर और लड़खड़ाती काया दिखाई दी। टेम्पटनजी झट से उठ खड़े हुए। अपने डर के बावजूद वे पागलों की तरह उनके पीछे भागे। वे बड़े ही कातर स्वर में क्षमा-याचना करते हुए गिड़गिड़ा रहे थे। उन्हें अचानक इस पापबोध ने घेर लिया कि उन्होंने अपने पिता की कोई देख-भाल नहीं की। अगर समय रहते कोई पूछ-परख की होती तो हालात इतने न बिगड़ते। उन्हें अपने समुदाय के बारे में सोचने के साथ-साथ अपने परिवार के बारे में भी कुछ सोचना चाहिए था। क्या अपने पिता के प्रति उनका कोई फर्ज नहीं बनता ? क्या यही था उनके आजीवन तप का सिला कि उन्हें एक निर्जन खण्डहर में प्रेत की तरह भटकने के लिए छोड़ दिया जाए ?

उन्होंने लपककर अपने पिता के कालिख और राख से सने हाथों को पकड़ लिया और बिना उनकी तरफ देखे, बिना कुछ कहे उन्होंने उनके

बायें हाथ को अपने कन्धे पर रखा और उनकी कमर में अपनी बाँह डालकर चलने लगे। वे अब भी रो रहे थे। पर अब उस रुलाई में भय नहीं, करुणा थी। अपने पिता के मचकते और लड़खड़ाते शरीर को सँभालने के लिए जिस अनुभव और हुनर की जरूरत थी, वह उनके पास नहीं था। जिन्होंने कभी किसी को सहारा नहीं दिया हो, वे जब अचानक किसी को सहारा देने की कोशिश करते हैं तो खुद को लड़खड़ाने से नहीं बचा पाते।

टेम्पटनजी अपने पिता की कमज़ोर काया का सहारा देते और खुद डगमगाते हुए जब वापस घर पहुँचे, तब तक अँधेरा छा गया था। उन्होंने बत्ती जलायी कुछ देर यूँ ही खड़े रहे फिर पलटकर पिता की तरफ देखा। वे एक लमटंगी कुर्सी पर अधलेटे पड़े थे। उनकी आँखें बन्द थीं और साँस बहुत तेजी से चल रही थी। टेम्पटनजी ने उनका हाथ सहलाया और उनकी कमजोर सूखी हुई उँगलियों को अपनी हथेलियों में दबोच लिया। वे अनिश्चय, अवसाद और असमंजस के बीच काफी देर तक विचलित से खड़े रहे। फिर उनके मन में एक विचार आया और उन्होंने कुछ ऐसे अन्दाज़ में सिर हिलाया जैसे वे खुद अपने विचार के प्रति सहमति प्रकट कर रहे हों।

'पापा....'-इस बार उन्हें अपनी आवाज में वह खनक सुनाई दी जो एक वयस्क की आवाज में होती है-' ..... अभी तक आपने जो कुछ किया है, वह कम नहीं है। अब यहाँ करने के लिए कुछ नहीं बचा है। '

रोमिंगटन दस्तूर उनके पाँव के पास घुटनों के बल बैठ गये-' ...अब जिद छोड़िए। वापस लौट आइए। '

'नहीं।' रोमिंगटन दस्तूर की आवाज अपेक्षाकृत कड़ी थी।

'लेकिन आप यहाँ क्यों रहना चाहते हैं? क्या बचा है अब यहाँ ?'

'आग'

'आग?' टेम्पटनजी चौंक गये।

'हाँ....!' उनके पिता के स्वर में अभी भी वह सहजता थी जो मानसिक रूप से स्वस्थ और सुलझे हुए आदमी में होती है-' .....मैं उस भट्ठी को बुझने नहीं दूँगा।'

वे कुछ देर तक पिता का चेहरा देखते रहे। एक बात जो बिल्कुल साफ समझ में आ रही थी, वो ये थी कि जिस आग की वे बात कर रहे थे, वह आग कोई ऐसी-वैसी आग नहीं थी जो यूँ ही लग जाती है। और यूँ ही बुझ जाती है। उस आग में उनके पुरखों का आवेगी रक्त शामिल था जो दुर्जेय था। उन्हें पिर वे दाहक मन्त्र याद आ गये, जो उनके पिता भट्ठी के सामने खड़े होकर पढ़ रहे थे।

एक-डेढ़ घण्टे की माथा-पच्ची के बाद उन्होंने स्वीकर कर लिया कि पिता को वापस ले जाना असम्भव है। अब केवल एक हीरास्ता बचा है-हक्कू फई। सिर्फ़ उसी औरत में इतनी ताक़त है। सिर्फ़ वही रोमिंगटन दस्तूर के हठ और उन पर मँडराते विनाश के प्रचण्ड घमासान से निबट सकती है। क्योंकि वही तो हर बार उन्हें पकड़-पकड़कर लाती रही है। चाहे वे रूठकर घर से निकल भागे हों या मार खाने के डर से किसी सुनसान में छिपे हों या भीड़ में कहीं खो गये हों या किसी सनक पर सवार हाकर ऊपर उड़ गये हों या किसी जौम में आकर गहरी डुबकी लगा बैठे हों! हर बार लम्बे-लम्बे हाथों वाली उनकी यह हड़ीली बहन कहीं-न-कहीं उन्हें दबोच लेती थी और वापस

घसीट लाती थी।

उन्हें याद आया, हक्कू फई के साहस उनकी सनक और उनकी जघन्य कार्रवाइयों के कैसे-कैसे क़िस्से उनके मुहल्ले में प्रचलित थे। उस फुर्तीली छरहरी और बेहद घातक बिल्ली ने बचपन से ही उस मुहल्ले में आंतक फैलाना शुरू कर दिया था। जब वे तेरह साल की थीं तक उनकी नानी ने लन्दन से उनके लिए एक फोल्डिंग साइकिल भेजी थी। लेकिन हक्कू फई के लिए वह साइकिल सिर्फ़ साईकिल नहीं टैंक था, जिस पर सवार होकर वह दनदनाते हुए दुश्मनों के अड्डों पर धावा बोलने निकल पड़ती थी। भीड़भाड़ वाल सड़कें हों या सँकरी गलियाँ, गैराज के पिछवाड़े का भंगाड़, खाना हो या किसी बन्द पड़े मकान का सुनसान तहखाना, वे उन लौंडों को कहीं-न-कहीं घेर लेतीं जो अपने माँ-बाप की बात नहीं मानते थे। और होमवर्क करने की बजाय या स्कूल से कंची मारकार गलियों में आवारागर्दी करते फिरते थे और चौरी-छिपे ऐसी कारगुजारियों में मशगूल रहते थे, जो हक्कू फई को सख्त नापसन्द थीं।

उन दिनों टेस्टर मुकादम, हरजी मुकादम और रोमिंगटन-ये तीन तिलंगे उनके सर्वाधिक प्रमुख और प्रिय शत्रु थे। आज तक उन तीनों में से कोई हक्कू फई नाम की उस खौफनाक मुसीबत से निबट नहीं पाया था, जो उन्हें बचपन में इच्छानुसार बाहर आने-जाने की अनुमति नहीं देती थी, जो उनके हर गुप्त खेलों को बेनकाब करने में माहिर थी, जो किशोरावस्था में चुपचाप खेलते जाते हैं। और मुकादम बन्धु जब जवान हो गये और सचमुच के मर्द बन गये तब हक्कू फई ने दिन-दहाड़े दोनों भाइयों को एक रण्डी के कोठे में रँगे हाथों पकड़ा था और उन्हें पाजामे का नाड़ा बाँधने का भी मौका दिये बगैर घसीट लाई थी। फिर कॉलर पकड़कर दोनों को अपनी आँखों की ऊँचाई तक उठाया और इसी प्रकार कॉलर से पकड़े-पकड़े वे उन्हें उठाये हुए सड़क पर लाई और अपनी कार के पास पहुँचकर ही उन्हें दो पैरों पर खड़ा होने का मौका दिया।

वे दोनों बुरी तरह से हाँफ रहे थे और दोनों को पक्का यकीन था कि अब जो निकलेगा वो शोला होगा। क्योंकि दोनों को अच्छी तरह मालूम था कि उनके गुनाह जिने संगीन होते थे, हक्कू फई की प्रतिक्रियाएँ उससे भी ज़्यादा सनसनीखेज और भयानक होती थीं। और उस दिन उन्होंने जो किया था, वह उनके अब तक के जीवन का सब से बड़ा गुनाह था।

रास्ते भर हक्कू कुछ नहीं बोली। घर पहुँचने के बाद भी वह बिल्कुल खामोश थी। दोनों हमशक्ल कुछ देर तक एक-दूसरे का थोबड़ा देखते रहे, फिर कार से उतरकर चुपचाप अपने कमरे में चले गये। कुछ देर तक वे असमंजस-भरी व्यग्रता से इधर-उधर चक्कर काटते रहे। फिर दोनों एक साथ खिड़की के पास आए और डरते-डरते खिड़की का पेनल हटाकर नीचे झाँका। सड़क पर न तो हक्कू थी और न उनकी कार। दोनों भाइयों ने हैरत भरी खुशी से एक दूसरे को देखा और उछल पड़े, जैसे किसी बड़े खतरे से बाल-बाल बचे हों।

लेकिन तभी भड़ाक से कमरे का दरवाज़ा खुला। दरवाजे के दोनों पल्लू पर हाथ टिकाये खड़ी हक्कू को उन्होंने देखा और दोनों के मुँह से एक साथ चीख निकल गयी। वे अपने चेहरों पर फूट पड़ते बर्फीले पसीने और अपने दाँतों को किटकिटाने से रोक नहीं पाये, जब उन्होंने देखा कि हक्कू उनके सामने सिर्फ़ एक जाँघिये में थी। इस घोर और घरेलू नग्नता ने उन्हें इतना आतंकित कर दिया कि वे अपने पलकें भी झपकाना भूल गये।

हक्कू लम्बे-लम्बे डग भरती हुई उनके पास आई और अपने लम्बे शक्तिशाली हाथों से उसने दोनों के बाल पीछे से पकड़े और अपने इन दुधमुँहें दुश्मनों के होंठों में अपना एक-एक स्तन पकड़ाकर यह साबित कर दिया कि 'हक्कू' के अलावा इस दुनिया में उनके लिए कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

अब जीवन के अन्तिम पड़ाव में हक्कू फई के जर्जर शरीर में हालाँकि वह ताब और मतिभ्रम से ग्रसित दिमाग में वह आग नहीं थी, लेकिन उस शिथिल और निस्तेज मोम जैसे कोमल चेहरे और कपास जैसे सफ़ेद बालों वाली दया की देवी के अन्दर कर्कश आवाज वाली एक उद्धत और अवमानित अधीक्षिका अभी भी मौजूद थी-जिसका आवेश इतना प्रचण्ड था कि किसी भी तरह की नजाकत उसके सामने टिक नहीं सकती थी, जिसे अब भी गला फाड़-फाड़कर हँसना आता था, जिसकी आन्दोलनकारी अश्लील वृत्तियाँ अभी भी सुप्त नहीं हुई थीं और जिसके मखरूती उठान लिये स्तन मुकादम बन्धुओं की अनन्त छेड़छाड़ के बावजूद अभी तक सिर निगूँ नहीं हुए थे।

फोन पर लगभ आधे घण्टे तक सिर खपाने के बाद टेम्पटनजी हक्कू फई के लगभग बहरे हो चुके कानों में यह बात डालने में सफल नहीं हुए कि मामला क्या है। पिता और उनके घर का हाल जब वे बयाँ कर रहे थे तब उन्हें यह सन्देह था कि उनकी बातें ठीक से सम्प्रेषित हो रही हैं कि नहीं। क्योंकि हक्कू फई ने बातचीत के दौरान ऐसी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की, जिससे यह अन्दाजा लगाया जा सके कि वे इस मामले में कौन-सा रुख लेने वाली हैं।

दूसरे दिन दोपहर ठीक तीन बजे एक वैन इम्प्रेस मिल के स्टाफ क्वार्टर के सामने रुकी। वैन का पिछला दरवाज़ा खुला। पहले हक्कू फई बाहर निकली फिर उनके सब सोहबती, जिसमें सबसे पहले उनकी झगड़ालू और मुँहफट नौकरानी ऊषा बाई थी। फिर एक चितकबरा कुत्ता वैन से नीचे कूदा, जिसका नाम हक्कू फई ने 'जवाई' (पूरा नाम ऊषा बाई का जवाई) रखा था कुत्ते के बाहर निकलते ही दूधवाला शम्भू बाहर निकला जो हर वक्त हर मुसीबत में हक्कू फई की मदद करने के लिए दिलो-जाँ से तैयार रहता था। और सबसे आख़िर में वैन के दरवाज़े से हक्कू फई के चिर कुँवारे जुड़वाँ प्रेमियों का जोड़ा बाहर निकला। अपने इन पालतू प्रेमियों को वह हर सफर में अपने साथ रखती थीं ताकि वे उनकी गैरहाजिरी का 'फायदा' न उठा सकें।

जक हक्कू फई का पूरा अभियान दल बाहर आ गया तक वैन की डिक्की खोली गयी और टेम्पटन जी दिल थामकर उन हौलनाक चीजों को बाहर आते देखते रहे। सबसे पहले फावड़ा, बेलचा, लोहे का नुकीला पंजा, बड़ी-बड़ी कैंचियाँ और दराँती बाहर आयीं। फिर गैडे की खाल से बना सूटकेस। फिर दो सौ साल पुरानी लकड़ी की छड़ी, गमबूट, कैनवस की हैट और वह फोल्डिंग साइकिल, जिसे वह नानी की याद में हर साल सुर्खी-सुफेद रंगों से पेण्ट करवाती थीं। सबसे अन्त में चीज़ बाहर आयी उसे देखकर टेम्पटनजी सहम

गये-लोहे की वे बेड़ियाँ, जो उनके खानदान की वंशावली की सदियों से हमसफर थीं और जिसका इस्तेमाल पागलपन के आनुवंशिक रोग से अभिशप्त उस खानदान के उत्तप्त, अधीर और उतने ही विध्वसंक दौरों पर काबू पाने के लिए कई बार किया जा चुका था।

वैन जैसे ही रुखसत हुई, हक्कू फई ने अपने दोनों हाथों की दो-दो उँगलियों को अपने पोपले मुँह में तालू के नीचे फँसाया और उसी समय एक भंयकर गूँजती हुई सीटी और प्रबल फुफकारते श्वासोच्छ्वास ने इम्प्रेस मिल के भग्नावशेषों को हिला डाला। फिर अभियान दल के सभी सदस्यों ने पोजीशन ले ली और रोमिंगटन दस्तूर के घर पर धावा बोल दिया। ऊषा बाई ने दराँती के एक ही वार से लोहे के गेट से उलझी बेगुनिया की सूखी झाड़ियों को काट फेंका। शम्भू की लम्बी कैंची खच्च-खच्च की आवाज करती हुई आँगन के सूखे डण्ठलों पर झपट पड़ी। फिर बारी आयी बरामदे में फैली खर-पतवारों की और उसके बाद उन ढीठ उजड्ड और बेशरम झाड़ियों की, जो खिड़कियों के रास्ते सीधे घर में घुस आयी थीं। उन झाड़ियों से निबटने के लिए सिर्फ़ कैंची ही काफी नहीं थी। शम्भू ने ऊपरी डण्ठली को काट गिराने के बाद फावड़ा हाथ में लिया और सीधे जड़ों पर हमला कर दिया। जड़ें ही जमीन से बाहर आयीं, जमीन के अन्दर के गुप्त तहखानों से चींटियों और कीड़े-मकोड़ों की फौज उभर पड़ी। यह हमला इतना अप्रत्याशित था कि कुछ देर के लिए सब हड़बड़ा गये। लेकिन हक्कू फई के जाँबाज आशिक ठीक समय पर सामने आये और कीटनाशक दवाइयों का स्प्रे हाथ में लेकर उन्होंने मोर्चा सँभाल लिया।

इस अफरा-तफरी और हड़बोंग को जवाई बड़े हैरानकुन अन्दाज से देख रहा था। उसके कान लगभग आधे घण्टे से खड़े के खड़े थे। वह भौंकना और किंकियाना तो दूर, पूँछ हिलाना भी भूल गया था। चौकन्नी आँखों से इन अबूझ मानवीय क्रिया-कलापों को देखते हुए अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रहा था। आखिर जब उसे कुछ समझ में नहीं आया तो कीड़ों की फौज के ऊपर अकारण लगा धमाचौकड़ी मचाने लगा। इस बेवकूफाना हरकत से कीड़ों की पंक्तिबद्ध सेना बिखर गयी और भगदड़ का नतीजा यह हुआ कि कुछ कीड़े कुचल गये, कुछ उसकी टाँगों पर चढ़ गये और कुछ मुकादम बन्धुओं के पाजामे में प्रवेश कर गये। टेस्टर मुकादम की जाँघ पर जैसे ही एक कीड़े ने डंक मारा, उसने झल्लाकर स्प्रे का पम्प जवाई के मुँह पर दे मारा।

उधर घर के अन्दर ऊषा बाई लम्बे डण्डे वाला झाड़ू हाथ में लिये इधर से उधर चक्कर काटती हुई मकड़जालों पर हाथ आजमा रही थी। उसने जैसे ही अपने जवाई का करुण आर्तनाद सुना, तुरन्त झाड़ू फेंककर खिड़की की तरफ लपकी और जैसे ही उसने आँगन में झाँका, उसका मुँह खुला का खुला रह गया। टेस्टर मुकादम और हरजी मुकादम अपने पाजामे उतारकर नंगे नाच रहे थे और कीड़ों से बचाव के लिए शम्भू उनके ऊपर बारी-बारी से कीटनाशक का छिड़काव कर रहा था।

इन बाहरी बखेड़ों से बेखबर हक्कू फई गुसलखाने की काई लगी दीवारों और खुरदरी रेशेदार परतों से काले पड़े हुए हम्माम और महीनों पुरानी सूखी टट्टी से जाम हो चुके कमोड पर पूरी ताक़त से ब्रश फेरती हुई पता नहीं कौन-सी भाषा में बड़बड़ा रही थीं। उनकी जोरदार मर्दाना गालियों का असर इतना तेज था कि वर्षो से जंग खाई नल की टोंटी अपने आप खुल गयी। दीवारों से काई तो काई, उसके साथ पलस्तर भी उधड़ गया और मैल की परतें एक पल में ऐसे गायब हो गयीं कि जैसे उसका कोई अस्तित्व ही न हो। लगभग तुम्बे जैसा नहाने का ताम्बे का लोटा अपने आप चमचमा उठा। यहाँ तक कि नल से आने वाले पानी में भी जून की भयानक तपिश के बावजूद शीतलता आ गयी। और पूरा गुसलखाना डर के मारे ऐसे महकने लगा, जैसे इत्र सुवासित जल से उसे नहला दिया गया हो।

गुसलखाने की बेहूदगियों को बहुत सख्ती से रगड़ने के बाद हक्की फई के तेजग़ाम कदमों ने रसोईघर का रुख लिया और अगले ही पल वर्षो से शान्त पड़े बर्तनों के बीच कोहराम मच गया। पसीने से तर-ब-तर और गुस्से से फनफनाती उस बयासी साला बुढ़िया ने एक-एक चम्मच की खबर ली और गैस के चूल्हे को इतनी ऊँची आवाज में फटकारा कि आटे के कनस्तर में छुपे कॉकरोच भी डर के मारे भाग निकले। सबसे ज्यादा मार रेफ्रीजरेटर को पड़ी। उसके अन्दर बजबजाती जैम और सॉस की शीशियों की कीड़ों-मकोड़ों समेत नाँद में डुबोकर मार डाला गया। फफूँद और काई से लिपटे जालीदार शेल्फ को बाहर निकाल कर पटक-पटक कर पीटा गया। फिर चूल्हे के नीचे की चबूतरानुमा आलमारी की बारी आयी, जहाँ कॉकारोचों और चूहों का एकछत्र राज्य था और वहाँ पड़ी हुई चीजें एक-दूसरे से कहीं ज़्यादा हुई थीं। लेकिन हक्कू फई ने व्यर्थ की बारीकियों और एहतियात से अपने काम की गति को धीमा करने की बजाय उस अंगड़-खंगड़ को ही पूरा उलट दिया और किसी भी तरह की टूट-फूट की परवाह किये बिना अपने काम में लगी रही।

और कुछ ही देर में उसने रोजमर्रा की ज़रूरी चीजों का पूरा एक नया संसार रच डाला। इस बीच दो अलग-अलग कमरों में भी छिट-पुट कार्रवाइयाँ जारी थीं। फर्श की फटी हुई दरारों से घास उखाड़कर उसमें सीमेण्ट भर दी गयी। खिड़की के अड़ियाल पेनलों के जंग खाये कब्जों से जंग छुड़ा दी गयी। दरवाजे को ठोक-पीटकर ठीक कर दिया गया। दीमक की चबाई ताक-पट्टियों पर वार्निश चढ़ा दी गयी। होल्डरों से पुराने फ्यूज़्ड बल्ब निकालकर नये बल्ब लगा दिये गये। पूजा की वेदी में धूल-धक्कड़ से अँटे पैगम्बरों को पोंछ-पांछकर वापस चमका दिया गया।

इन सब गतिविधियों को रोमिंगटन दस्तूर अपनी लमटंगी कुर्सी में पड़े-पड़े देखते रहे। वे चाहते तो भी कुछ नहीं कर सकते थे क्योंकि उनके दोनों हाथ कुर्सी के हत्थों के साथ उस जंजीर से जकड़ दिये गये थे, जिसका इस्तेमाल उनके ऊपर पहले भी दो बार हो चुका था। एक बार तब-जब उन्होंने अपनी माँ की देह को टावर ऑफ़ सायलेंस में देखा था और दूसरी बार तब-जब उनकी पत्नी ने कैंसर की बीमारी से त्रस्त होकर अपना स्तन कटवा लिया था।

अब वे अपने सामने हो रहे प्रहसन के सिर्फ़ एक दर्शक थे। लेकिन कोई नहीं जानता था कि उनका ध्यान इस विक्षप्त सुधार कार्य की तरफ नहीं था, बल्कि वे उस क्रमिक ह्रास को देख रहे थे जो उन्हें पृष्ठभूमि में दिखाई दे रहा था।

वे बहुत ध्यान से दीवार पर टँगी तस्वीरों के

उस लम्बे पैनल को देख रहे थे, जिसमें पहली तस्वीर जमशेदजी टाटा की थी और आखिरी रतन टाटा की। उनकी आँखें जमशेदजी टाटा के चेहरे को बहुत आदरपूर्ण भावुकता से देखती रहीं। फिर धीरे-धीरे दूसरी तस्वीरों पर फिसलती हुई उनकी नजरें जब आख़िरी तस्वीर तक पहुँचीं, तब उनकी आँखों में उस आर्द्रता और सम्मानपूर्ण नमी का नामोनिशान नहीं था। बल्कि उनकी आँखों में थोड़ी खफगी और पेशानी पर हल्की-सी शिकन उभर आयी।

फिर वह तस्वीर धीरे-धीरे धुँधली पड़ने लगी और तस्वीर के पूरी तरफ फेड होती ही उसी फ्रेम में स्मृतियों और काल्पनिक दृश्यों का घालमेल शुरू हो गया। फ्रेम धीरे-धीरे एन्लार्ज होता है और अनुपात में बदलते दृश्यों के कोलाजका भी आकार बड़ा होता है। फिर दृश्य स्थिर होता है और मिल के अहाते में लेप रनवे पर खड़ी रोमिंगटी दस्तूर की आकृति दिखाई देती है।

लोहे की पटरियों पर दृश्य धीमी गति से आगे बढ़ता है। मिल के उजाड़े जा चुके स्ट्रक्चर के मलबे के बीच से गुज़रते हुए लेप रनवे पर सवार दस्तूर जी की आकृति सबसे पहले जिनिंग डिपार्टमेण्ट के शेड में पहुँची। वहाँ एक कपास धुनने की दैत्याकार मशीन थी जिसे सैकड़ों गिद्धों ने घेर रखा था। वे बड़े इतमीनान से लोहे के टुकड़ों को नोंच और निगल रहे थे। जब दस्तूर जी की रनवे पर रेंगती आकृति वहाँ से गुज़री तो उन्होंने सिर उठाकर उन्हें देखा, फिर अपनी गर्दनें झुका लीं। और मशीन पर पूर्ववत चोंच मारने लगे। लगभग यही नजारा स्पिनिंग डिपार्टमेण्ट में भी था। फर्क सिर्फ इतना था कि वहाँ अब मशीनों के नोंचे हुए अवशेष बचे थे और अघाए हुए गिद्ध लोहे के एंगलों पर बैठे ऊँघ रहे थे।

दस्तूरजी की आकृति उनके बीच से गुज़रती हुई भूतपूर्व स्पिनिंग डायरेक्टर एन. बी. सकलातवाला की आदमकद तस्वीर के सामने ठहर गयी। सकलातवाला बहुत विवश निगाहों से दस्तूरजी को देख रहे थे। दोनों एक-दूसरे को कुछ देर देखते रहे। फिर सकलातवाला की तस्वीर का सिर झुक गया। कुछ देर बाद दस्तूरजी की आकृति ने भी सिर झुका लिया। उनकी झुके सिर वाली आकृति लेप रनवे पर सरकती हुई आगे बढ़ी। स्पिनिंग डिपार्टमेण्ट से बाहर आकर वह मिल के कैण्टीन की तरफ मुड़ी। वहाँ अब भी पचास के दशक के धोती-कुरते और फेंटेवाले लिबास में कर्मचारियों की टोली चाय की प्याली हाथ में लिये बैठी थी। उनकी प्यालियों से हालाँकि अभी भी भाप उठ रही थी, लेकिन अब वे चुस्कियाँ लेने में असमर्थ थे। उनके पीछे एक जूक बाक्स था, जिसमें रिकार्ड बारी-बारी से गिर और घूम रहे थे। लेकिन अब किसी भी प्रकार की ध्वनि उत्पन्न नहीं हो रही थी। दस्तूरजी की आकृति ने इस बेआवाज़ गर्दिश को गौर से देखा और देखते ही देखते वह जूक बाक्स एक विशाल काले कौए में बदल गया। दस्तूरजी की आकृति तुरन्त सहमकर पीछे हट गयी।

कैण्टीन से बाहर निकलने के बाद भी काँव-काँव सुनाई देती रही। रास्ते में और भी ऐसे कई पुराने अवशेष थे। उस विशाल उद्यम की उघड़ी हुई लाश पर दस्तूरजी की आकृति तेजी से गुजरती रही। न उसने सर बेजनजी दादाभाई मेहता की कीचड़ के सूखे ढेर में पड़ी तस्वीर को उठाया, न धूप और झुलसती हुई धूप से लिथड़ी जमशेदजी की मूर्ति के सामने सिर झुकाया, न सोहराबजी बेजनजी मेहता की तस्वीर से हाथ मिलाया। वे

लगभग यही नजारा स्पिनिंग डिपार्टमेण्ट में भी था। फर्क सिर्फ इतना था कि वहाँ अब मशीनों के नोंचे हुए अवशेष बचे थे और अघाए हुए गिद्ध लोहे के एंगलों पर बैठे ऊँघ रहे थे।

चारों तरफ से झपटते कौओं के विध्वंसकारी कोलाहल से बचते हुए एक इमारत की तरफ बढ़े। इमारत के अंदर दाखिल होते ही उनकी आकृति ने दरवाजा बन्द कर दिया। और कुछ देर तक आँखें बन्द कर गहरी साँस लेती रही। कुछ देर बाद जब उखड़ी साँस सम पर आयी तब उनकी आकृति ने आँखें खोलीं और खुद को मिल के क्रेच में पाया। वहाँ रस्सियों से बँधे कई कतारबद्ध पालने थे। पालनों की दोहरी कतारों के बीच खड़ी उनकी आकृति उन बच्चों को देख रही थी, जो काम पर गयी अपनी माताओं के इन्तजार में रो रहे थे।

वहाँ बच्चों की देखभाल करती धाय माताएँ भी थीं, जो झूले की डोर हाथ में थामे कए साथ कई झूले झुलाती, झुनझुने बजाती और बच्चों के होंठों में जनम-घूँटी देती इधर से उधर आती दिखाई दीं। फिर पार्श्व से दोपहर के अवकाश की घण्टी सुनाई दी और बच्चों की असली अधीर चिन्तातुर माताएँ एक साथ हड़बोंग मचाती हुई अपने-अपने बच्चों को स्तनपान कराने की होड़ में शामिल हो गयीं। फिर गोद में बच्चों को दुलारते हाथों की थपकियाँ और अलग-अलग भाषाओं में गाई जा रही लोरियों की पंचमेल खिचड़ी का समूह गान सुनाई देता है।

एक बार फिर दृश्यों और आवाजों का जटिल हेर-फेर। माताओं के समूहगान के स्वर पर नीलामी की बोली ओव्हरलैप होती है और क्रेच में बच्चों और उनकी माताओं की जगह कम्पनी के अधिकारी और कबाड़ी दिखाई देते हैं।

पाँच हज़ार एक सौ एक पर जाने के बाद बोली ठहर गयी। कबाड़ियों की मिली-भगत और अधिकारी की भागीदारी ने आपस में एक अश्लील इशारा किया और सारा मामला बहुत सस्ते में निबट गया।

फिर एक के बाद एक टीक वुड से बने उन बेशकीमती पालनों को हटा दिया गया, जिन्हें रोते हुए बच्चों को चुप कराने और सुलाने का एक सौ सत्ताईस साल पुराना अनुभव था।

अब उस खाली, वीरान और भूतहे हॉल में अभी-अभी काटी गयी पुरानी, पुनीत, प्रतिज्ञाबद्ध और सहधर्मी रस्सियों और धूलकणों से भरी धूप की आड़ी-तिरछी शहतीरों के बीच दस्तूरजी की अकेली, पथरायी हुई आकृति दिखाई देती है। स्मृतियों और बिम्बों की लम्बी रील जब खत्म

होती है तो हम दस्तूरजी के वास्तविक शरीर को देखते हैं। वे कुर्सी से बँधे हैं और एकटक रतन टाटा की तस्वीर को देख रहे हैं। फिर कुछ देर बाद उनका धीमा और उदास स्वर सुनाई दिया– 'आ आपणा देश नी पेली मिल हती जेमा लेडीज वर्कर्स ना नल्हा पोरइयाओ माटे जमशेदजीऐ क्रेस बनवायबू हतू....आजे इबीनीलाम थई गपू....' (ये हमारे देश की पहली मिल थी, जिसमें लेडीज वर्कर्स के नन्हे बच्चों के लिए जमशेदजी ने क्रेच बनवाया था....। वह भी आज नीलाम हो गया।)

टेम्टन दस्तूर जो काफी देर से अपने पिता की मौन भंगिमा को निहार रहे थे, उनके इस संवाद से चौंक गये। उनके कान खड़े हो गये और वे अपने पिता की बात को ध्यान से सुनने के लिए थोड़ा आगे झुक गये।

'रतन ! आ मिल आपणी मदर कन्सर्न हती। आमा थ ज टाटा नो पूरो एम्पायर पेदा थयो छे। पण तें पोतानी गइल्ढ़ी माँने रेढ़ी मूकी दीघी...।' (रतन! यह मिल हमारी मदर कन्सर्न थी। इसीमें टाटा का पूरा एम्पायर पैदा हुआ है...पर तूने अपनी बूढ़ी माँ को लावारिस छोड़ दिया...।)

और फिर हमेशा चुप रहने वाले रोमिंगटन दस्तूर बोलते चले गये–'जमशेदजी टाटा साचा जरथोस्त्री हता तेओए आवो महान निरंगवर आ गुलाम देश नी कमनसीब प्रजा ने थाँमो देवा माटे कर्यो हतो। अने खास अँग्रेजों नी सामे पगभर चवा माटे भट्ठियो सडगायवीती। पण हाल नी पारसी ओलाद खरेज बदनसीब छे ते ओ पोताना आवा महान पुर्वजोना आ मुबारक इतिहास थी वाकिफ थवा माँगताज न थी...। हरिफाई त्यारे पण हती हजू छे पण हरिफाई करीने पोतानी भट्ठियो ना आतेश ने जीवतो राखवो एक जतून। सवाब छे अने मिल ने लिक्विडेशन माँ नाखी ने हाथ खेची लेवो अजाब छे।' (जमशेद जी टाटा सच्चे जरथोस्त्री थे। उन्होंने ये महान अनुशासन इस गुलाम देश की कमनसीब प्रजा को सहारा देने के लिए किया था और खास तौर से अँग्रेजों के सामने आत्मनिर्भर बनने के लिए ये भट्ठियाँ जलायी थीं। लेकिन हाल की पारसी औलाद सचमुच बदनसीब है। वे अपने ऐसे महान पूर्वजों के इस पवित्र इतिहास से वाक़िफ होना नहीं चाहती। प्रतिस्पर्धा तो तब भी थी और आज भी है, लेकिन प्रतिस्पर्धा करके अपनी भट्ठियों की अग्नि को जीवित रखना एक तरह का पुण्य है और मिल को लिक्वडेशन में डालकर हाथ खींच लेना एक अजाब है।) टेम्पटन दस्तूर हालाँकि बहुत ध्यान से सुन रहे थे। लेकिन इस मोनालॉग को समझने के लिए उन्हें फिर वैसी ही एकाग्रता की जरूरत महसूस हुई जो बचपन में फूल को खिलते हुए देखने में हुई थी। जैसे पंखुरियाँ एक-दूसरे से अलग होकर नया आकार ग्रहण करती हैं, ठीक वैसे ही कारणों की उलझी हुई गुत्थी जब खुलेगी तब एक नया और सम्पूर्ण अर्थ प्रकट होगा।

टेम्पटनजी के अन्दर फिर लहू की वह बूँद गर्दिश करने लगी। उनके शोध कार्य का आखिरी और निर्णायक अध्याय अब शुरू हो गया था। उनके पास कुछ भी जानने-समझने के लिए सिर्फ एक रात थी। यही अवसर था जब वे जान सकते थे कि विनाश के इस हुक्मनामे में कौन-कौन सी काली ताकतों के हस्ताक्षर हैं। और सत्यानाश के इस ढेर के नीचे क्या-क्या दबा पड़ा है। कुछ भी जानने के लिए यह आखिरी मौका था। क्योंकि कल उनके पिता को वापस ले जाया जाएगा और उन्हें बेरहम डॉक्टरों और बेसुध कर देने वाले इंजेक्शनों के हवाले कर दिया जाएगा।

जब वे अपने पिता की बातों में उलझे थे, उस वक्त घर का सारा साजो-सामान पैक किया जा रहा था। हर चीज बड़े इज्जतदार सलीके से और करीने से हॉल के किनारे-किनारे रखी जा चुकी थी। टेम्पटनजी का ध्यान हालाँकि पूरी तरह अपने पिता की बातों में था, लेकिन उन्हें यह प्रश्न भी बार-बार परेशान कर रहा था कि जिस घर को कल हमेशा के लिए छोड़ देना है, उस घर की आज इतनी शानदार और जबर्दस्त साफ-सफाई करने का क्या औचित्य है? हक्कू फई के स्वभाव के इस अबूझ रहस्य और अपने पिता की बातों की पेचीदगियों में वे उलझते चले गये और आखिर इतने थक गये कि उनकी आँखों के पोपटे भारी और लाल हो गये। फिर अपने आप नींद से बोझिल पलकें बन्द हो गयीं।

एक लम्बी झपकी के बाद जब उनकी नींद टूटी तब हल्का उजाला हो चुका था। बाहर चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई दे रही थी। वे कुछ देर आँखें मलते रहे फिर एक लम्बी जम्हाई लेते हुए गर्दन फेरी और अगले ही पल उनकी साँस जहाँ की तहाँ अटक गयी। कुर्सी से उनके पिता गायब थे। न सिर्फ वे बल्कि कुर्सी के जिन हत्थों से उनके हाथ को जकड़ा गया था, वे हत्थे भी गायब थे। यह एक असम्भव अचम्भा था। उन हत्थों को जड़ समेत उखाड़ने में जिस असीमित ताक़त की ज़रूरत थी, वह ताक़त उनके पिता की पतली-दुबली और जर्जर काया में कहाँ से आयी?

वे खड़े हो गये? कुछ देर तक उन्हें कुछ समझ में नहीं आया। फिर वे हड़बड़ी में शयन-कक्ष की तरफ बढ़े और वहाँ का दृश्य और भी हतप्रभ कर देने वाला था। हक्कू फई कमर तक निर्वस्त्र तकिये पर पीठ टिकाये लेटी थीं और उनके दोनों मेमने अपने हिस्से का एक-एक स्तन मुँह में लिये नींद में सोये थे। टेम्पटन दस्तूर के लिए यह दृश्य भी उतना ही औचक था। उन्होंने झट से दरवाजा बन्द कर दिया। कुछ देर तक वे सोचते रहे कि अभी-अभी जो कुछ उन्होंने देखा, वह नींद की खुमारी या दृश्यभ्रम तो नहीं है? कुछ देर बाद जब उन्हें यकीन हो गया कि उनके होशोहवास दुरुस्त हैं, उन्होंने दरवाजे की कड़ी को खटखटाना शुरू किया और दरवाजा खुलने तक लगातार खटखटाते रहे। गहरी नींद और थकान की खुमारी से उठी हक्कू फई गाउन के ऊपरी बटन बन्द करती हुई और चेहरे पर नासमझ भरी नाराजगी का भाव लिये जब उनके सामने आईं तो टेम्पटन जी ने बिना वक्त गँवाए एक ही साँस में वाकया बयान कर दिया।

हक्कू फई सुस्त कदमों से चलते हुए ड्राइंगरूम में आईं। उन्होंने उस कुर्सी को देखा जिसके हत्थे गायब थे। कुछ देर तक कमर पर दोनों हाथ टिकाये वे चुपचाप खड़ी रहीं। फिर बिना कोई प्रतिक्रिया व्यक्त किये वाश बेसिन की तरफ चली गईं। चेहरे पर पानी के छींटे मारने के बाद नेपकिन से मुँह पोंछते हुए उन्होंने टेम्पटन को आदेश दिया–'मारी साइकिल बारे काढ़।' (मेरी साहकिल बाहर निकाल।)

टेम्पटन दस्तूर कुछ देर तक नासमझी में खड़े रहे।

'सूँ कीघू में सँभडातू नथी?' (क्या कह रही हूँ मैं, सुनाई नहीं दिया?) अब हक्कू फई की आवाज

में सुबह की सुस्ती और खुमारी का नामोनिशान तक नहीं था।

टेम्पटन दस्तूर तुरन्त साइकिल की तरफ लपके और उसे बरामदे की सीढ़ियों से नीचे उतारकर आँगन में आ खड़े हुए। कुछ देर बाद हक्कू फई हाथ में छड़ी लिये और सिर पर केनवस का हैट लगाकर निकल आयीं। उनके गमबूटों की आवाज से बरामदा गूँज उठा। टेम्पटन दस्तूर ने जिन्दगी में पहली बार किसी औरत को गाउन के साथ गमबूट पहिने देखा था। उन्होंने दस्तूर के हाथों से साइकिल ली, अपनी टाँग उठाकर सीट पर काबिज हुईं और पैडल पर दायें पैर की पूरी ताक़त लगा दी। उनकी सत्तर साल पुरानी साइकिल बिना चूँ चर्र किये सधी हुई रफ्तार से उस रास्ते पर चल पड़ी, जिस रास्ते से टेम्पटन दस्तूर मिल के अन्दर दाखिल होने में कामयाब हुए थे।

हक्कू फई के जाने के बाद टेम्पटन दस्तूर ने एक-एक कर सबको नींद से जगाया। वे सब सुबह की ज़रूरी क्रियाएँ निबटाकर तैयार हुए और मिल की तरफ निकल पड़े। जब वे दीवार की छेद में अन्दर घुसकर मिल के अहाते में दाखिल हुए तो उन्हें दूर से हक्कू फई की आवाज सुनाई दी। वे ऊँची आवाज में चिल्ला-चिल्लाकर अपने भाई को पुकार रही थीं। कुछ देर बाद वे सब भी रोमिंगटन दस्तूर को खोजने के लिए अलग-अलग दिशाओं में बिखर गये। सुबह से शाम तक सब इधर-उधर भटकते रहे, लेकिन वे कहीं दिखाई नहीं दिये। हक्कू फई ने मिल नं. एक से लेकर मिल नं. पाँच तक के पूरे यार्ड छान मारे लेकिन कहीं कोई सुराग न मिला। उनके साथ जवाई भी पूरे जोशोखरोश से उस अभियान में जुटा हुआ था। लेकिन उसे भी कहीं कोई सफलता नहीं मिली। आखिर सब थक-हारकर वापस लौट आए।

रात में भोजन के समय सब चुपचाप बैठे रहे। सिर्फ़ एक बार जी.एफ़ मुकादम ने यह सलाह दी कि एफ.आई.आर. दर्ज करवा दी जाए, मगर हक्कू फई ने 'न' में सिर हिलाकर इस सलाह को खारिज कर दिया।

दूसरे दिन भी वे बिना किसी पूर्व योजना के पागलों की तरह झुलसाती हुई धूप और धूल में इधर-उधर भटकते रहे और फिर शाम को हताश होकर वापस लौट आये।

तीसरे दिन सुबह होते ही हक्कू फई ने शम्भू को उठाया। उसे बेलचा और फावड़ा साथ रखने की हिदायत दी और सीधे मिल की भट्ठी के पास जा पहुँची। भट्ठी अब पूरी तरह बुझ चुकी थी। उसमें मिल बन्द होने से पहले की टनों राख और मिल बन्द होने के बाद आग जलाये रखने की जिद में डाले गये रबर के टुकड़ों और कैनवस के दस्तानों के असंख्य अधजले टुकड़े भरे पड़े थे।

थोड़ी देर तक उस कचरे और राख को कुरेदने के बाद हक्कू फई को एक चीज़ दिखाई दी, जिसे देखते ही उनकी आँखें सदमें से फटी रह गईं। वह चीज रोमिंगटन दस्तूर की कुश्ती थी और यह एक ऐसी चीज थी, जिसे कोई भी पारसी आजीवन अपनी कमरे से बाँधे रखता था।

तो क्या रोमिंगटन दस्तूर ने....? और आगे हक्कू फई कुछ नहीं सोच पायीं। ऊन से बनी हुई उस डोर को हाथों में लिये वे स्तम्भित सी खड़ी रहीं। लेकिन कुछ ही देर में वे फिर सजग हो गयीं। उन्होंने शम्भू को आदेश दिया कि वह राख के उस ढेर को हटा दे। लेकिन भट्ठी इतनी बड़ी थी कि दस आदमी भी दिन भर में उसे खाली कर सकने के लिये अपर्याप्त थे। फिर एक के बाद एक सब भट्ठी में उतरने लगे। ऊषा बाई कहीं से एक तसला उठा लायी और मुकादम बन्धु बारी-बारी से बेलचा लाते हुए राख गड्ढे के बाहर उलीचने लगे। हक्कू फई चुपचाप खड़ी रहीं। टेम्पटन दस्तूर उड़ती हुई राख और धूल के बीच बेचैनी से इधर-उधर चक्कर काटते रहे और जवाई ज़ोर-ज़ोर से भौंकते हुए चिमनी के चारों ओर गोल-गोल चक्कर काटता रहा। कभी-कभी वह चिमनी के अन्दर भी घुस जाता और बड़ी विचित्र आवाज़ में भौंकने लगता, लेकिन किसी ने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया।

सुबह से शाम हो गयी, लेकिन राख और कालिख से लिथड़े उन भूतों को आखिर तक यह समझ में नहीं आया कि गड्ढा क्यों खुदवाया जा रहा है। आखिर जब वे भट्ठी की तह तक पहुँच गये और फावड़े बेलचे ने फायर ब्रिक्स से टकराकर आगे चलने से इनकार कर दिया तो सब गड्ढे से बाहर आ गये। अब वे हक्कू फई के चेहरे को देख रहे थे और हक्कू फई किसी को नहीं देख रही थीं। इतनी खामोशी और इतनी गहन निराशा उनके चेहरे पर पहले कभी नहीं देखी गयी थी। उनके शागिर्दों ने एक-एक कर अपने औज़ार डाल दिये। यहाँ तक कि जवाई ने भी अपनी दुम नीचे लटका दी। और सब चुपचाप गर्दन झुकाकर खड़े हो गए।

उस पराजित और हताश वापसी के बाद हक्कू फई ने कभी किसी से कोई बात नहीं की।

उन सबके वापस मुम्बई लौटने के बाद मिल के भग्नावशेषों के बीच खड़ी उस अकेली और उदास चिमनी के ऊपर कुछ दिनों तक कौवे मँडराते रहे। फिर सब कुछ शान्त हो गया।

दस्तूर हाउस में पुरखों की तस्वीरों की लाइन में रोमिंगटन दस्तूर की तस्वीर भी शामिल हो गई है। टेम्पटन दस्तूर उस तस्वीर के सामने एक मेज़ पर बैठे घण्टों कुछ न कुछ सोचते रहते हैं। लेकिन अब वे फूल के बारे में या अपने पिता के बारे में या अपने समुदाय के बारे में नहीं, इम्प्रेस मिल की खाली करवाई गयी ज़मीन और उस ज़मीन पर बनने वाली इम्प्रेस सिटी और इम्प्रेस मॉल के बारे में सोचते हैं, जिसके शेयर अभी-अभी बाज़ार में इश्यू किये गये हैं। वे शेयर मार्केट की उन गणनाओं को भी गौर से देख रहे हैं, जिसके अंक इन दिनों लगातार ऊँचाई की तरफ बढ़ते जा रहे हैं।

और एक दिन तेज़ रफ्तार से बढ़ते हुए सूचकांक ने दस हज़ार का आँकड़ा पार कर दिया। ठीक उसी दिन उसी समय इम्प्रेस मिल की आख़िरी निशानी को गिरा दिया गया और एक सौ सत्ताईस साल पुरानी सौ मीटर ऊँची और पन्द्रह मीटर चौड़ी उस ऐतिहासिक चिमनी के मलबे को टाटा हिताची कम्पनी के डिस्चार्ज लोडर ने सिर्फ़ पाँच घण्टे में हटा दिया।

उस वक्त पूरा देश स्टॉक एक्सचेंज की बिल्डिंग और सचिन तेन्दुलकर द्वारा बनाये जा रहे विश्व कीर्तिमान को देख रहा था। इसलिए किसी को भी दिखाई नहीं दिया कि चिमनी के उस मलबे में ईंट और चूने के पलस्तर के साथ मानव शरीर का एक कंकाल भी था। उसकी गर्दन की एक हड्डी लोहे के एक मोटे तार के फन्दे में फँसी हुई थी और हाथ की हड्डियाँ कुर्सी के हत्थों के साथ ज़ंजीर से जकड़ी हुई थीं।

❐

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
आलेख

कहानियाँ स्वयं के लिए किसी खास नामकरण की प्रतीक्षा कर रहीं हैं

वैभव सिंह

हिंदी का यह नया कथा-युग है जो पिछले एक दशक से ज़्यादा समय से अपनी विविधतापूर्ण प्रवृत्तियों का निरंतर निर्माण करने और उनकी समीक्षा करने के श्रम से गुज़र रहा है। उसका कोई ठीक-ठिकाने का नामकरण नहीं हुआ है और कह सकते हैं कि यह युग फिलहाल गुमनाम नहीं बल्कि बेनाम रहा है। कहने को इसे 'साहित्य का युवापक्ष' नाम देकर काम चलाया जा सकता है क्योंकि इसी कालावधि में राजनीति और मीडिया में भी युवा शब्द का प्रचुर इस्तेमाल हुआ है। युवापन की छाया हर कहीं देखी और दिखाई जा रही है। पर अभी तक युग का नामकरण का संस्कार ही न हो सका और लोगों ने इसके नाम-निर्धारण के लिए खास चिंता भी नहीं की, इसका एक कारण यह भी है कि केवल किसी एक विधा के आधार पर किसी कालखंड का साहित्यिक नामकरण करना थोड़ा जटिल काम बन जाता है। कहानी अपने लिए स्वतंत्र नामकरण की माँग करे तो दूसरी विधाओं को थोड़ी ईर्ष्या होगी और वे कुछ बाधाओं का निर्माण करेंगी। नामकरण करना देश का निर्माण जैसा होता है जिसमें विभिन्न विधाओं की नागरिकता का आधार तय होता है। इसलिए विभिन्न विधाएँ जब केवल सह-अस्तित्व नहीं बल्कि एक-दूसरे के लिए प्रेरक अस्तित्व का कार्य करती हैं, तब जो 'कोलाज' निर्मित होता है, उससे साहित्य की अधिक मुकम्मल तस्वीर भी उभरती है। वर्तमान में ही नहीं बल्कि पिछले कई दशकों में लेखक अधिक विधाबद्ध हो गया है और अपनी चुनी हुई विधा के भीतर ही साहित्य की सारी प्राथमिकताएँ तथा बहसों का स्वरूप तय होते देखना चाहता है। इसने भी साहित्य को किसी प्रवृत्ति-विशेष के पारिभाषिक दायरों के भीतर रखकर उसे समझने में कठिनाई पैदा की है। इसके अलावा सच तो यह भी है कि हिंदी कहानी अपनी कथावस्तु के स्तर पर आश्चर्यजनक ढंग से बहुस्तरीयता का परिचय देती है। कहानियों के विभिन्न संप्रदाय जैसे कि दलित कहानी, स्त्री कहानी, मध्यवर्गीय कहानी, ग्राम कथा, पर्यावरण कथा विकसित हो गए और हर संप्रदाय के भिन्न-भिन्न आलोचक लोग जब शिकायत करते हैं कि वर्तमान कहानी को अभी सही आलोचक नहीं मिले हैं तो इस समस्या का कारण भी यही है कि कहानियों की विविधता बहुत है और हर संप्रदाय के अपने-अपने आलोचक बँट गए हैं। इसलिए दलित और स्त्री विमर्श के आधार पर तो कहानियाँ पहचानी गईं पर इन विमर्शों से बाहर की कहानियाँ स्वयं के लिए किसी खास नामकरण की प्रतीक्षा कर रहीं।

आधुनिक युग में हिंदी में विभिन्न साहित्यिक कालखंडों का जिस तरह से नाम निर्धारित हुआ है, उसमें किसी एक विधा की वर्चस्वशाली भूमिका रही हो, ऐसा कम ही हुआ। हिंदी में आधुनिकता के उदय के साथ ही विभिन्न विधाओं का भी विकास हुआ और विभिन्न विधाओं की समानांतर उपस्थिति ने किसी युग को समझने, उसकी मौलिक पहचान को स्थापित करने में योगदान दिया है। जैसे कि भारतेंदु युग में गद्य की शक्ति काफी थी, तो काव्य तथा नाटक ने भी युग की चिंताओं को व्यक्त किया। महावीर प्रसाद दिवेदी के समय में कविता और गद्य, दोनों ने साथ-साथ महत्त्व प्राप्त किया। छायावाद में तो यकीनन कविता ही केंद्रीय भूमिका में थी, पर उसी समय प्रेमचंद ने छायावादी प्रवृत्तियों से मुक्त रहकर महान गद्य सजन का कार्य किया। स्वयं छायावादी कवियों ने जैसे कि जयशंकर प्रसाद ने उत्कृष्ट नाटक तथा कहानियाँ लिखीं तो निराला ने भी उपन्यास व कहानियाँ रचकर युग की साहित्यिक आभा का विस्तार किया। बाद में प्रयोगवाद तथा प्रगतिवाद ने भी कविता को ही केंद्र बनाया, पर स्वयं कवियों-कथाकारों ने उपन्यास-कहानी में भी वैसी ही प्रतिभा का परिचय दिया। परवर्ती युगों के बारे में जैसे नई कविता या नई कहानी के बारे में हम सुपरिचित हैं कि उसमें रचनाकारों ने विधाओं के शक्तिवर्धन के लिए कहीं अलग-अलग तो कहीं समवेत प्रयास किए। अतएव हमारे आगे वर्तमान युग को विधाओं की विविधता के हिसाब से किंचित दरिद्र युग के रूप में भी

वैभव सिंह

जन्म: उन्नाव (उप्र)

जेएनयू, नई दिल्ली से पीएचडी। तीन पुस्तकें प्रकाशित- इतिहास और राष्ट्रवाद, भारतीय उपन्यास और आधुनिकता, शताब्दी का प्रतिपक्ष। टेरी ईगलटन की 'मार्क्सिज़्म एंड लिटरेरी क्रिटिसिज़्म' का हिन्दी में अनुवाद। आलोचना और अनुवाद में विशेष सक्रियता। कुछ वर्ष पत्रकारिता के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय के कालेज में अध्यापन।

सम्मान: आलोचना के लिए स्पंदन सम्मान

संपर्क

फोन- 9711312374

email

vaibhavjnu@gmail.com

हिन्दी साहित्य में जहाँ एक ओर कहानी में नई पीढ़ी सामने आई है तो वहीं आलोचना के क्षेत्र में भी युवा पीढ़ी का हस्तक्षेप अब दिखाई देने लगा है। युवा आलोचक वैभव सिंह का नाम उसी क्रम में सामने आता है। पिछले कुछ समय में वैभव सिंह ने आलोचना के क्षेत्र में अपने आलेखों तथा वक्तव्यों से अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। उन्होंने नई सदी में सामने आई कहानी की नई पीढ़ी के लेखन पर गहरी नज़र रखी है तथा समय समय पर अपने आलोचनात्मक लेखों से उस पीढ़ी को सचेत किया है। हिन्दी चेतना के विशेषांक के लिए उन्होंने विशेष रूप से ये विस्तृत तथा महत्त्वपूर्ण आलेख लिखा जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

देखने की मजबूरी है। विचार की तो हमारे पास आज भी कमी नहीं है पर उस विचार को कलात्मक रूपों में ढालकर हिंदी की विधाओं को सँजोने का कार्य करने के प्रति हम पहले से कम गंभीर हुए हैं। विचार की केंद्रीयता ने कला को गौण बनाने की हठ पाल ली और उस हठ के कारण भी बहुत सारा विचार असंप्रेषणीय हो उठा या फिर उसका इतना स्थूल संप्रेषण होने लगा कि विचार की प्रभाव-शक्ति ही क्षण पड़ गई।

इन समस्याओं को ठीक तरह से संदर्भित करते हुए ही हम वर्तमान कहानी पर किसी तर्कसंगत ढंग से बात कर सकते हैं। कुल मिलाकर देखें तो कालखंड यानी साल २००० से लेकर वर्तमान २०१३ का युग जिसने कथा साहित्य को ढेरों नई कहानियाँ प्रदान की है। कुछ प्रतिभाशाली-ऊर्जावान रचनाकार इन्हीं वर्षों की देन हैं और कहानियों से ज़्यादा कहानियों के बारे में उनके दावों में सुखद एकरूपता दिखती है। जैसे कि उन्होंने उचित ही यह दावा किया है कि वे अपने समय को अलग ढंग से देखने और व्यक्त करने में सक्षम हैं। उन्होंने हिंदी कहानी के अंतरग और बहिरंग बदलावों के बारे में सजग होने की बातें बार-बार दोहराई हैं और साथ ही भूमंडलीकरण के प्रभावों से बदलती दुनिया का सबसे संवेदनशील प्रवक्ता होने का विशिष्ट दावा करने में भी संकोच नहीं बरता है। अक्सर ही भूमंडीलकरण के बाद की दुनिया के सारे लक्षणों को अपनी कथाओं में प्रतिबिंबित कर चुकने का गहरा संतोष भी उसमें दिख जाता है। उसने समय के अंतर्द्वद्व को पकड़ने की अपनी चेष्टा को सहानुभूतिपूर्वक नोटिस में लिए जाने की अपीलें जारी की हैं। युवा कहानी को अलग पहचान दिलाने के लिए विशेष सक्रियता बरतने का आह्वान किया जाना उसे रचनाकर्म के लिए ज़रूरी दायित्व लगता रहा है। अपने सामाजिक सरोकारों के बारे में किसी तरह का संदेह जताए जाने का उसने विरोध किया है और वैचारिक रूप से पहले की पीढ़ी से कमतर दिखने या दिखाए जाने का उग्र खंडन करती रही है। स्थानीय चेतना और वैश्विक चेतना, दोनों के आंतरिक संबंध और पारस्परिक तनाव को उभारने के मामले में मिली सफलता से वह कुछ सीमा तक निश्चिंत है।

कह सकते हैं कि जब भी कोई नई पीढ़ी साहित्य में आती है तो अपने लिए मूल्यांकन की माँग करती है। इस दौर में सबसे बड़ी चीज़ यह उभरी है कि समाज में तेज़ी से मूल्य टूटे, बदले हैं। जीवन के कई तरीके अकस्मात पुराने ही नहीं घोषित हो गए हैं बल्कि उन्हें रिटायर करने की मनोवृत्ति बढ़ी है। इसी कालावधि में सांप्रदायिकता की पुरानी समस्या ने भारतीय सामाजिक परिवेश में क्षरित होने के स्थान पर अपनी सर्वग्रासी पकड़ को मज़बूत भी कर लिया और समकालीन हिंदी कहानी इससे अप्रभावित न रह सकी।

इस दौर की कुछ बेहतर कहानियाँ सांप्रदायिकता की समस्या को ही केंद्र में रखती हैं। इनमें तीन कहानियों की चर्चा खासतौर पर की जा सकती हैं जिनके नाम हैं मोहम्मद आरिफ की 'तार', वंदना राग की 'यूटोपिया' और अल्पना मिश्र की 'महबूब

कुल मिलाकर देखें तो कालखंड यानी साल २००० से लेकर वर्तमान २०१३ का युग जिसने कथा साहित्य को ढेरों नई कहानियाँ प्रदान की है। कुछ प्रतिभाशाली-ऊर्जावान रचनाकार इन्हीं वर्षों की देन हैं और कहानियों से ज़्यादा कहानियों के बारे में उनके दावों में सुखद एकरूपता दिखती है। जैसे कि उन्होंने उचित ही यह दावा किया है कि वे अपने समय को अलग ढंग से देखने और व्यक्त करने में सक्षम हैं। उन्होंने हिंदी कहानी के अंतरग और बहिरंग बदलावों के बारे में सजग होने की बातें बार-बार दोहराई हैं और साथ ही भूमंडलीकरण के प्रभावों से बदलती दुनिया का सबसे संवेदनशील प्रवक्ता होने का विशिष्ट दावा करने में भी संकोच नहीं बरता है।

ज़माना और ज़माने के वे।'

'तार' कहानी अपनी आकर्षक किस्सागोई के साथ-साथ भारत की मिली-जुली तहज़ीब नष्ट करने वाली शक्तियों को बेनकाब करने के कारण काफी चर्चित हुई। कहानी रहमान नामक खुशबूदार तेल बेचने वाले व्यक्ति के पूर्वजों से आरंभ होती है। उन्हीं पूर्वजों में से एक ने १८५७ के गदर के समय अपने ही मौलवी साहब की इकलौती साहबज़ादी रोकैया बानो को भगाकर उसके साथ निकाह किया और बाद में एक कारोबारी किस्म का पुजारी की बेटी से भी शादी की। इस तरह से उनके परिवार में साझी संस्कृति ही निर्मित हुई। इसी पूर्वज के वारिस रहमान मोरछाप खुशबूदार तेल का व्यवसाय करते रहे। उनके तेल की चिब्बियों पर यह भी लिखा रहता था कि तेल लाहौर सप्लाई होता है और इसी आधार पर उनपर आरोप लगा कि तेल पाकिस्तान तो जाता है पर वहाँ से शीशियों में खतरनाक लिक्विड भरकर लाया जाता है। पर बाद में घाटा होने पर उन्होंने सोचा कि लाटरी की दुकान खोल लें। यहीं पर उनकी बदकिस्मती की शुरुआत हो गई। उन्होंने भारतमाता लाटरी सेंटर जैसा नाम रखने के बजाय दुकान का नाम रख दिया अल-फायदा लाटरी सेंटर और उनके घर पर पुलिस आ धमकी। पुलिस ने उन्हें बोर्ड हटाने के लिए कहा पर वे माने नहीं और पुलिस उन्हें गिरफ्तार करके चलती बनी। इस तरह से कहानी बड़े धीरज के साथ कथानक को विकसित करते हुए दर्शाती है कि किस तरह अतीत में तो हिंदू और मुस्लिम शादी-ब्याह तथा कारोबार के स्तर पर निकट थे, पर अब हालात बदल रहे हैं। इसी तरह आरिफ की ही बाबरी मस्जिद के ध्वंस पर लिखी एक अन्य कथा 'चोर सिपाही' भी मार्मिक व्यंजनाओं से पूरे घटनाक्रम को हमारे सामने साकार करती है। आतंकवाद के नाम पर अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न आज के संवेदनशील कथाकारों को छूता है और वे इस पर कथा-रचना करते हैं, ये स्वयं में हिंदी कथाजगत को विश्वसनीय बनाने वाला परिदृश्य है। हिंदी की कथाएँ सांप्रदायिकता, दंगों, आतंकवाद या धार्मिक हिंसा के खिलाफ जितनी दृढ़ता से खड़ी नज़र आएँगी, उतना ही उनकी सामाजिक जीवन में प्रासंगिकता भी बनी रहेगी।

सांप्रदायिकता पर एक यादगार कहानी वंदना राग की 'यूटोपिया' भी है जो माहौल के धीरे-धीरे

विषाक्त होने, लोगों के व्यवहार में क्रूरता बढ़ने और परिवार-पड़ोस के पारंपरिक नातों की जगह धार्मिक संबंधों पर ज़ोर बढ़ने की विडंबना को उजागर करती है। खतरनाक बात यह भी हुई है कि युवा वर्ग को सांप्रदायिक अपराधों की ओर खींचा जा रहा है और सांप्रदायिकता के घेरे में लाने के लिए उन्हें नशे, पैसे, व्यभिचार और संरक्षण का प्रलोभन दिया जा रहा है। सांप्रदायिकता ने किशोरों की मनुष्यता को विकसित होने के रास्ते में बाधा खड़ी कर रखी है और वे युवा होते-होते किसी खास संगठन या समिति के सदस्य बनकर नफ़रत के राजनीतिक नेटवर्क का पुर्जा बन जाते हैं। किसी सैन्यवादी रणनीति से धार्मिक संगठन अल्पसंख्यकों के जीविका तथा सम्मान से प्रतिशोध लेने की योजनाएँ बनाते दिख जाते हैं। यूटोपिया में एक मुस्लिम विधवा की जीवन की विडंबना है जो बड़ी मुश्किल से अपनी छोटी बेटी रज्जो और तीन बेरोज़गार बेटों को पालती है। सबसे पहले तो उसे मुसलमानों के व्यवहार में आते परिवर्तनों का सामना करना पड़ता है जहाँ उसे साड़ी छोड़कर सूट पहनने की हिदायत दी जाती है। इसलिए नमाज़ पढ़ते वक्त मुस्लिम औरतों ने साड़ी की जगह सलवार कमीज़ पहनना शुरू कर दिया है। बाज़ार में मौलवी साहब मिलते हैं तो अफसोस जताते हैं कि जवान लड़कों ने मस्जिद में रोज़ाना आना बंद कर दिया है और केवल जुमे पर आते हैं। इसीलिए रज्जो की बेवा अम्मी सोचती है- 'उनके बचपन के ज़माने से शहर कितना बदल गया था, आज के ज़माने का शहर। उनके ज़माने से तो कहीं ज़्यादा बदल रहे थे मुसलमान। पढ़ना-लिखना, नौकरी सब में इज़ाफा हो गया था, लेकिन साथ ही साथ एक न समझ में आने वाली सख्ती भी मुसलमानों के अंदर ही पकती जा रही थी। उस पकने की तासीर का असर इधर-उधर हर जगह होने लगा था। मुसलमानों की भीतरपने से बाहर हिंदुओं के भीतरपने में भी।' इन्हीं बदलावों के बीच 'बच के रहना' ही ज़िंदगी का फलसफा बनने लगा। उधर, जवान होते पड़ोस के अच्युतानंद गोसाईं जैसे हिंदू लड़के दुर्गा उत्सव आदि में चंदे उगाही में लग गए हैं और स्थानीय पार्षदों के गिरोह के सदस्य भी। उन्हें वीडियों रिकार्डिंग्स दिखा-दिखाकर साबित किया जा रहा था कि हिंदुओं को डरपोक और कायर माना जाता है और अब मुसलमानों को हर हाल में संदेश देना है कि इस देश में रहना है तो यहाँ के बन के रहें। युवाओं के सांप्रदायिकीकरण के बाद वे अपने पड़ोस में ही दुश्मनों की खोज करने लगते हैं और हिंसा को किसी धार्मिक उद्देश्य की तरह स्वीकार करते चले जाते हैं। यही लड़के बाद में पड़ोसी की उस लड़की रज्जो से बलात्कार करते हैं जिनके साथ बचपन में कभी खेले-कूदे होते हैं और जिनके लिए उनके हृदय में कभी स्वाभाविक कोमल भाव रहे होते हैं।

अपने प्रभाव में यह कहानी इसलिए भी सफल है क्योंकि कथा को बेहतरीन शिल्प में विन्यासित करती है और शिल्प को कथा की अभिव्यक्ति के लिए न तो अनावश्यक रूप से प्रयोगधर्मी बनाती है और न अकारण ही शिल्प की ज़रूरत की उपेक्षा करती है। कहानी की शक्ति सूक्ष्म निरीक्षणों में छिपी होती है और स्थितियों के सही तथा सटीक निरीक्षण को क्रम से पिरोने से ही कथा का बुनियादी ढाँचा विकसित होता है। छोटे-मामूली प्रसंगों की आवश्यकतानुसार रचना करना और उसे कहानी के मूल कथाक्रम में इस तरह से समाहित करना कि वे अलग पैबंद जैसे प्रतीत न हों, उसी से कहानी की प्रभावशक्ति में वृद्धि होती है। कहानी के अंत को लेकर प्रायः रचनाकार काफी सजग होते हैं और वे मानते हैं कि आरंभिक धीमी लय पर उठ रही कहानी अंत तक आते-आते किसी तीव्र नाटकीय असर के साथ समाप्त होनी चाहिए। कई बार तो कहानियाँ ऐसे लिख भी दी जाती हैं कि आख़िरी पेज पलटकर उनका अंत पढ़े लें तो भी पर्याप्त होता है। पर कहानियों का रोचक या चौंका देने वाला अंत काफी नहीं, बल्कि कहानी की पूरी भीतरी संरचना में कहानी के मूल तत्व छिपे होते हैं। अच्छी कहानियाँ किसी सस्ती बाज़ारू फिल्म की शैली से भिन्न होती हैं जिसमें अंतिम दृश्य से तय होता है कि दर्शक सिनेमाहाल से किस मनःस्थिति के साथ बाहर आएगा। वंदना राग की यह कहानी भी अपने शीर्षक की असंगति के बावजूद सूक्ष्म निरीक्षणों, संतुलित नाटकीयता और यथार्थवादी अंतःदृष्टि की कसौटी पर खरी उतरती है और निश्चय ही हिंदी के वर्तमान कथा साहित्य में याद रखने योग्य कहानी है।

सांप्रदायिकता और आतंकवाद के विषय पर अल्पना मिश्र की कहानी 'महबूब ज़माना और ज़माने में वे' का भी स्मरण किया जा सकता है। इसमें भिन्न धर्मों के दो पक्के दोस्तों को मुस्लिम आतंकवाद की समाप्ति के नाम पर पुलिस द्वारा उत्पीड़ित किए जाने और उनके ऊपर आतंकवादी होने का बिल्ला लगाने की मर्मस्पर्शी कथा उभरती है। सांप्रदायिकता और आतंकवादी विरोधी अभियान प्रायः समाज के अशक्त और कमज़ोर वर्गों के साथ हिंसा कर अपना विस्तार करने में यकीन रखते हैं। उन्हें आत्मरक्षा के अवसर नहीं दिए जाते और स्टेट तथा पुलिस मशीनरी पहले उनकी हत्या करती है, फिर टीवी में उनकी लाशों की फ़ोटो दिखाकर साबित कर दिया जाता है कि पुलिस को आतंकवादियों को मार गिराने में कितनी बड़ी सफलता मिली है। यानी भारतीय राज्य, जिसका काम अपनी कार्यप्रणाली में धर्मनिरपेक्षता का पालन करना है, वह भी आतंकवाद के सफाए के समय सांप्रदायिक संगठनों की तरह सोचने लगता है। कहानी में निम्नवर्ग के दो मित्र है रामसू और रहमत। एक हिंदू और एक मुसलमान। रामसू का पूरा नाम पहले राम सुयश था। बाज़ार में वे हर माल दस रुपये के हिसाब से छोटा-मोटा सामान जैसे कंघी, हेयरपिन, रबरबैंड, छोटे पर्स और मोमबत्ती स्टैंड बेचते हैं और उनकी मित्रता ऐसी है कि दूसरे दुकानदारों की सलाह और एक जैसा सामान होने का कारण नुकसान होने पर भी अगल-बगल दुकान लगाते हैं। वे ठेला लगाने की भी सोचते हैं और वह भी साथ-साथ। शहर में बम धमाका होता है तो पक्ष-विपक्ष के सारे नेता गरजने लगते हैं और पुलिस चारों ओर छा जाती है। एक रात जब दुनिया के सबसे असमर्थ और बेसहारा लोगों में से एक रहसू और रहमत जब भारी बारिश में टीन के एक शेड के नीचे किसी तरह रात काट रहे होते हैं, ठीक उसी समय पुलिसबल आता है और चिल्लाते हैं- साले सब यहीं छिपे बैठे हैं। उन्हें भी घसीटकर जीप में लाद लिया जाता है और सुबह के अखबारों में खबर आती है- दो खूंखार आतंकवादी पुलिस के हत्थे चढ़े। उनके नाम भी बदलकर हो जाते हैं गफ्फार और वसीम। कहानी ठीक इस सच को

दिखाती है कि लोग गायब हो जाते हैं, मारे जाते हैं और निरपराधी लोग अपराधी घोषित होते चले जाते हैं। पर दुनिया उसी तरह से चलती रहती है क्योंकि राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर निरपराधी मनुष्यों की बलि लिए जाने का विरोध करना भी राष्ट्रद्रोह की श्रेणी में डाल दिया गया है।

नीलाक्षी सिंह की कहानी 'परिंदे के इंतज़ार सा कुछ' भी बाबरी मस्जिद के ध्वंस और अपनी धर्मगत-संप्रदायगत संकीर्णता पर लोगों के बढ़ते भरोसे को एक मुस्लिम लड़की नसरीन की मन:स्थिति के माध्यम से व्यक्त करने में सफलता प्राप्त करती है। वातावरण में बढ़ती हिंसा ने कोमल भावनाओं को भी ज़हरीला बनाना आरंभ कर दिया है। वह एक हिंदू लड़के को पसंद करती है और यूनिवर्सिटी के दोस्तों में भी उसके ढेरो हिंदू मित्र हैं। पर जब १९९२ में बाबरी मस्जिद को कारसेवक ढहा देते हैं, तब सबकुछ बदलने लग जाता है। नसरीन की अम्मी ही उसे समझाने लगती है- 'देख नसर तू जिन दोस्तों से घिरी है ना, वे भोले हैं अभी बच्चे हैं। कुछ समझते नहीं। कुछ देखा नहीं। लेकिन जिस रोज़ मज़हब की आग ज़ोर पकड़ेगी, सारा नक्शा ही बदल जाएगा। तू उनके लिए मंदिर को तोड़कर उस जगह अपने खुदा को रख देने वाली कोई काफिर बन जाएगी। उधर अयोध्या में कोई पंडा एक पत्थर, किसी मुसलमान पर उठाएगा, इधर तू पत्थरों से लाद दी जाएगी। मज़हब की बात आते ही इंसान वहशी बन जाता है।' कथानक में गति है जिसमें नसरीन के जीवन में कई आँधियाँ आकर गुज़र जाती हैं। कुल मिलाकर कथा कई उपकथाओं का, जो कई बार अनावश्यक ब्योरे में बदल जाती हैं, सहारा लेकर सांप्रदायिकता के कई अनछुए मनोगत और वस्तुगत पहलुओं को उजागर कर देती है।

इस तरह देखें तो १९९० के बाद के भारतीय समाज, जिसमें सांप्रदायिकता का तेज़ी से उभार हुआ है और उसने भूमंडलीकरण से पैदा हो रही समृद्धि के बीच अपने लिए नया स्थान बनाया है, की अभिव्यक्ति चुनौतीपूर्ण बन गई। केवल आधुनिकता या आधुनिकता बोध के प्रश्न महत्त्वपूर्ण नहीं रह गए बल्कि यह भी अनुभव किया गया कि सारी आधुनिकता के बावज़ूद धार्मिक कट्टरता तथा हिंसा की मध्यकालीन भावनाएँ निरंतर सिर उठाती रहती हैं। सजग रचनाकार वही सिद्ध होता है जो दावों से नहीं बल्कि सच्चाई से प्रभावित होता है। वह गुलाबी तस्वीरों के भीतर की कालिमा को देख सकता है। इसलिए रचनाकार की आँख ही देख सकती है कि आधुनिकता के भीतर ही मध्यकाल स्वयं को जीवित कर लेता है और आधुनिकता के दावों को निरर्थक बना देता है। वे सभी लोग, पाठक हों या आलोचक, इस बात को नोट किए बिना नहीं रह सकते हैं कि पिछले १०-१५ साल में कई हिंदी कहानियों ने सांप्रदायिकता की समस्या को शिद्दत से उठाया है और सांप्रदायिकता को सियासत और संस्कृति में दीर्घकालीन प्रोजेक्ट की तरह प्रयोग करने वाली शक्ति का उचित ही पर्दाफाश किया है।

❐

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
परिचर्चा

समकालीन हिन्दी कहानी : एक परिचर्चा

विवेक मिश्र

विवेक मिश्र

१५ अगस्त १९७० में उत्तर प्रदेश के झाँसी शहर में जन्म। विज्ञान में स्नातक, दन्त स्वास्थ विज्ञान में विशेष शिक्षा, पत्रकारिता एवं जनसंचार में स्नात्कोत्तर। एक कहानी संग्रह-'हनियाँ तथा अन्य कहानियाँ' प्रकाशित। लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ व कहानियाँ प्रकाशित। साठ से अधिक वृत्तचित्रों की संकल्पना एवं पटकथा लेखन। light through a labrynth शीर्षक से कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद राईटर्स वर्कशाप, कलकत्ता से तथा कहानिओं का बंगला अनुवाद डाना पब्लिकेशन, कलकत्ता से प्रकाशित।

संपर्क-
१२३-सी, पाकेट-सी, मयूर विहार फेज़-२, दिल्ली-९१
मोबाइल -९८१०८५३१२८
ईमेल vivek_space@yahoo.com

नई सदी में सामने आई हिन्दी कहानी पर सभी की नज़र है। आलोचक, सम्पादक, समीक्षक, लेखक सभी इस नये समय को अपनी अपनी तरह से देखते हैं। उन्हीं के नज़रिये से नई सदी की हिन्दी कहानी को देखने और समझने का एक प्रयास है ये परिचर्चा। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानीकार विवेक मिश्र ने हमारे अनुरोध पर हिन्दी चेतना के विशेषांक के लिए इस परिचर्चा के संयोजक बनने का दायित्व उठाया। हम उनके आभारी हैं।

यह हिन्दी कहानी के लिए नई उम्मीदों का समय है-विवेक मिश्र

यह एक संयोग ही था कि जब 'हिन्दी चेतना' के लिए' समकालीन हिन्दी कहानी के वर्तमान परिदृश्य' पर परिचर्चा करने हेतु मित्र पंकज सुबीर (जो इस अंक के अतिथि संपादक हैं) ने मुझसे कहा, ठीक उसी समय 'हंस' की प्रथम कहानी कार्यशाला के संचालन तथा 'हंस' के पाठकों से सीधे संवाद में शामिल होने के लिए राजेन्द्र यादव जी का भी आदेश हुआ। आदेश इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि जैसे पंकज सुबीर हमारे समकालीनों में अग्रणी कहानीकार हैं और हम मित्रों पर अपना अधिकार समझते हैं ठीक वैसे ही राजेन्द्र यादव जी भी हम युवा कहानीकारों पर एक स्नेहपूर्ण अधिकार रखते हैं। बस उनके अधिकार में फ़र्क इतना होता है कि उसमें प्यार के साथ थोड़ी धौंस मिली होती है सो थोड़ा प्रेम और थोड़ी धौंस-धमकी में मैंने इन दोनो कामों के लिए 'हाँ' कर दी पर इन दोनों कामों को करते हुए थोड़ी देर के लिए अपनी कहानी को रोककर, कहानी के वर्तमान प्रवाह को देखने-समझने का अवसर मिला।

सामन्यत: परिचर्चाओं में विषय तय होने के बाद एक प्रश्नावली बना ली जाती है और परिचर्चा में शामिल लोग उन प्रश्नों के उत्तर देते हैं पर मुझे लगा कि इससे कई बार सभी लगभग एक जैसी बातें कहते हैं और परिचर्चा में तथ्यों का दोहराव होता रहता है तथा प्रश्न-उत्तर की शैली में कई बार वे बातें नहीं कही जातीं जो एक लेखक, संपादक या आलोचक कहना चाहता है। बस यही सोचकर हिन्दी समकालीन कहानी पर एक खुली चर्चा के लिए इसमें शामिल सभी लोगों से खुलकर अपने विचार रखने का आग्रह किया गया।

वर्तमान हिन्दी कहानी पर बात करते हुए मेरे ज़ेहन में कथाक्रम का प्रेम कथा विशेषांक, लमही का 'हमारा कहानी समय', बहुवचन का 'कहानी का दूसरा समय', नया ज्ञानोदय का 'युवा कहानी विशेषांक' और हंस का 'सिर्फ़ कहानियाँ-सिर्फ़ महिलाएँ' तथा प्रेमचंद जयंती पर 'हंस' की ओर से पाठकों को दी गई विशेष भेंट 'देहरी दीप' और पाखी, कथादेश, परिकथा तथा बया आदि पत्रिकाओं में पिछले एक-दो सालों में छपी कुछ महत्त्वपूर्ण कहानियाँ थीं पर संजीव जी की बात ने इसमें एक नया आयाम जोड़ा उन्होंने कहा कि आज के कहानी समय को केवल युवा लेखन से ही रेखान्कित नहीं किया जा सकता क्योंकि आज एक साथ पाँच-पाँच पीढ़ियाँ लिख रही हैं। फिर राजेन्द्र जी की बात ने भी दिमाग़ में एक ख़लल पैदा किया कि रियलिटी का ट्रीटमेन्ट ही कहानी है पर आज यह कठिन हो गया है। आज सोशल और इलेक्ट्रानिक मीडिया की क्रान्ति के इस दौर में यथार्थ ख़ुद उठ खड़ा हुआ है। आज सूचनाएँ भर देने से, या उन्हें लफ़्फ़ाजियों से सजा देने से कहानियाँ नहीं बन सकतीं। आज सबको सब पता है। अभी तक जिनकी कहानियाँ लिखी जा रही थी, आज वे खुद अपनी कहानियाँ लिख रहे हैं, चाहे वह स्त्रियाँ हो, या दलित हों। सच है, आज हमारे कहानी समय में कहानी यथार्थ के ट्रीटमेन्ट से कहीं अधिक है। वह पठनीयता को साधते हुए, विषय की गहरी पड़ताल की मांग करती है। आज वह बेसिर-पैर के शिल्पगत प्रयोगों से आगे निकलकर, एक बार फिर अपने समय के सरोकारों से जुड़ती दिखाई दे रही है।

आज प्रकाशित पुस्तकों और पत्रिकाओं की संख्या और उनकी बिक्री इस बहुप्रचारित बात को झुठला चुकी है कि लोगों में पढ़ने की आदत कम हुई है बल्कि इस बदलते ट्रेन्ड ने यह साबित किया है कि लोग अन्य माध्यमों से ऊबकर फिर किताबों की ओर मुड़ रहे हैं। एक तरफ़ जहाँ शहरी भारतीय पाठक अंग्रेज़ी की ओर मुड़ा है वहीं गाँवों, कसबों और छोटे शहरों में हिन्दी का नया और बड़ा पाठक तैयार हुआ है जो अपने को टी वी, और मुम्बइया फिल्मों की मसालेदार कहानियों से ज़्यादा, आज की साहित्यिक कहानियों से आइडेन्टीफाइ करता है और शायद यही कारण है कि हमारे बीच के ज़्यादातर लेखक गाँव, कसबों और छोटे शहरों से

आते हैं। उन्हें लगता है कि इस शोर-शराबे और चकाचौंध के बीच कहीं वे अपनी बात बेवाकी से रख सकते है, तो वह कहानी है। वे इनमें अपना सुख-दुख, अपना सच, अपना विमर्श बिना किसी आर्थिक सफलता-असफलता के दबाव के रख सकते हैं। इनमें बयान किया सच बाज़ारू सौ करोड़ कमाने का दम्भ भरने वाली फिल्मों के सच से बिलकुल अलग खड़ा अपने समय को आईना दिखा रहा है। और बड़ी संख्या में लिखी जा रही इन कहानियों को पाठकों तक पहुँचाने का काम हमारे समय की साहित्यिक पत्रिकाएं कर रही हैं। पिछले पाँच सालों में हिन्दी पत्रिकाओं की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। इसलिए कहानी के इस समय की बात करते हुए कहानीकारों के साथ-साथ उन पत्रिकाओं और उनके संपादकों की बात करना भी ज़रूरी है। क्योंकि आज के समय की कहानी को आज के समय की नब्ज पकड़ने वाले, उसकी धड़कन समझने वाले संपादक और आलोचकों की बहुत ज़रूरत है।

आज जो पीढ़ी हिन्दी कहानी में सक्रिय है उसमें लगभग पच्चीस वर्ष की आयु वर्ग के युवाओं से लेकर पचास साल तक के समय के साथ परिपक्व होते लेखक हैं और खुशी की बात यह है कि इनमें महिलाओं की संख्या अच्छी खासी है और यह सूची सोनाली सिंह, ज्योति कुमारी, पंखुरी सिन्हा, प्रेमा झा, तबस्सुम निहाँ जैसे युवाओं से शुरू होकर अल्पना मिश्र, किरण सिंह, मनीषा कुलश्रेष्ठ, कविता, आकांक्षा पारे काशिव, इंदिरा दांगी, गीताश्री, जयश्री राय, विभा रानी, स्वाति तिवारी, शरद सिंह, उर्मिला शिरीष, सुमन सारस्वत, अल्का सिन्हा, रजनी गुप्त, मधु अरोरा, प्रज्ञा पाण्डेय के नामों के साथ लगातार समृद्ध होती चली चली जाती है। इसे देखकर हम कह सकते हैं कि इस समय को ठीक-ठीक समझने के लिए उन सभी कहानीकारों की कहानियों से गुज़रना होगा जिन्होंने पिछले दो दशकों में हिन्दी कहानी में प्रवेश किया।

इस समय को रेखान्कित करने में पुष्पपाल सिंह, राकेश बिहारी, राजेश राव जैसे आलोचकों की जो पुस्तकें कहानी को केन्द्र में रखकर लिखी गईं वे खासी महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा हमारे समय के महत्त्वपूर्ण आलोचक संजीव कुमार, सुशील सिद्धार्थ, वैभव सिंह, पंकज पराशर, प्रियम अंकित, पल्लव, दिनेश कुमार, अमिताभ राय, भरत प्रसाद, साधना अग्रवाल आदि के लेखों ने आज के समय की नई कहानियों को समझने में, उसकी प्रवृत्तियों को रेखान्कित करने में महत्त्वपूर्ण काम किया और यहाँ एक बात कहना ज़रूरी है कि इनकी आलोचना विश्वविद्यालयों के घिसे-पिटे आलोचना शास्त्र से मुक्त, अपने समय की बेवाक आलोचना रही। इसने वर्तमान कहानी समय में बहुत कुछ जोड़ा, तो पूरी निर्ममता से उसे पुराने अकादमिक ढ़ाचों से मुक्त भी किया। यह और बात है की इस पर पक्षपात के आरोप लगते रहे पर इन आरोपों का खतरा तो हर समय की आलोचना ने उठाया है, सो इसे भी उठाना ही था पर इन आलोचकों ने इस बात को झुठलाया कि आज हिन्दी कहानी में आलोचना अनुपस्थित है। मैं समझता हूँ कि इस बात को हमारे समय के कहानीकारों को भी ज़ोर से कहना चाहिए नहीं तो हम किन्हीं ऐसे शीर्षस्थ आलोचकों के प्रमाण पत्र का इन्तज़ार करते रह जायेंगे जिन्होंने बहुत पहले पढ़ना, लिखना, सुनना बन्द कर दिया है।

आज हिन्दी कहानी में ऐसे कई नाम हैं जिन्होंने हिन्दी कहानी को वहाँ से पकड़ा है जहाँ तक उसे संजीव, शिवमूर्ति, प्रियंवद, उदयप्रकाश, महेश कटारे, नरेन्द्र नागदेव, मैत्रेयी पुष्पा की पीढ़ी के कथाकार लेकर आए थे पर युवाओं ने इससे आगे का सफ़र अपने समय के बदलते यथार्थ बोध के साथ बिलकुल अपने तरीके से तय किया जबकि इनसे वरिष्ठ पीढ़ी के कथाकार आज भी लगातार अपनी तरह से कहानियाँ लिखकर सक्रिय बने हुए हैं। यहाँ यह कहने में गुरेज नहीं कि आज की पीढ़ी का जीवन संघर्ष पहले से सान्द्र और जटिल हुआ है फिर भी अधिकांश कहानीकार अपने निजी जीवन की भयावह सच्चाइयों से जुझते हुए भी लगातार रचनाशील हैं और अपनी अलग पहचान बनाने में लगातार सफल हो रहे हैं। इनमें पंकज मित्र, अनिल यादव, कैलाश बनवासी, रामजी यादव, विमलेश त्रिपाठी, अरविन्द कुमार सिंह, आशुतोश, ज्ञान प्रकाश विवेक, शशिभूषण द्विवेदी, कैलाश वानखेड़े, प्रदीप जिलावने, प्रभात रंजन, संजय कुंदन, अजय नावरिया, तरुण भटनागर, पंकज सुबीर, दुर्गेश सिंह, चंदन पाण्डेय, विमल चन्द्र पाण्डेय, प्रेम भारद्वाज, अनुज, गौरव सोलंकी आदि कुछ ऐसे नाम हैं जिनकी कहानियाँ आने वाले कई सालों तक याद की जाती रहेंगी। इन सभी ने अपनी तरह से शिल्प और कथ्य में कई तरह के जोखिम उठाए हैं। वहीं भारत से बाहर रहकर हिन्दी कहानी में सक्रियता रखने वाले लेखकों की संख्या भी कम नहीं है। इनमें सुषम बेदी, अर्चना पेन्युली, दिव्या माथुर, ज़किया जुबैरी, शैल अग्रवाल, सुधा ओम ढींगरा, कादम्बरी मेहरा, कृष्ण बिहारी, तेजेन्द्र शर्मा, अमरेन्द्र कुमार, सौमित्र सक्सेना आदि के नाम प्रमुख हैं।

यहाँ कहानियों के विषय और उनकी भीतरी बुनावट के बारे में मैं जानकर चर्चा नहीं कर रहा हूँ क्योंकि वह बातें आगे चर्चा में शामिल लोगों ने बहुत विस्तार से रक्खी हैं पर यहाँ इतना कहना ज़रूरी है कि यह समय हिन्दी कहानी के लिए भारत में ही नहीं पूरे विश्व के हिन्दी पटल पर एक उत्साह से भरा समय है। इससे बहुत उम्मीद की जा रही है और एक साथ इतने सारे कहानीकारों का हिन्दी कहानी में सक्रिय होना इस बात को और भी पुष्ट करता है।

❐

आज की कहानी में खलनायक ही नायक है- राजेन्द्र यादव

कहानी क्या है हमारे समय और समाज के यथार्थ का ट्रीटमेन्ट ही कहानी है। पुराने ज़माने में एक नायक होता था एक खलनायक, आज खलनायक ही नायक है उसी से कहानी बनती है। आज नारी आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हुई है, तो वह अपने विकल्प चुनने में भी स्वतन्त्र हुई है। शादी किसी से होती है, दोस्ती किसी और से हो जाती है। दरसल ज़िन्दगी में जो बाहर से आया है, जिसे खलनायक कहा जता था, वही नायक हो गया है। इससे आज की कहानी में खलनायक की धारणा

ख़त्म हो गई है।

दूसरा बदलाव जो आया है, वह है कि आज दलित और औरतें अपनी कहानियाँ ख़ुद लिख रहे हैं। जिससे वे ज़्यादा सीधी और सच्ची दिखाई देती हैं। स्त्रियाँ अपने चारों ओर बने सामाजिक, पारिवारिक दायरे तोड़ कर, या उससे बाहर निकलकर लिख रही हैं और इस कोशिश में वे बोल्ड भी हो रही हैं और बेशर्म भी। पर हरहाल में कहना होगा कि दलित और स्त्रियों के पास आज अपनी कहानियाँ हैं। वे आत्म कथाएँ और मुक्ति कथाएँ लिख रहे हैं और उसी से आज का कहानी समय समय चिन्हित हो रहा है। कुछ लोगों को इनका लिखना, बोलना बुरा लगता है। वे बार-बार संस्कारों की नैतिकताओं की दुहाई देते हैं और उन्हें चुप करना चाहते हैं। जो लोग इस सीमा को तोड़कर नया लिख रहे हैं वे ही अपनी पहचान बना पाएंगे। आज युवा हिन्दी कहानी में किरन सिंह, मनीषा कुलश्रेष्ठ, चन्दन पाण्डेय, पंकज सुबीर, विवेक मिश्र, मनोज रूपड़ा, नीलाक्षी सिंह, अल्पना मिश्र, ज्योति कुमारी कुछ ऐसे नाम हैं जो इस विध्वंसकारी और अराजक समय में भी, जब परिवार टूट रहे हैं गाँव शहर में आ रहे हैं, बचे रह जाएँगे।

❐

नई पीढ़ी के पास है नई दृष्टि और हमारी पीढ़ी से ज़्यादा ऊर्जा-संजीव

समकालीन कथा परिदृश्य में करीब छह पीढ़ियाँ एक साथ सक्रिय हैं। कृष्णा सोबती की पीढ़ी से लेकर एकदम नए कहानीकारों की पीढ़ी तक। मैं जिस पीढ़ी का हूँ वह हिन्दी कहानी पर नक्सलवाड़ी आंदोलन के प्रभाव वाली पीढ़ी थी। यह बहुत ही ज़बरदस्त पीढ़ी थी।

आज का जनरल ट्रेन्ड यह है कि नए लोगों के लिए विचारधारा का कोई खास मतलब नहीं है, वे कहानी के नएपन पर ज़्यादा ध्यान देते हैं, मैं इन्हें पढ़ता हूँ और इनसे सीखता हूँ। लेकिन मैं अपने लिखने के तरीके से संतुष्ट हूँ। इस नई पीढ़ी के बारे में इतना ज़रूर कहूँगा कि इसमें हमारी पीढ़ी से ज़्यादा ऊर्जा है। इनमें चन्दन पाण्डेय, कुणाल सिंह, पंकज सुबीर, मनीषा कुलश्रेष्ठ आदि कई संभावनाओं से भरे नाम हैं, पर इनसे भी पहले मैं उनका नाम लूँगा जो इस नई पीढ़ी में बिलकुल अलग हैं-और वे हैं किरण सिंह, विवेक मिश्र और जयश्री राय। इन तीनों नए कथाकारों के माध्यम से मुझे भाषा की अब तक अलक्षित, अनजानी ताकत का पता चला। इनमें विषय को अपनी पीढ़ी के अन्य कथाकारों से अलग दृष्टिकोण से देखने की क्षमता है।

'हंस' के 'मुबारक पहला कदम' और 'कथादेश', 'परिकथा', 'पाखी', 'वसुधा' के माध्यम से भी कुछ अच्छे रचनाकार सामने आए हैं। यह अलग बात है कि आज अधिसंख्य कथाकार सरोकारविहीन और कैरियरिस्ट हैं, पर अंधकार है तो प्रकाश भी है।

❐

कहानी करवट बदल रही है- सुशील सिद्धार्थ

लेखक, सम्पादक और आलोचक होने के नाते विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियाँ प्राय; पढ़ता रहता हूँ। तमाम घोषणाओं और दावेदारियों की अनुगूँज भी सुनाई पढ़ती है। पक्ष और विपक्ष में कही जा रही अनेक बातें भी ज़ेहन में घुमड़ती रहती हैं। इन सबके बीच अगर मुझसे आज की कहानी के विषय में पूछा जाता है तो मैं कहूँगा कि हाँ, मैं कहानी में आए परिवर्तनों में बहुत सारी सकारात्मक बातें देख रहा हूँ।

मुझे नाम लेने में संकोच नहीं कि पंकज मित्र, संजय कुंदन, वंदना राग, अल्पना मिश्र, नीलाक्षी सिंह, मनीषा कुलश्रेष्ठ, शशिभूषन द्विवेदी, विवेक मिश्र, पंकज सुबीर, अजय नावरिया, आकांक्षा पारे, कविता, रवि बुले, चंदन पाण्डेय, उमाशंकर चौधरी, किरन सिंह, विमल चन्द्र पाण्डेय और गीता श्री ने उदय प्रकाश और संजीव की कथा पीढ़ी के बाद नया हस्तक्षेप किया है। मैंने वर्ष २०१२ अर २०१३ में 'लमही' पत्रिका के दो अंक सम्पादित किए- 'कहानी एकाग्र' व 'हमारा कहानी समय'। इसके अतिरिक्त कुछ वर्ष 'नया ज्ञानोदय' के साथ रहा। अपने इन अनुभवों के आधार पर में कह सकता हूँ कि आज कविता को टक्कर देती संख्या में कहानियाँ लिखी जा रही हैं। हर वक़्त मात्रा अधिक होती है क्वालिटी कम, यह चर्चा का विषय नहीं है। इस नई रोशनी में जो मुख्य कहानीकार हैं वे अपनी रचनात्मक जिम्मेदारी निभा रहे हैं। उन्होंने समय के भीतर छिपे सच को काफ़ी हद तक जाना है। जिनका मैंने ऊपर नाम लिया उनके पास अपनी भाषा है। केवल भाषा नहीं जिसके ऊपर कुछेक युवा ज़रूरत से ज़्यादा निछावर हैं।

सब मानेंगे कि पिछले दो-ढाई दशक में परिवर्तन का चक्र विस्मय व भय उत्पन्न कर रहा है। नई पूँजी ने नाश और निर्माण के कीर्तिमान बना दिए हैं। मुझे लगता है इस कहानी में राजनीतिक स्पष्टता, जुड़ाव और अभिव्यक्ति की मात्रा कम है। आप कहानी के लिए कहानी लिख कर कितने दिन जीवित रहेंगे। बिना राजनीतिक समझ के आप एक घरेलू कहानी भी नहीं लिख सकते। जो लिखते हैं, वे जल्द ही बेनूर हो जाते हैं। हाशिए के विमर्श बहुत पक्षधरता के साथ इस कहानी में आए हैं। विशेषकर स्त्री प्रश्नों पर बेबाकी के साथ लिखा गया है। कारण पता करना होगा कि सबसे ज्वलंत मुद्दों पर झिझक के साथ लिखा जा रहा है। आदिवासी, किसान, गरीबी ऐसे ही मुद्दे हैं। इनपर ज़्यादा फोकस होना चाहिए। 'चाहिए' शब्द से बहुतेरे लेखकों के मन में चुटकुले उभरते हैं, इसलिए यह मेरी इच्छा के लिए सुरक्षित है।

इतना ज़रूर है कि अब युवा कहानी का एक पड़ाव दिख रहा है। इन कहानीकारों को अपने से चुनौती लेनी है। इनमें से कुछेक कहते हैं कि हमें आलोचना की ज़रूरत नहीं। न सही। पाठकों की तो होगी? और पाठक केवल मॉल कल्चर में नहीं

हैं। माल या वस्तु में बदले जा रहे असंख्य पाठकों, नागरिकों की उम्मीद है कि उनके गाँवों, कस्बों से निकले ये कहानीकार उनके दुखों की भाषा पर भी ध्यान दें। यह केवल फेसबुक पर जूझने का वक़्त नहीं है। जुझारू रचनाशीलता समय की ज़रूरत है। हो सकता है कोई कहानीकार हर तरह से सुरक्षित हो और निजी मौज से लिखता रहे। पर उसे निहत्थे, निष्कवच, निरपराध जनों के लिए भी संघर्ष करना है।

कुछ वाक्य उपदेश की शैली में हो गए हैं, लेकिन मंशा है साथियों से अपनी बात शेयर करना।

❐

ख़ुद ही तो खींची हैं आकाश की सीमाएं- नरेन्द्र नागदेव

हिन्दी साहित्य के वर्तमान परिदृश्य को संदर्भ से काट के देखना संभवत: भ्रामक होगा। क्योंकि आज जो भी परिदृश्य है, उसके बीज दशकों पहले पड़ चुके थे।

साहित्य सर्वव्यापी है जब इस तथ्य को नकार कर उसका अस्वाभाविक विभाजन किया गया कि यदि फलाँ-फलाँ विषय पर लिखा जाए, वही साहित्य है तथा इससे इतर सब गैर साहित्यिक है, तभी से उसके सहज प्रवाह में गतिरोध पैदा हो गए थे जो समकालीन साहित्य में अब स्पष्टत: परिलक्षित हैं। शोध कर्ताओं के लिए यह अध्ययन का दिलचस्प विषय हो सकता है कि अगर साहित्य को अलग-अलग खेमों में विभक्त नहीं किया गया होता, तो वर्तमान साहित्य का चेहरा क्या होता? और यह भी कि क्या अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में जिनका साहित्य बोध किसी हालत में हम से कमतर नहीं है, यथा बंग्ला, मराठी अथवा तेलगू इत्यादि में इस तरह के विभाजन(यथार्थवादी-कलावादी) करने की ज़रूरत क्यों नहीं समझी गई? कहीं ऐसा तो नहीं कि सिर्फ़ हम ही समाज को बदल डालने के अतिरिक्त उत्साह अथवा मुगालते में हों? कोई कारण नहीं था कि विचारधाराओं अथवा चिंतन को साहित्य पर इस क़दर थोप दिया जाता कि उसका दम ही घुटने लगे। लेकिन ऐसा हुआ और इसके चलते जो सतही एक रस साहित्य की बाढ़ आई, उससे साहित्य उस ऊँचाई तक पहुँचने से रह गया, जहाँ उसे आज होना चाहिए था जबकि उसे साठ-सत्तर के दौरान लिखे गए साहित्य का मज़बूत आधार प्राप्त था। जब आपने साहित्य के आकाश की सीमाएँ ही निर्धारित कर दीं, तो उसमें उन्मुक्त उड़ान की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं?

अब हाल यह है कि कुछ पूर्व निर्धारित, सीमित विषय-वस्तुओं अथवा चिंतन पर आधारित साहित्य को ही मुख्य धारा का साहित्य माना जाता है-वही महत्त्वपूर्ण भी है और पुरस्कार योग्य भी। अन्य तमाम विषयों चिंतनों पर लिखा गया साहित्य अनदेखा रह जाता है। आज जब आधुनिकी करण और साइबर क्रान्ति के दौर में दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गई है तथा शहरीकरण और अंधाधुंध प्रतियोगिताओं के अंधड़ में, ज़िन्दगियाँ पत्तों-सी उड़ रही हैं, तब भी हम अपने वही पुराने आंचलिक परिवेशों, जुड़ते-टूटते पारिवारिक रिश्तों और प्रेम-त्रिकोण तथा स्त्री-पुरुष संबंधों की कथावस्तुओं को ही ढोते चले आ रहे हैं।

न हमें वक़्त के साथ दौड़ने की ऐसी कोई ज़रूरत ही महसूस हो रही है। शहरीकरण कोरपोरेट जगत तो दूर कला-संगीत-वास्तुकला जैसे विषयों पर लिखा गया साहित्य भी अनदेखा चला जाता है। कला हो अथवा संगीत-अभिव्यक्ति के हर क्षेत्र में समयानुरूप अभिनव प्रयोग होते रहते हैं। हमारा कथा साहित्य उस दिशा में उन्मुख क्यों नहीं होता? क्यों कोई उपन्यास इन विषयों पर नहीं लिखा जाता! कहीं वही कलावादी होने का ठप्पा लगने का भय तो नहीं है?

ऐसा नहीं कि कहीं कोई हलचल नहीं है। मंचीय गतिविधियाँ में ज़ोरो पे हैं। विमोचनों की बहार है। कुछ परम सम्माननीय लगभग हर मंच पर अपनी छटा बिखेरते हैं। वे कब किसे अर्श से फर्श पर पहुँचा दें, और कब किसे फर्श से उठाकर अर्श पर रख दें-कुछ पक्का नहीं है। लेकिन इस सबके बीच कुछ कालजयी साहित्य की रचना हो पा रही है क्या? या अब अच्छा लिखने वालों की बजाय मंच पर अच्छा बोलने वाला ही ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है? आज पुरस्कार सैकड़ों की संख्या में हैं, उनकी राशियाँ लाखों का आंकड़ा पार करने लगी हैं, लेकिन जब तक उन पर वर्चस्व कुछ उन्हीं जोड़-तोड़ कुशल साहित्य प्रबंधकों का रहेगा, तब तक उनसे साहित्य का कुछ भला होने वाला नहीं।

मैं यहाँ हरगिज पुरानी पीढ़ी, नई पीढ़ी की बात नहीं कर रहा। हर दौर में कालजयी साहित्यकार पैदा करने की क्षमता होती है। हर पीढ़ी में सार्थक साहित्य की रचना होती है, हो रही है, होती रहेगी। पर उसे निष्पक्ष भाव से पहचान कर चमकाने का भार जिन धुरंधरों पर है, उन्हें अपनी दुकानदारी चमकाने से फुर्सत मिले तब तो है!

❐

हिन्दी कहानी का समाज अभी बनता हुआ समाज है- कमल कुमार

कहानी पर बात करती हूँ तो पाती हूँ कि देखते-देखते एक लम्बा समय बीत गया। हमने मन्नू जी से लेकर आज तक के कहानीकारों का समय देखा है। देखा क्या है, उसमें रही हूँ, उसे जिया है, उसमें लिखा है। आज जो आपका समय है, वही मेरा भी समय है। मैं भी उसी वातावरण में साँस ले रही हूँ जिसमें आजका कोई युवा रचनाकार साँस ले रहा है। आज साहित्य में एक साथ कई पीढ़ियाँ सक्रिय हैं, मैं पिछली पीढ़ी की होकर भी आज जो कहानी लिखती हूँ, वह उतनी ही आज की है, जितनी किसी युवा की कहानी है। उसके-मेरे, विषय को देखने के नज़रिए में फ़र्क हो सकता है पर समस्याएँ वही हैं। मैं भी उसी यथार्थ से रुबरू हूँ। हाँ, आज जो अन्तर दिखाई देता है वह यह है कि आज विषयों की विविधता है। आज आप कुछ भी लिख

सकते हो, आज पहले जैसी काँट-छाँट नहीं होती, आप पर कोई हन्टर नहीं चलाता। हर तरह का लिखा जा रहा है। इतनी पत्रिकाएँ हैं, ब्लॉग्स, सोशल मीडिया है। सब लेखक की मर्ज़ी है पर पहले ऐसा नहीं था। संपादक कड़ी परीक्षा लेते थे। बहुत मुश्किल से रचना छपती थी पर यह भी था कि यदि रचना अच्छी है तो लेखक स्थापित भी होता था।

आज राजनैतिक प्रतिबद्धताओं का, विचारधाराओं का, खेमे बाज़ियों का समय है। कहानी सिर्फ़ कहानी नहीं रह गई है। बहुत कम लोग हैं जो सब तरह से मुक्त होकर कहानी लिख रहे हैं। आज अगर आप किसी खेमे में नहीं, किसी पार्टी में नहीं तो कुछ भी लिखते रहिए, आप हाशिए पर रहेंगे। कहीं कुछ छप भी गया तो उसकी चर्चा नहीं होगी पर मैं कहूँगी की आज की पीढ़ी को इससे जूझना आता है। वे अपनी जगह बनाना जनते हैं। आज तक़नीक के इस दौर में लेखकों को एक नई आज़ादी मिली है, खास कर महिलाओं को, पहले ऐसा नहीं था। इसीलिए आज कहानी में महिला लेखकों की संख्या बड़ी है पर बोलबाला आज भी पुरुषों का ही है।

सदी बदलने के साथ कहानी भी बदली है पर जो मैं देखती हूँ कि जब वह कन्क्लूड होती है तो कहीं उन्हीं मूल्यों पर आकर ठहरती है, जहाँ हम खड़े थे, शायद जीवन का मूल कभी नहीं बदलता। आज बड़ी संख्या में कहानियाँ लिखी जा रही हैं ऐसा कहना कि कहानी मर रही है, खत्म हो रही है गलत है, हमारे समाज की जो मूल थाती है वो कहानी है, किस्सा है। वह पीढ़ी दर पीढ़ी ऐसे ही चलती रही है, चलती रहेगी, जो बदलेगी वो भाषा है, कहने का अन्दाज़ है।

हिन्दी कहानी का समाज अभी बनता हुआ समाज है। इसमें सब कुछ हो ही चुका है ऐसा नहीं है। मैं ये मानती हूँ कि इसमें अभी भी बहुत कुछ होना बाकी है।

❐

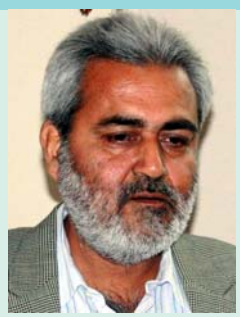

समकालीन कहानी की दशा और दिशा
विजय राय

पाठकों द्वारा यह लगातार शिकायत की जाती रही है कि आज की कहानियों में सूचनाएँ बहुत ज़्यादा होती हैं। किस्सागोई का हुनर कहानीकारों से गायब होता जा रहा है और शायद यही वजह है कि कहानियों में अब संवेदनाओं के लिए जगह काफी कम होती जा रही है। दरअसल इस समय ५-७ आयु वर्ग की पीढ़ियाँ एक साथ कहानी लेखन में सक्रिय है। यद्यपि इन कहानीकारों की कवरेज और रेंज बहुत अधिक है लेकिन इनके सामने कोई मॉडल नहीं है जिससे ये ऊर्जा ग्रहण कर सकें। प्रेमचन्द की कहानियाँ माडल थीं जिसने पूरे युग पर प्रभाव डाला था।

सच तो ये है कि विचारों का स्रोत लिटरेचर नहीं बल्कि जीवन है। कहानियाँ आज इतने तरीके की लिखी जा रही हैं और विषयों की तो इतनी भरमार है कि उसकी परख के लिए हमारे पास कोई पैमाना ही नहीं है। स्त्री दलित आदिवासी आदि विषयों की तो बहुतायत है। सूचना बनाम संवेदना की टसल में कहानियों में सूचनाएँ हावी होती जा रही हैं।

असल में कहानी आलोचना अपने सबसे खराब दौर में है। हमारे आलोचकों ने नये टूल्स विकसित ही नहीं किये हैं। आज भी हम अपने शिखर कथालोचक की ओर टकटकी लगाए देखते रहते हैं और उनकी राय को अपने आलोचना में अपनी तरह से कहते रहते हैं। जब हमारे जीवन मूल्य बदले समाज बदला तो कहानी तो बदलनी ही थी। प्रेमचन्द या अज्ञेय के समय की कथालोचना से हम अल्पना मिश्र, पंकज सुबीर, उर्मिला शिरीष, विवेक मिश्र, मनीषा कुलश्रेष्ठ, गौरव सोलंकी, गीताश्री, विमल चन्द्र पाण्डेय, आकांक्षा पारे काशिव, आदि की कहानियों को परखेंगे तो क्या बात बनेगी?

मेरे लिहाज से तो कहानी में विचारधारा का अब कोई मतलब भी नहीं रह गया है। सोशल नेटवर्किंग के इस समय में हमें अपनी परख की कसौटी को बदल कर पड़ताल के नए औज़ार तलाश करने होंगे तभी हम समकालीन कहानी की दशा और दिशा का सही मूल्यांकन कर सकेंगे।

हकीकत तो ये है कि हमारे जीवन के जो छोटे छोटे सत्य हैं उन पर कहानियाँ लिखी जा रही हैं। बेहतरीन कहानियाँ आ रही हैं नए से नए विषय समस्याओं और चुनौतियों पर हमारे अधिकांश आलोचक गण उनके साथ न्याय करने में विफल रहे हैं। लमही ने डॉ. सुशील सिद्धार्थ के अतिथि सम्पादकत्व में दो कहानी विशेषांकों का प्रकाशन किया है जो दूसरी पत्रिकाओं के कहानी विशेषांकों से इन अर्थों में भिन्न रहा है कि उनमें समकालीन कहानीकार और समकालीन आलोचक आमने सामने रहे हैं और किसी ने न तो किसी का लिहाज किया है और न ही किसी के साथ रियायत बख्शी है। यह काम हिन्दी के छोटे नामवर डॉ. सुशील सिद्धार्थ ही कर सकते थे जिसे लमही ने पूरी प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया। लमही के इन विशेषांकों की खूबी रही है कि बिना किसी दबाव या प्रभाव के कहानियों पर युवा आलोचकों से आलेख लिखवाए गये थे।

मुझे तो व्यक्तिगत रूप से समकालीन कहानीकारों से कोई शिकायत नहीं है.

❐

आज की हिन्दी कहानी में एक सुखद और समायोजी भाव है-अजय नावरिया

हिन्दी कहानी के समकालीन परिदृश्य को देखने के लिए हमें बीते बीस-बाइस वर्षों पर एक नज़र डालनी होगी। यह बात पहले भी में बहुत ज़ोर देकर कहता रहा हूँ कि यह बीते बर्ष विभिन्न विमर्शों और बहुत तेज़ी से परिवार, समाज और देश में बदलावों का समय रहा है। इसे अगर ऐसे कहें कि यह सीमांत कर दी गई अस्मिताओं के केन्द्र में ज़ोर

आजमाईश का दौर है और हिन्दी पट्टी ही नहीं, पूरे भारत में यह प्रभाव दिखाई दिया। पहले यह दक्षिण भारत में शुरू हुआ। वहाँ की राजनीति से ब्राह्मण(या कहें सवर्ण) वर्चस्व विलुप्त हो गया और बागडोर पिछड़ी(या कहें नवक्षत्रिय) जातियों के हाथ में आ गई। आज यह स्थिति हिन्दी पट्टी(उत्तर, पूर्व, पश्चिम भारत) में देखी जा सकती है। आज अधिकांश राज्यों के मुख्य मन्त्री गैर-सवर्ण जातियों के हैं। अपवाद स्वरूप एकाध ही ब्राहमण या सवर्ण मुख्यमंत्री दिखाई देते हैं जबकि बीस वर्ष पूर्व इसके बिलकुल उलट ही स्थिति थी।

राजनीति में जो होता है वही दस-बीस सालों में साहित्य और संस्कृति में दिखाई देता है। इन अनचीन्ही आवाज़ों को शक्तिपीठ बनने में यह लोक तान्त्रिक प्रक्रिया सहयोग ही करने वाली है।

युवा कहानीकार हों या युवा कार्यकर्ता-उम्मीद वहीं बँधती है। ये रुके पानी में प्रवाह पैदा करते हैं। कुछ थोड़े कम, कुछ थोड़े ज़्यादा, पर करते सभी हैं। यह सुसंयोग ही है कि मेरे सामने दलित और गैर दलित दोनों युवा हैं। एक अच्छी बात यह हुई है कि इन युवा कहानीकारों में जाति का बंधन ढीला पड़ा है। हालाँकि हिन्दी साहित्य में अधिकांश उपस्थिति निम्नवर्गीय या निम्नमध्यमवर्गीय युवाओं की ही है और वहाँ भी ग्रामीण क्षेत्रों की प्रबलता है, इसलिए जातिबोध कम नहीं है, कुछ अधिक ही है, परंतु यह बोध के स्तर तक ही है। व्यवहार और लेखन में, पिछली पीढ़ियों की तुलना में, बहुत कम है। एक सुखद और खास किस्म का समायोजी भाव वहाँ है। पुरानी पीढ़ियों के लेखकों में यह बोध बहुत अधिक और गहरा था जिससे व्यवहार और लेखन अछूता नहीं रह पाता था।

दलित लेखन की पहली और प्रारम्भिक पीढ़ी के लेखकों ने इस सवर्ण बोध का सुराग उन्हें दिया ताकि वे इससे उबर सकें। इसका शानदार नतीजा अगली पीढ़ी में दिखाई दिया। आज युवा कहानीकारों की पीढ़ी में यह साफ पढ़ा जा सकता है। जहाँ विवेक मिश्र 'हनियाँ' लिखते हैं, मो आरिफ 'लू' और मनीषा कुलश्रेष्ठ 'कुरंजा' जैसी स्पष्ट पक्षधरता की कहानियाँ लिखते हैं। आज इन कहानियों को पढ़कर हम आश्वस्त होते हैं कि साहित्य पराजित के साथ खड़ा है, न्याय के लिए लड़ रहा है। साहित्य की भूमिका आज भी महाभारत के बर्बरीक की तरह ही है-'मा सैव्यम् पराजित:'। यह विचारधारात्मक बोध, स्वतन्त्रता देता है, बंधनकारी नहीं होता। बस इस विचारधारात्मक बोध को विचाधारात्मक बोझ से अलग करके देखा जाना चाहिए वरना कहानीकार दब जाएगा, मर ही जाए।

अब बात आज के कथा साहित्य में कथावस्तु और शिल्प की-जहाँ खासतौर पर युवा पीढ़ी पर यह आरोप लगता है कि वे भाषाई आडम्बर से लदी कहानियाँ हैं पर हर जगह ऐसा नहीं है। मेरा मानना है कि अन्तर्वस्तु से ही शिल्प फूटना चाहिए पर कभी-कभी सजगता में कोर कसर रह जाने से ऐसी कहानियाँ आ जाती हैं जिनका शिल्प कहीं और वस्तु कहीं हो जाती है। प्रत्यक्षा की अधिकांश कहानियाँ मुझे ऐसी ही लगती हैं। मनीषा कुलश्रेष्ठ, कविता, वंदना राग, संजय कुंदन, राकेश विहारी, अनुज, मो आरिफ, विवेक मिश्र, पंकज सुबीर, हुस्न तबस्सुम निहाँ की कहानियाँ मज़बूत अन्तर्वस्तु और विशिष्ट कथाशिल्प की कहानियाँ हैं। वहीं चंदन पाण्डेय, कुणाल सिंह, पंखुरी सिन्हा विशिष्ट कथा शिल्प परंतु कमज़ोर अन्तर्वस्तु के लेखक हैं। इनमें सामाजिक अनुभवों की कमी को मैं यहाँ लक्ष्य कर रहा हूँ।

दलित युवा लेखकों में शीलबोध के पास सामान्य भाषा शिल्प किंतु मजबूत अन्तर्वस्तु है। चरण सिंह पथिक, सत्य नारायण पटेल और प्रभात रंजन भी इसी श्रेणी के सशक्त कथाकार हैं।

❐

ऊपर से विघटन और अंदर से पुर्नरचना का दौर है- गीताश्री

आज हिन्दी कहानी का आकाश धुँधला नहीं बल्कि पिछले बीते समय से ज़्यादा साफ और वैविध्य से भरा है कहानी का आकाश। इन दिनों जो कहानियाँ लिखी जा रही हैं उनकी ज़मीन एकदम अलग है। इस लिए उन पर आरोप भी लग रहे हैं पर आज रचनाकार वो जोखिम उठाने को तैयार है वह जानता है कि साहित्य अपने समय और समाज से कट नहीं रह सकता है।

आज अगर पुराने मूल्य, सिद्धान्त, विचारधाराएँ समाज में अप्रसांगिक हुई है तो वह कहानी में भी दिखेगा इसीलिए यथार्थ की उपजाऊ ज़मीन की सतह से उठती कहानियाँ इस समय ज़्यादा चर्चा के केंद्र में है। उनकी आलोचना भी हो रही है लेकिन वह आलोचना यथार्थ से आँखें मूँदे अतीत के व्यामोह में फँसी आलोचना है। किसी समय कल्पना की वायवीय दुनिया मे भटकने वाला कहानीकार अब संवेदना को अलग ढंग से देख परख रहा है। यथार्थ ने उसकी उँगली पकड़ ली है और वह खतरे उठाता हुआ आगे बढ़ने को तैयार है। हाँ, समय के इस जादुई यथार्थ में कल्पना की बहुत गुंजाइश है और वह जगह भी आज के समय की कहानियाँ अच्छी तरह भर रही हैं। सीधे सीधे यथार्थ परोसने का जो आरोप आज की कहानी पर है, वह व्यर्थ है।

इस क्रम में पहले उन मुद्दों की बातें करते हैं जो इधर की कहानियों में उठाई जा रही हैं। जैसे-नए संबंध, वैश्विक परिदृश्य, न्यू मीडिया, ग्रामीण परिवेश, बदलते गाँव की कहानियाँ इत्यादि। आज समय बदल गया है। समाज में चेतना आई है। खासकर वंचित वर्ग में, स्त्रियों में। वे अपने अधिकारों और नए संबंधो को समझ रही हैं। वे मुक्ति के नए नए रास्ते तलाश रही हैं। कहानियों में उनकी छटपटाहट साफ दिखाई देती है। एकल मदर की संख्या बढ़ रही है, समाज में। आपको कहानियों में भी मिलेगी ऐसी नायिकाएँ जो अपने जीवन में मर्द की सत्ता को खारिज करना चाहती हैं। जब समाज में खारिज कर पाना कठिन लगता है तब कहानी में कल्पना के जरिए अपनी उन ख्वाहिशों को आवाज़ दे लेती है पर जो एक बार सोच लिया गया वह आने वाले समय में सच भी होकर रहेगा। इन कहानियों में सिर्फ़ आक्रोश नहीं है प्रेम भी है पर उसका स्वरूप बदला है। आज कहानी में प्रेम के नए बिंबो पर भी बात हो रही है।

आज हमारे समय में राजनैतिक चेतना को लेकर,

सामाजिक सरोकारों को लेकर सजग कहानीकार हैं। वे प्लॉट या आइडिया पर कहानी नहीं लिखते। उनकी ज़्यादातर कहानियाँ जीवन से निकली कहानियाँ हैं। वे जीवन के अँधेरे और उपेक्षित कोने में जाते हैं और वहाँ से मनुष्यता के बीज ढूँढ लाते हैं। उनकी कहानियाँ आँखें भी खोलती है और आँखें भी दिखाती है।

यहाँ मैं कुछ कहानियों का जिक्र करना जरूरी समझती हूँ। जैसे रामजी यादव की कहानी 'हरित क्रांति', मनोज रूपड़ा की 'टावर ऑफ साइलेंस', संदीप मील की कहानी भारत पाकिस्तान सीमा पर तैनात सैनिकों के बीच रिश्तों की एक सशक्त कहानी है। मनोज रूपड़ा की कहानी में पारसी धर्म के त्याग पर दो पीढ़ियों के बीच संवाद है। इसी तरह आप विवेक मिश्र की कहानियाँ पढ़ें, चाहे वह 'हनियाँ' हो, 'दोपहर' हो, या फिर अभी हाल ही में शुक्रवार में प्रकाशित 'लागी फाँस करेजवा में'। इसी तरह विवेक ने 'काली पहाड़ी' में आदिवासियों की बात, नक्सवाद जैसी समस्या को जिस तरह से उठाया है। उससे साफ़ दिखता है कि हमारे समय की कहानी अपने हिस्से का जोखिम उठा रही है। वह केवल भाषा और शिल्प का आडम्बर नहीं है। वह कोरी कल्पना में नहीं भटक रही है।

हम कह सकते हैं कि यह कहानी के लिए बहुत कठिन समय होते हुए भी, समस्या मूलक कहानी का दौर है। इसकी खासियत ये कि इस दौर की कहानियाँ न सिर्फ समस्याएँ उठा रही हैं बल्कि कई बार समाधान की हद तक चली जाती हैं।

यह सच है कि समय बहुत तेज़ी से बदल बदल रहा है। हमारी पीढ़ी ने १९९५ के बाद उदारीकरण के दौर में हुए परिवर्तन बहुत करीब से देखे हैं। इन परिवर्तनों ने न सिर्फ देश की अर्थव्यवस्था को बदला बल्कि जीवन के हरेक क्षेत्र को बदल दिया। इसीलिए हमारे सोचने का तरीका भी बदला और हमारी कहानी भी। निजी चीजें ज़्यादा हुई, सामूहिकता का ह्रास हुआ। इसी के बीच अस्मितावादी विमर्श भी पनपा। दलित, स्त्री और मुसलिम विमर्श इसी दौर की देन है। कहानी में हाशिए के लोग आए और उन्होंने बखूबी अपनी एक अलग जगह और पहचान बनाई। साथ ही कुछ क्षेत्रों में बड़े स्तर पर सामूहिकता का उदय हुआ। साथ में छोटे छोटे पैकेट से आकर लोगों ने अपनी आवाज़ उठाई। घर बदले, परिवार बदले, स्त्री-पुरुष संबंध बदले। समय के इन छोटे-छोटे बदलावो को पुरुष कहानीकारों की तुलना में महिला कहानीकारों ने ज़्यादा शिद्दत से महसूस किया और उठाया। मुझे लगता है यह कहानी में अतिवाद का समय है पर क्यों न हो, जब वर्षों की चुप्पी टुटती है तो ऐसा ही होता है।

मैं कहूँगी कि इस समय से छूटा कुछ नहीं है बल्कि सब कुछ नए रूप में आया है। आज के समय में ही प्रभात रंजन और सत्यनारायण पटेल की कहानियाँ ग्रामीण संवेदना को लेकर लिखी गई। साथ ही नए दौर में कॉरपोरेट तथा सूचना और तकनीकी क्रांति ने भी कहानी पर असर डाला, इस क्रांति ने लोगों को ऊपर से बदला, भीतर से नहीं।

हाँ, इस समय में यह ज़रूर हुआ है कि युवा लेखन की बाढ़ में, केवल कहानी के लिए कहानी ने, भीतर जाकर पकड़ने वाली कहानियाँ कम और आकार प्रकार में बड़ी और संख्या में अधिक कहानियाँ देने वाले कहानीकारों को बढ़ावा मिला। पर कहानी में इस उथल-पुथल में जो समय बना है वह ऊपर से विघटन और अंदर से पुर्नरचना का दौर है। और इस समय ने हमें कुछ बहुत अच्छे कहानीकार दिए जिनमें अल्पना मिश्र,मनोज पाण्डेय, विमलचंद्र पाण्डेय, नीलाक्षी सिंह, मनीषा कुलश्रेष्ठ, कैलाश बानखेड़े, कविता, जयश्री राय का उल्लेख ज़रूरी है। उन्होंने ही हमारे कहानी समय को रेखान्कित किया है।

❐

लिखने की आज़ादी ही हमारे समय की पहचान है-सुमन सारस्वत

हिन्दी कहानी के समकालीन परिदृश्य के बारे में मेरा विचार अपने समय को देखते ही देखते बहुत बदला। मैं इस समय में नई थी क्योंकि मैंने बहुत देर से लिखना शुरु किया था। ज़ाहिर है मन में बहुत से संशय थे, डर थे और बहुत सारा संकोच था पर 'मादा' के प्रकाशन के बाद यह सब दूर-दूर तक कहीं नहीं था। केवल पाठकों, संपादकों और आलोचकों ने ही नहीं हमारे समय के लेखकों ने भी न केवल रचनाओं का स्वागत किया बल्कि मेरे लिए जगह बनाई, हौसला बढ़ाया। मुझे लगा मेरा डर व्यर्थ था।

आज यदि आपके पास विचार है। आप स्वयं को अभिव्यक्त करना चाहती हैं तो इससे अच्छा समय नहीं हो सकता। आज के समय में एक बेवाकी है आप वो लिखते हैं जो लिखना चाहते हैं न कि वो जो आसानी से छप सके क्योंकि आज सोशल नेटवर्किंग साइटस ने, ब्लॉग्स ने, हिन्दी में निकलने वाली तमाम नई मैग्ज़ीनों ने नए लेखकों के लिए जगह बनाई है।

मैं अपने समकालीनों को पढ़ती हूँ, उनसे प्रेरणा पाती हूँ। सोचती हूँ मैं भी अपनी तरफ़ से इस समय में अल्पना मिश्र, किरण सिंह, पंकज मित्र, विवेक मिश्र आदि की तरह कुछ ऐसा जोड़ सकूँ जो इस समय के बाद भी याद किया जाए।

❐

मौजूदा युवा पीढ़ी में अनेक विकासशील दिशाएँ नज़र आती हैं-भरत प्रसाद

नई सदी की हिंदी कहानी ने अनेक क्षेत्रों में अपनी पहुँच का विस्तार किया है। सूक्ष्म और चुनौतीपूर्ण विषयों की पकड़ इसे एक नया व्यक्तित्व प्रदान करती है । पिछले दस-पंद्रह वर्षों में न सिर्फ विषय की विविधता को विस्तार मिला है, बल्कि कहानी की संरचना और शैली भी आश्चर्य की हद तक परिवर्तित हुई है। इस संरचनागत परिवर्तन और शिल्पगत उतार-चढ़ाव का विश्लेषण किया जाना

अभी दूर तक शेष है । कहना ज़रूरी है की आज की युवा हिंदी कहानी अपना आलोचना शास्त्र गढ़े जाने की मांग अवश्य कर रही है ।

वैसे उल्लेखनीय यह भी है की आज के कुछ बहुचर्चित युवा कहानीकारों का श्रम, शिल्प और संरचना की पेंटिंग करने में बेरोकटोक खर्च हो रहा है । समकालीन युवा कहानी में झालरदार भाषा है, मनोहारी वर्णन है, मायावी चित्रण है और बात से बात निकालने की कला है, किन्तु वह विवेक जो अत्याधुनिक मानव-मन की जटिल परतों को खोल सके मानव की निर्मम मानसिकता का रहस्य बता सके, ऐसी कहानी आजकल किधर है ? मनुष्य के व्यक्तित्व का 1/3 बाहर होता है और 2/3 भीतर । इसी तरह मन का 1/4 कर्म, विचार, व्यवहार और संस्कार के रूप में प्रकट होता है-शेष 3/4 आत्मा की अज्ञात गहराइयों में हमेशा-हमेशा के लिए डूबा रहता है । मन की इन्हीं गहराइयों की पड़ताल करना युवा कहानी की चुनौती है कहानी की वर्तमान युवा पीढ़ी लगातार एक आकर्षक चमक भर रही है । कभी अलहदा शब्दबाज़ी के बूते, कभी रबड़ नुमा भाषा के बूते तो कभी मनमोहिनी संरचना के बूते । गीत चतुर्वेदी, चन्दन पाण्डेय, कुणाल सिंह, नीलाक्षी सिंह इत्यादि ऐसी ही रूपरंग वादी प्रयोगों के अगुवा नज़र आते हैं। विषय की अन्त: संरचना में उतरने, उसकी परतों को उधेड़ने और उसके अर्थों का रेशा-रेशा उद्घाटित करने की छमता इनमें लगभग गायब है । विषय की संवेदना से खेल खेलते हैं ये कहानीकार, क्योंकि इनकी फिलॉसफी यथार्थ को खेलना है, उसके मर्म का शब्दश: उद्घाटन करना नहीं ।

मौजूदा युवा पीढ़ी में अनेक विकासशील दिशाएँ नज़र आती हैं । एक दिशा उन कहानीकारों की है, जो गाँव, जवार, जनपद और अंचल से उठे हैं और ज़मीन के लिए ज़मीन पर खड़े होकर सृजन कर रहे हैं । ऐसे कहानीकारों में सुभाष चंद कुशवाहा, अरुण असफल, सत्यनारायण, विवेक मिश्र का नाम विशेष तौर पर उल्लेखनीय है । इनके लिखने के अंदाज में पर्याप्त विविधता के बावजूद, इनके सृजन की ज़मीन एक है और इन सबका मूलभूत लक्ष्य है, वर्तमान के जटिल, पराजित और चोट खाए हुए जीवन का प्रतिबद्धता के साथ उद्घाटन करना ।

वैसे कहना ज़रूरी है की साहित्य में सफलता, प्रसिद्धि, स्थापना और दिगंतव्यापी नाम का तबतक कोई अर्थ नहीं, जब तक समय की टेढ़ी चाल को बदल देने वाली, जनमानस को जीवित कर देने वाली और भावनाओं को दीर्घकाल के लिए उच्च बना देने वाली रचना प्रकट नहीं हो जाती बाज़ार का माया जाल गाँव-गाँव में गली-गली में, नगर नगर में नंगा नाच रहा है, और हम केवल एक अदद कालजयी लेखक बनने के सपने गढ़ रहे हैं।

❐

शिवना प्रकाशन
The Leading Publication House
Publisher's Identifier Number :978938
Under Category No. 5 (ISBN)
भारतीय तथा प्रवासी हिंदी साहित्य का अग्रणी प्रकाशन संस्थान । उच्च गुणवत्ता की पुस्तकें प्रकाशित करने में सबसे आगे । साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं तथा इंटरनेट पर पुस्तकों के प्रचार प्रसार में सबसे आगे। भव्य समारोहों में पुस्तकों का विमोचन देश के शीर्ष साहित्यकारों के हाथों । पुस्तकों के आवरण तथा इनले डिज़ाइन शीर्ष चित्रकारों की तूलिका से । टंकण तथा वर्तनी की शून्य अशुद्धियाँ । सुप्रसिद्ध समीक्षाकारों तथा आलोचकों से पुस्तकों की समीक्षा । विभिन्न साहित्यिक सम्मानों के लिये पुस्तकों की अनुशंसा करना ।
Shivna Prakashan, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001 India, Email: shivna.prakashan@gmail.com
Phone: +91-7562-405545, +91-7562-695918, Mobile: +91-9977855399

प्रेम गली अति सांकरी, कहानियों में तो और भी...

(वर्ष २००० के बाद कुछ युवा कहानीकारों की प्रेम कहानियाँ)

विमल चन्द्र पाण्डेय

विमल चन्द्र पाण्डेय

जन्म: 20 अक्टूबर 1981, वाराणसी, उ.प्र.
मूल रूप से बलिया जिले के कड़सर गाँव के निवासी।

शिक्षा: बी.एससी. (गणित), पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा, एम.ए.(हिन्दी)

प्रकाशित पुस्तकें: पहला कहानी संग्रह 'डर'। दूसरा कहानी संग्रह 'मस्तूलों के इर्द गिर्द'। संस्मरण पुस्तक 'ई इलाहाब्बाद है भैया' अत्यंत चर्चित। पहला उपन्यास 'भले दिनों की बात थी' प्रकाशनाधीन।
विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में कई कहानियाँ प्रकाशित तथा चर्चित हुई हैं।

सम्मान: पहले कहानी संग्रह 'डर' को भारतीय ज्ञानपीठ नवलेखन पुरस्कार।

संपर्क:
प्लॉट नं. १३०-१३१
मिसिरपुरा, लहरतारा
वाराणसी-२२१००२ (उ.प्र.)
फोन-९८२०८१३९०४
ईमेल:
vimalpandey1981@gmail.com

हिन्दी के चर्चित कथाकार विमल चन्द्र पाण्डेय अपनी अनूठी कहानियों के लिये जाने जाते हैं। उत्तरप्रदेश की खिड़की उनकी ताज़ा चर्चित कहानी है, जिसे लेकर व्यापक स्तर पर चर्चा हुई है। उनकी कहानियों में प्रेम अपने विशेष रंग में सामने आता है।

(कृपया लेखक को लेखक-लेखिकाएँ पढ़ें)

खालिस प्रेम कहानियों की उसी तरह कमी है जैसे जीवन में खालिस प्रेम की। प्रेम कहानियों के साथ अक्सर यह दिक्कत देखी गई है कि वे प्रेम कहानियाँ होते हुए भी जीवन के किसी बड़े पक्ष को छूने की कोशिश करने लगती हैं, अच्छे लेखक इस बड़े पक्ष को साध लेते हैं और यह साधना कई बार ऐसा हो जाता है कि कहानी में पनप रहा एक मासूम सा खूबसूरत प्रेम छोटा पड़ जाता है और वह दूसरा पक्ष या दूसरा मुद्दा कहानी की मुख्य थीम बन जाता है। ऐसा होने के कई कारण होते हैं, जब लेखक इसे पूरी तरह जानते समझते कर रहा होता है तो वहाँ प्रेम एक टूल की तरह प्रयोग किया जाता है जहाँ जीवन से जुड़े किसी अन्य मुद्दे को उभारने और उसके महत्त्व को दिखाने के लिये इसका प्रयोग होता है। लेकिन कई बार लेखक को अपनी प्रेम कहानी पर विश्वास नहीं होता और वह इसके फलक को बड़ा बना देने की कोशिश करते हुए सायास इसमें कभी सांप्रदायिकता, जातिभेद, बेरोज़गारी या अपराध को लाता है या फिर किसी और समीचीन समस्या को इसमें पिरोने की कोशिश करता है। इसमें कोई बुराई नहीं है क्योंकि 'और भी ग़म हैं ज़माने में मुहब्बत के सिवा' वाली बात भी तो आख़िरकार सच ही है लेकिन ध्यान देने वाली बात यह है कि 'और ग़मों' की बात भी मुहब्बत से चोट खाने के बाद ही कही जा रही है, यह गीत में स्पष्ट नाराज़गी से साफ़ ज़ाहिर है।

कहानी लिखना कोई तकनीकी काम नहीं है कि इसमें निश्चित नियम या फिर तय फॉर्मूले हों, कई बार कथाकार इस को बखूबी साध लेता है और कहानी शानदार हो जाती है लेकिन समस्या तब होती है और अक्सर होती है कि कहानीकार इसे साधने में असमर्थ हो जाता है। युवा कथाकार कुणाल सिंह की बहुचर्चित कहानी है 'रोमियो जूलियेट और अँधेरा' जिसमें असम में व्याप्त हिंसा का चित्रण है। अनुभा नाम की असमिया लड़की और मनोज नाम के हिंदीभाषी लड़के के बीच यह प्रेम कहानी सुंदर ढंग से आगे बढ़ती है कि तभी एक लहर आती है और यह प्रेम हिंदीविरोधी उपद्रव की भेंट चढ़ जाता है। कुणाल ने इस कहानी की भूमिका लिखी है जिसमें स्पष्ट है कि इस कहानी को लिखने का उनका मुख्य मकसद असम की इस दुखद परिस्थिति का चित्रण करना ही है। कुणाल अपने मकसद में कामयाब हुए हैं और यह रचना एक खूबसूरत कहानी बन कर उभरी है। उन्होंने यहाँ प्रेम को पाठकों को जोड़ने और उन्हें संवेदित करने वाले एक टूल के रूप में इस्तेमाल किया है जिसमें बाधा पड़ने पर पाठक असम की हिंसा को अधिक गहराई से देखने की कोशिश करता है। लेकिन यही क्षमतावान कथाकार जब 'प्रेम कथा में मोज़े की भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन' जैसी प्रेम कहानी लिखता है तो बुरी तरह मात खा जाता है क्योंकि वहाँ प्रेम के बरक्स कोई वैसी बड़ी समस्या नहीं है जिसे सामने खड़ा कर वह प्रेम की विडम्बना को दिखा सके। वह अपनी आर्थिक स्थिति को सामने लाकर मोज़े के फटे होने की बात सामने रखता है जो इसके विद्रूप को दिखाने में नाकाम रहती है। लेखक को इस प्रेम कहानी पर विश्वास भी नहीं है, यह कहानी में दिए उद्धरणों और फुटनोटों से स्पष्ट भी हो जाता है।

खालिस प्रेम कहानियों के मामले में नई पीढ़ी के ज्यादातर कथाकार गरीब हैं क्योंकि हमारा समय इतना उपद्रवी हो चुका है, इतना विडम्बनात्मक हो चुका है कि प्रेम के रूप में भेस बदल कर कब क्या कहानी में घुस जाये, कहना मुश्किल है। मनोज कुमार पाण्डेय की कहानी 'और हँसो लड़की' का प्रेम संवेदित करता है लेकिन पितृसत्तात्मक समाज का वहीं पुराना ढाँचा उसे अपनी गिरफ्त में ले लेता है और इस प्रेम कहानी की असमय मौत हो जाती है। गांवों में ऐसी स्थितियाँ आज भी आम हैं और मनोज इसे दिखाने में कामयाब हुए हैं। चंदन पाण्डेय की कहानी 'सुनो' भी प्रेम की खूबसूरत गाथा कहती हुई अपने बाद के हिस्से में पात्रों के साथ पाठकों को भी चौंकाती हैं। पत्नी को वेश्यावृत्ति में लिप्त बताये जाने का जो ट्विस्ट हैं उनके सामने कहानी का प्रेम छोटा होता दिखता है लेकिन पत्नी

का इसके लिये मान जाता इसे एक बड़ी और बेहतरीन प्रेम कहानी का दर्जा दिलाता है। राकेश मिश्र ने शुरुआत में कैम्पस और प्रेम की ही कहानियाँ लिखी हैं लेकिन उनकी कहानियों का प्रेम एकांगी है। वह शुरू में आकर्षित तो करता है लेकिन बाद में उन सभी का हश्र एक जैसा होता है। उनकी कहानियों का प्रेम चोट खाया हुआ प्रेम है और अपने समय को व्यंजित करता है। उनकी कहानियों का प्रेम बहुत रियलिस्टिक होने की वजह से याद रहता है मगर एक जैसा होने की वजह से देर तक उसका प्रभाव नहीं रहता। ए. असफल. ने ज़रूर कुछ अच्छी प्रेम कहानियाँ लिखी हैं लेकिन उनकी 'पाँच का सिक्का' जैसी कहानियाँ स्मृति में अधिक बनी रहती हैं बनिस्पत उनकी प्रेम कहानियों के। पंकज सुबीर के कहानीकार की नज़र प्रेम के नंगे यथार्थ पर अधिक रहती है और वह अक्सर प्रेम के विद्रूप को सामने लाने में विश्वास करते हैं लेकिन 'चौथमल मास्साब और पूस की रात' में एक अल्पकालिक लेकिन निस्वार्थ प्रेम जुगनू की तरह टिमटिमाता हुआ दिखाई देता है। गौरव सोलंकी के पास ढेरों प्रेम कहानियाँ हैं और कई अच्छी भी। 'पीले फूलों वाला सूरज' या 'रमेश पेण्टर और एक किलो प्यार' ऐसी कहानियाँ हैं जिनपर लेखक को विश्वास है और वह किसी सामाजिक मुद्दे का मसाला डालने की ज़रूरत नहीं समझता।

प्रेम कहानी लिखना आत्मविश्वास का और खतरे उठाने का काम है। कोई भी लेखक बेरोज़गारी और अपराध पर कहानी अपेक्षाकृत अधिक आसानी से लिख सकता है क्योंकि इस माहौल में वह रह रहा है और इससे उसका रोज़ का लेना देना है, सांप्रदायिकता और जातिवाद भी ऐसे मुद्दे हैं जिनसे हम रोज़ दो चार होते हैं। प्रेम की सूरत एक तो देखने को मिलती नहीं और जो तस्वीरें मिलती हैं उनमें बहुत सी समस्याएँ हैं, बहुत भटकाने और भ्रमित करने वाली चीज़ें हैं। किसी एक सामाजिक मुद्दे को उठा कर उस पर अख़बारी शोधों और कल्पनाओं की मदद से कहानी लिखना एक सहज प्रेम कहानी लिखने की तुलना में आसान है। ध्यान रहे कि मैं अच्छे और बुरे पर कोई फैसला नहीं दे रहा सिर्फ़ प्रक्रिया पर बात कर रहा हूँ कई नए लेखकों ने अपने कहानी लेखन की शुरुआत में ही सांप्रदायिकता जैसे नाज़ुक मुद्दे पर कहानी लिखी है और उसे अच्छी तरह निभाया भी है। नीलाक्षी सिंह की कहानी 'परिंदे के इंतज़ार सा कुछ' उनके पहले संग्रह में शामिल है और इसमें उन्होंने दोस्ती और प्रेम का प्रयोग सांप्रदायिकता के ज़हर के रंग और अधिक चटक दिखाने के लिये किया है। ज़ाहिर है उनकी कहानी में प्रेम है तो ज़रूर लेकिन उनका ध्यान धर्म के अश्लील प्रदर्शन को रेखांकित करने में थोड़ा अधिक है इसलिये कुछ दिल को छू लेने वाले प्रसंगों के बावजूद यह कहानी प्रेम के नाज़ुक पक्ष से न्याय नहीं कर पाती और एक फॉर्मूले का शिकार नज़र आने लगती है।

प्रेम का उपयोग अपने पक्ष में करने और उसे ठगने के जितने तरीके ज़िंदगी में प्रचलित हैं उससे कहीं ज्यादा कहानी में होते हैं। कहानी लिखने का सबसे आसान फॉर्मूला हमेशा से यही है कि एक-एक नायक नायिका चुने जाएँ जिनके बीच में वर्ग, नस्ल, आर्थिक या धार्मिक असमानताएँ हों, पहले

> संवेद के जुलाई २०१० के अंक में छपी युवा लेखिका मंजुलिका पाण्डेय की कहानी 'अति सूधो स्नेह को....' में एक ऐसा प्रेम है जो दिये की लौ सा कुछ देर टिमटिमाता है और फिर बुझ जाता है। लेकिन नहीं, यह बुझता नहीं है, हमारी अधिकतर उपमाएँ ऐसे ही गलत साबित होती हैं क्योंकि जो बुझ गया वह प्रेम कहाँ था। कहानी शुरू ही इस सवाल से होती है कि क्या थे वे दोनों एक दूसरे के ? किस लोक से थे ? एक बावन बरस की प्रौढ़ स्त्री अपनी चौदह बरस की उम्र में जाती है और हम देखते हैं कि उसकी ज़िंदगी में एक समवय लड़का आता है।

एकाध मासूम घटनाओं से उनके बीच प्यार पैदा किया जाये फिर थोड़ी देर बाद धार्मिक उन्माद, जातिगत भेदभाव या आर्थिक असमानता (या किसी अन्य कारण से भी) के कारण इस प्रेम की अकाल मौत कर दी जाए, ऐसी कहानियाँ पाठकों को अपील भी करती हैं और कहानीकार को जागरुक और समय के प्रति सजग कहानीकार की संज्ञा भी दिलवाती हैं। मगर मेरी नज़र में यह कहानीकार की एक कमी भी है कि वह अपने नायक नायिकाओं को ऐसी समस्याओं से लड़ते हुए दिखाता तो है मगर कभी उसके नायक नायिकाएँ इससे जीत नहीं पाते। ठीक है, हो सकता है जीवन में ऐसा न होता हो लेकिन कहानी में भी वैसा न हो जो जीवन में नहीं होता तो फिर वह काहे की कहानी। मैं खुद बतौर कहानीकार इन समस्याओं से अब तक नहीं उबर पाया हूँ और ज़रूर कहूँगा कि बहुत इच्छा होने के बावजूद ऐसी प्रेम कहानी अब तक नहीं लिख पाया हूँ जिसमें सिर्फ़ प्रेम हो। हालाँकि यह भी सच है कि जब आप प्रेम में होते हैं तो उस पर न तो कहानी लिख सकते हैं और न कविता, मैं जब प्रेम में था तो मेरे भीतर उतना आत्मविश्वास नहीं था लेकिन प्रेम ने ही मुझे यह आत्मविश्वास दिया है कि शायद मैं जल्दी ही कोई प्रेम कहानी लिख पाऊँ जिसमें सिर्फ़ प्रेम हो।

प्रेम कहानियाँ लिखना जिसमें और कोई समस्या न हो, सिर्फ प्रेम से जुड़ी समस्या हो, काफी कठिन है। बिना किसी बाज़ारू फॉर्मूले के प्रेम कहानी वही कथाकार लिख सकता है जिसे अपनी कहानी और उस कहानी में चल रहे प्रेम पर भरोसा हो। नीलाक्षी सिंह की बहुचर्चित कहानी 'परिंदे....' से बेहतर मगर कम चर्चित कहानी है 'आदमी औरत और घर' क्योंकि यह कहानी अधिक ईमानदार है। लेकिन हमारे समय की समस्या यही है कि कहानियाँ ज्यादातर वे अधिक चर्चित होती हैं जो हमारी आँख में उँगली डालकर हमारा ध्यान अपनी ओर खींचती हैं, सहज कहानियाँ कम। हमारा अभ्यास भी धीरे धीरे ऐसा हो गया है कि ऐसी कहानियाँ ही हमें देर तक याद रह जाती हैं जो अपनी बात थोड़ा लाउड होकर कहती हैं या फिर अपने शिल्प में कुछ खास होती हैं। सोनाली सिंह की कहानी 'सात फेरे' इस मामले में एक मानीखेज़ कहानी है जिसकी जितनी चर्चा होनी चाहिए थी, नहीं हुई। इस कहानी में एक पत्नी को लगता है कि काफी देर से नहीं लौटा

उसका पति शायद मर चुका है। कहानी इसके बाद है जब पत्नी खुद को इसके लिये तैयार करने लगती है और एहसास होता है कि इस तरह ज़िंदगी शायद कुछ ज्यादा आसान होगी और वह अपने पति की मौत से उतनी दुखी नहीं है जितना खुद के आज़ाद होने से खुश है। आखिरकार देर रात गए उसका पति लौट आता है और वह उसे देख कर रोने लगती है। इसी रोने में सारी कहानी है लेकिन अगर लेखिका इस सहज और खूबसूरत कहानी को कुछ शैल्यिक प्रपंचों के सहारे आगे बढ़ातीं और चौंकाने के कुछ प्रयास करतीं तो शायद कहानी को अधिक चर्चा मिलती। इस लिहाज़ से कविता की कहानी 'मेरी नाप के कपड़े' भी ईमानदार और सहज कहानी है। किसी कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत होने के बावजूद मुझे लगता है कि कविता की अन्य कहानियाँ जो अपनी शैलीगत विशेषताओं या चुभते विषयों के लिए अधिक लोकप्रिय हैं, के आगे इस कहानी की चर्चा कम हुई है। वंदना राग की कहानी 'शहादत और अतिक्रमण' एक बेहतरीन प्रेम कहानी है, हालांकि स्त्री मुक्ति की आकांक्षा और आज़ादी की इच्छा कहानी में कई बार प्रेम पर हावी दिखते हैं लेकिन यह कहानी फिर भी सहज बनी रहती है क्योंकि आखिरकार ये सब प्रेम के ही बाइप्रोडक्ट हैं। मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'खरपतवार' में भी प्रेम का सहज और एक अलग रूप सामने आता है और वह याद रह जाती है।

प्रेम कहानियों को हमारे समय की फिल्मों ने बहुत प्रभावित किया है। 'उसने कहा था', 'गुंडा' और 'पुरस्कार' जैसी कहानियाँ बीते दिनों की बात हो गयी हैं तो इसमें एक बात यह भी है कि हमारी फिल्मों में प्रेम का स्वरूप बदल चुका है। यही बात पूरी तरह से समाज के बारे में नहीं कही जा सकती क्योंकि छोटे शहरों और गाँवों में प्रेम का स्वरूप आज भी कमोबेश वैसा ही है। प्रेम करना आज भी सबसे बड़ा अपराध है और खाप जैसी कुप्रथाओं ने इसे और बड़ा अपराध बनाया है। ऐसे में कोई प्रेम कहानी सिर्फ़ अपने प्रेम की वजह से याद रह जाये तो यह उस कहानीकार की विशेषता कही जायेगी।

संवेद के जुलाई २०१० के अंक में छपी युवा लेखिका मंजुलिका पाण्डेय की कहानी 'अति सूधो सनेह को....' में एक ऐसा प्रेम है जो दिये की लौ सा कुछ देर टिमटिमाता है और फिर बुझ जाता है। लेकिन नहीं, यह बुझता नहीं है, हमारी अधिकतर उपमाएँ ऐसे ही गलत साबित होती हैं क्योंकि जो बुझ गया वह प्रेम कहाँ था। कहानी शुरू ही इस सवाल से होती है कि क्या थे वे दोनों एक दूसरे के ? किस लोक से थे ? एक बावन बरस की प्रौढ़ स्त्री अपनी चौदह बरस की उम्र में जाती है और हम देखते हैं कि उसकी ज़िंदगी में एक समवय लड़का आता है। इस लड़के का आना उस समय में है जब अनारकली फिल्म रिलीज हो रही है जिसमें गीत है 'ये ज़िंदगी उसी की है जो किसी का हो गया, प्यार ही में खो गया।' फिल्म का प्रयोग लेखिका ने बड़ी कुशलता से उस वक़्त को उकेरने के लिये किया है और इस गीत के साथ ही उस वक्त की अधिक फौलादी बेड़ियाँ भी साकार होने लगती हैं। चौदह साल की लड़की की माँ उसके पिता से बात करते हुए कहती है कि इसकी दोनों बहनों का इसकी उम्र में गौना हो चुका था, पिता कहते हैं कि समय थोड़ा बदला है। चौदह साल की लड़की मनोरमा अपने ललटेन कक्का से दुनिया जहान की बातें करती है जो अचानक कुछ दिनों के लिये गायब हो जाते हैं। वह जब आते थे मनोरमा को मीठी गोलियाँ दिया करते थे। उनकी जगह एक लड़का लालटेन जलाने आता है जो मनोरमा को घमण्डी लगता है। मनोरमा उससे चिढ़ने लगती है। यह चिढ़ना ही अपनेपन की शुरुआत है। किसी पराये से कहाँ कोई चिढ़ता है, कोई शिकायत करता है। लालटेन कक्का बाद में उससे पूछते हैं कि क्या वह उनकी अनुपस्थिति में मनोरमा को मीठी गोलियाँ दे रहा था। मनोरमा इनकार करती है और उसे लगता है कि लड़का कितना बदमाश है कि उसे कक्का ने उसके लिये गोलियाँ दीं और उसने उसे नहीं दिया। उसकी आँखें मनोरमा को शंकर भगवान की आँखों जैसी लगती हैं। वह धीरे-धीरे मनोरमा के घर में दाखिल हो जाता है और चुपके से उसकी ज़िंदगी में भी। वह किताबें पढ़ता है और किताबों के जरिये ही उससे संवाद करता है। वह धीरे-धीरे उसे पसंद करने लगती है। टू मिनट नूडल वाले ज़माने में प्रेम होने की यह गति थोड़ी धीमी लगती है लेकिन यही प्रेम की असली गति है, पहली नज़र वाले प्रेम के प्रति पूरा सम्मान रखते हुए भी यह कहना ज़रूरी है कि पहली नज़र के प्रेम की अवधारणा पूरी तरह सामंती अवधारणा है। लड़के का नाम उत्पल मनोरमा के पिता जी द्वारा ही रखा गया है जिसे वह उपला, गोबर समझती है। उत्पल उसके पुस्तकालय में आकर बैठता और किताबें पढ़ता है, किताबें ही दोनों के बीच आत्मीय संवाद का पहला माध्यम बनती हैं और लड़का किताब में एक दिन लिख कर चला जाता है कि आपके बाल बहुत खूबसूरत हैं। किशोर लड़की हवा में उड़ती है और जिस दिन वह पाती है कि लड़के ने एक किताब में उसका नाम बार-बार उकेर कर लिखा है, वह प्रेम के नशे को महसूस करती है। लड़की अपनी अम्मा से कहती है कि वह उसे उसके पूरे नाम मनोरमा से पुकारा करें, रमा नाम उसे बचकाना लगता है। प्यार की यह वही अवस्था है जिसमें दुनिया को ऐसा प्रेम बचकाना लगता है और प्रेमियों को पूरी दुनिया बचकानी लगती है।

लड़की की शादी तय हो जाती है और लड़का उसकी हथेली में मीठी गोलियाँ देते हुए कहता है, ''मैं हमेशा तुम्हारा कर्ज़दार रहना चाहता था। पर उसके लिये अब इसकी ज़रूरत नहीं है, इसलिये लौटा रहा हूँ''

लड़की गोलियाँ गिनती है। उसे बीस गोलियाँ मिलती हैं। ललटेन कक्का उन्नीस दिनों तक लालटेन जलाने नहीं आये थे और बीसवीं गोली लड़के की ओर से उपहार है। यह मिठास प्रेम की मिठास है जो लड़के ने लड़की की हथेलियों में भरी है। उसकी गोलियाँ खत्म हो जाएँगी लेकिन यह मिठास उसकी पूरी ज़िंदगी में रहेगी। लड़का गोलियाँ देने के बाद उससे कहता है, ''आप बहुत अच्छा गाती हैं, इसे बनाये रखियेगा।''

देखा जाय तो कहानी में कहीं मुखर प्रेम नहीं है, दो किशोरों के प्रेम को समाज तो समाज, साहित्य ने भी थोड़ा कम ही भाव दिया है। लेकिन मुख्य बात है कि प्रेम के भाव का स्थायित्व जो पूरी ज़िंदगी साथ रहता है।

''आँखों की इस भाषा को, इस भाषा में लिखी कहानी को कौन पढ़ पाया। कोई भी तो नहीं।''

ऐसे में यह सोचने वाली बात है कि यह कौन सा प्रेम है जिसके लिये लेखिका कभी गलदश्रु

भावुकता वाले भाव में नहीं आती है जबकि दो किशोरों की इस प्रेम कहानी में इसकी गुंजाइश और संभावना बहुत थी। यह लेखिका का संतुलन है कि वह इस तत्व को कहानी में भलीभांति स्थापित करती है है कि प्रेम की ताकत यही है कि यह आपको आज़ाद करे। शादी के बाद मनोरमा बहुत खुश है, उसका पति जयेन्द्र भी बहुत खुश है। इस समय लेखिका ने कहीं किसी हूक के उठने का इशारा नहीं किया है। बेटी के जन्म पर वह बहुत खुश है मगर प्रेम उसकी ज़िंदगी में हवा की तरह उपस्थित है। पति के बहुत कहने पर भी वह अपने बाल छोटे नहीं करवाती और गाने का अभ्यास हमेशा करती रहती है। इन्हीं दो बातों में पूरी प्रेम कहानी समाहित है। उसकी बेटी कहती है, ''माँ! मैंने सिर्फ़ दो चीज़ों के लिये आपको कांशस देखा है। एक आपके बाल, दूसरा आपका संगीत अभ्यास।'' लड़की ने अभी तक अपने प्रेम को अपने भीतर जीवित रखा है।

आज की वाचाल प्रेम कहानियों के बीच यह प्रेम कहानी इसलिये खास है क्योंकि कितनी भी आधुनिकता के बाद भी आज हमारे समाज का बड़ा हिस्सा प्रेम को लेकर तालिबानी मानसिकता से ग्रस्त है मगर हमारी प्रेम कहानियाँ इनके चित्रण में कमोबेश नाकाम रही हैं। हमारे पास जो प्रेम कहानियाँ हैं वह ज्यादातर शहरों और महानगरों से हैं जिनमें प्रेम और देह के समीकरण एक दूसरे में गहरे तक समाए हुए हैं। यहाँ समस्याएँ दूसरी हैं, प्रेम के रंग यहां भी है और बहुत सारे रंग हैं लेकिन दूसरी समस्याएँ इतनी हावी हैं कि प्रेम ज्यादा देर तक कायम नहीं रह पाता। छोटे कस्बों और गाँवों में भी पहले से बहुत अधिक परिवर्तन आये हैं लेकिन वहाँ ये परिवर्तन भौतिक अधिक हैं, मानसिक रूप से आज़ादी के लक्षण अधिक दिखायी नहीं पड़े हैं। लेखिका ने जानबूझ कर कहानी में फ्लैश बैक का प्रयोग किया है और कहानी को छत्तीस साल पहले के माहौल में ले गई हैं जिससे उस समय की बंदिशों के साये में इस प्रेम को देखा जा सके।

ऐसी कहानियों पर अक्सर अतिभावुकता के इल्ज़ाम लगते रहे हैं और लगाने वालों ने तो 'उसने कहा था' तक को कई बार ख़ारिज करने की कोशिश की है। उत्तर राजेन्द्र यादवीय कहानियों के दौर में, जहाँ प्रेम के नाम पर सिर्फ़ दैहिक आकर्षणों की गाथा और एक रात के स्टैण्ड हैं, यह कहानी अविश्वसनीय रूप से प्रेम के एक ऐसे अर्थ पर बात करती है जहाँ बिना रोए धोए, बिना देने पाने की चिंता किए और बिना किसी कमिटमेंट अपनी ज़िंदगी पूरे मन से जीनी है लेकिन अपने मन के किसी कोने में उस प्रेम को संजोते और बचाते हुए। प्रेम का इससे बेहतर और निस्वार्थ अर्थ नहीं हो सकता। कहानी की शुरुआत में ही इस संबंध के बारे में लेखिका कहती हैं, ''ऐसे ही इस लोक में हुआ है जिसपर अपरिपक्व रूमानियत का इल्ज़ाम लगाकर, फ्रायडीय मनोविज्ञान के निशाने साधकर खूब हँसी तो उड़ाई जा सकती है लेकिन भीतर ही भीतर एक मिठास भरी टीस से भरने से नहीं बचा जा सकता। वे दोनों एक दूसरे के साथ न होकर भी साथ रहे, हर समय और यह साथ होना इतना आत्मस्थ था कि उन्हें पता तक नहीं चल पाया। भरते रहे दोनों एक दूसरे को बिना जाने कि भर रहे हैं, कुछ दे रहे हैं, ऐसे जैसे यह देय नहीं प्राप्य हो।''

इस कहानी की सबसे खूबसूरत बात यह है कि नायिका अपने परिवार के साथ खुश है, अपने पति को प्रेम करती है, अपने जीवन से खुश नज़र आती है लेकिन वह जो प्रेम पा रही थी, अपने भीतर समा रही थी, वह किसी और के एहसास में लिपटा हुआ आता था। सुनने में रुमानियत भरी लगती है लेकिन यह बात कितनी सच्ची है जब हम सब अपने भीतर झाँकते हैं और पाते हैं कि मन के किसी कोने में हमने बरसों से किसी का दिया कुछ छिपा कर रखा हुआ है। हम अपनी ज़िंदगियों को जी रहे हैं, पूरी ताकत से लड़ रहे हैं अपनी परेशानियों से लेकिन अक्सर जो कुछ अच्छा है, उसका स्रोत हमारे जीवन से दूर जा चुका है, दूर जाने वाले स्रोत को अपने भीतर ज़िंदा रखना ही तो प्रेम है।

लालटेन जलाने वाली परंपरा हमारे लिये एलियन की तरह है जिसे पढ़कर याद आता है कि कितनी ही ऐसी परंपराएँ समय की भेंट चढ़ गई हैं जिनमें सामूहिकता का भाव था जो पूरे गाँव को, पूरे समुदाय को एक परिवार की तरह एक सूत्र में बांधता था। मनोरमा का उत्पल के लिये खाना बनाना सीखना, खाने में कम मिर्च डालने की बात सोचना, उसकी लाल आँखें देखकर सोचना कि कहीं उसे बुखार तो नहीं हो गया, ये सब उस प्रेम की बातें हैं जो पढ़ने सुनने में पुरानी लगे लेकिन कस्बों और गाँवों में जिनका रूप ठीक उसी तरह बरकरार है जिस तरह यह कहानी हमें बताती है। मनोरमा अपनी बेटी के होने पर उसका नाम मनोत्पला रखती है, उसकी पति कहता है कि एक विदुषी महिला ऐसा ही नाम रख सकती थी। यह एक ऐसी गीली मिठास वाला प्रेम है जिसकी मिठास जीवन भर महसूस होती है। प्रेम के बहुत से रूप निश्चित रूप से होते होंगे लेकिन यह एक ऐसी प्रेम कहानी है जिसमें प्रेम सबसे सहज और आत्मीय रूप से आता है। आता है और छा जाता है, हमें डुबो लेता है, भिगो देता है और हमसे कहता है-मैं क्या जानूँ क्या जादू है, इन दो मतवारे नैनों में।

❐

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
चयनित कहानी

अति सूधो सनेह को.....

मंजुलिका पाण्डेय

मंजुलिका पाण्डेय

जन्म: 1 फरवरी

शिक्षा: एम.एड.

संप्रति: बी.एड. कॉलेज में व्याख्याता

प्रकाशन: विभिन्न पत्र पत्रिकाओं कादम्बिनी, नया ज्ञानोदय, वागर्थ (युवा पीढ़ी विशेषांक), पाखी, जनसत्ता वार्षिकांक, साहित्य अमृत, आज का समय (लीलाधर मण्डलोई सम्पादित कविता संकलन), में कहानियाँ, कविताएँ एवं आलेख प्रकाशित।

सम्मान: साहित्य अमृत पत्रिका द्वारा कविता हेतु पुरस्कार

संपर्क:

मकान नं. ए 2/ 52 (टी)

पोस्ट धूर्वा

जिला रांची 834004

झारखंड

ईमेल:

manjulika_pandey@rediffmail.com

प्रेम के बहुत से रूप निश्चित रूप से होते होंगे लेकिन यह एक ऐसी प्रेम कहानी है जिसमें प्रेम सबसे सहज और आत्मीय रूप से आता है। आता है और छा जाता है, हमें डुबो लेता है, भिगो देता है । पीरियड लव स्टोरी का सा एहसास देती इस कहानी 'अति सूधो सनेह को.....' का चयन सुप्रसिद्ध कहानीकार विमल चन्द्र पाण्डेय ने हिन्दी चेतना विशेषांक के लिये नई सदी में लिखी गई लेखिकाओं की कहानियों की प्रतिनिधि कहानी के रूप में किया है।

आत्मकथ्य

माँ से बातें करना हमेशा एक अनुभव से गुज़रने की तरह होता है। इस कहानी में जो भी कालिक विशेषताएँ नज़र आती हैं वे सभी माँ से सुने गए किस्सों से जाना समझा है। सौभाग्य से नानी के घर जाने पर कुछ शेष रह गए स्मृति चिह्नों जैसे लालटेन का खंभा, आनंदी सिनेमा को देखने समझने का मौका भी मिला। गाँव जाने पर वहाँ के समाज और माहौल के साथ, माँ के साथ, इस काल को जीते हुए अक्सर मेरे मन में जिज्ञासा होती थी कि उस बँधे-बँधाए से दौर में भी क्या प्रेम होना इतना सहज होता होगा। अगर होता होगा तो कैसे और कैसा होता होगा। नानी के गाँव में ही एक गजब की सुलझी हुई महिला ने प्रेम को लेकर जो कुछ कहा सुना, माँ से उस दौर के रिश्तों को लेकर जितना सुना, महसूस किया, औरतों की मंडलियों में बार-बार कही-सुनी जाने वाली कहानियाँ जितना मुझ तक पहुँच सकीं, कुछ पात्र अपने आप गढ़ गए और अपने भाव, अपने शब्दों अपनी परिस्थितियों के साथ निरंतर मेरे साथ जीने लगे और कब लेखनी के माध्यम से कागज़ पर उतर गए पता ही नहीं चला। मेरे लिए ये कहना मुश्किल हो गया कि ये कहानी और इसके पात्र काल्पनिक हैं या यथार्थ। कुछ कहानियाँ ऐसी होती हैं जहाँ आप कहानी में सिर्फ एक तटस्थ दर्शक की तरह होते हैं जहाँ आप जितना और जो देखते, महसूस करते हैं उसे बिना प्रभावित हुए अभिव्यक्त करते हैं या उतने शामिल होते हैं जितना एक सर्जक अपनी कृति में शामिल होता है पर कुछ कहानियाँ ऐसी होती हैं जहाँ आप खुद को बिखरा हुआ पाते हैं। ये कहते मुझे ज़रा भी गुरेज नहीं कि इस कहानी में कहीं भाव के स्तर पर, कहीं परिस्थितियों में तो कहीं विचारों के स्तर पर जहाँ तहाँ मैंने घुसपैठ की हो। इस कहानी के ललटेन कक्का जैसे कुछ पात्र बिल्कुल सच्चे यानि यथार्थपात्र हैं पर प्रेम को जीने वाले वे दोनों पात्र कितने सच्चे हैं और कितने काल्पनिक इसपर सबके अपने-अपने विचार हो सकते हैं। मेरे लिए इस कहानी के पात्र सच्ची भावना और सच्ची परिस्थितियों के मूर्त रूप हैं इसलिए उतने ही सच्चे और यथार्थ हैं।माँ के किस्सों से, गाँव की नानियों-दादियों के पंचौरों से, अपनी किशोरावस्था में त्याग की भावना से भरे, मौन, अस्पर्शीय प्रेम के आदर्श स्वरूप पर विश्वास से निकलकर, बुनी-गुनी ये कहानी मेरे मन के बहुत करीब है।

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
चयनित कहानी

अति सूधो सनेह को.....

क्या थे वे दोनों एक दूसरे के? किस लोक से थे? क्या इसी लोक से जहाँ कितना और क्या पाया जा सकता है, की उत्कंठा से बात शुरू होकर क्या-क्या खो दिया की छटपटाहट पर जाकर खत्म हो जाती है। जहाँ सम्बन्ध प्रयोग हैं, जो बार-बार नए स्तर पर किए जाते हैं, असफल होते हैं। कांट्रेक्ट हैं, जिसकी अवधि निश्चित होती है फिर कांट्रेक्ट खत्म। कमिटमेंट हैं, वादे हैं, कसमें हैं, फिर अफसोस है, छूटने की जद्दोजहद है और अंत में खत्म होना है।

ऐसे ही इस लोक में हुआ है ऐसा जिसपर अपरिपक्व रूमानियत का इल्जाम लगाकर, फ्रायडीय मनोविज्ञान के निशाने साधकर खूब हँसी तो उड़ाई जा सकती है लेकिन भीतर ही भीतर एक मिठास भरी टीस से भरने से बचा नहीं जा सकता। वे दोनों एक दूसरे के साथ न होकर भी साथ रहे, हर समय और यह साथ होना इतना आत्मस्थ था कि उन्हें पता तक नहीं चल पाया। भरते रहे दोनों एक दूसरे को बिना जाने कि भर रहे हैं, कुछ दे रहे हैं, ऐसे जैसे यह देय नहीं प्राप्य हो। एक ऐसी प्रतीक्षा में डूब जाना, जिसका पूरा न होना, प्रतीक्षा शुरू होने के पहले ही तय हो, तपस्या से भी कठिन कुछ है। लेकिन तपस्या करने वाले को पता तक न चले कि वह कोई तप भी कर रहा है, तब....?उस डूब जाने की थाह है कोई? काश कि इस परिपक्व संसार में ऐसी अपरिपक्व रूमानियतें छा जाएँ और करूणा जीत जाय तर्क हार जाय।

00000

''तुम बहुत अच्छा गाती हो'', उसे यह आवाज़ इतने पास से सुनाई पड़ी कि उसे लगा मानों उसके भीतर बैठा कोई उससे यह कह रहा हो। मैं सपना देख रही हूँ या तन्द्रा में हूँ या जागी हुई हूँ? वह इतनी अवश थी कि पहचानी सी लगती इस आवाज़ पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दे पा रही थी। ''इसे बनाए रखना'' फिर ऐसा ही एक धुँधला-धुँधला सा शब्द उसके कानों तक पहुँचा। उसने पूरी ताकत लगाकर आँखें खोली। आस-पास हजारों लोग, वह खुद सबसे आगे की सीट पर, तालियों की गड़गड़ाहट, मंच पर प्रतिभाशालिनी बेटी मनोत्पला और उसके सर पर हाथ रखकर काँपती, भींगती, मुस्कुराती, छलकती एक आवाज़। वह बहुत मुश्किल से अपनी पलकें झपका पा रही थी। सारी चेतना मानों जड़ हो गई हो। वह कब से यहाँ बैठी है? क्या-क्या हुआ यहाँ? उसे कुछ याद नहीं। उसे याद है इन धुँधलाए शब्दों को सुनने के ठीक पहले उसने आख़िरी शब्द सुने थे ''आप बहुत अच्छा गाती हैं, इसे बनाए रखिएगा।'' वह एक जैसे लगते इन दोनों वाक्यों के बीच के काल के धागों को जोड़ने की कोशिश करती है। कितना अंतराल गुजरा होगा? एक व्यक्ति सोए में सपना देखे, फिर जागे, इससे अधिक तो नहीं।

यह कहभर देने से कि वक्त बीत गया, सबकुछ बीत जाता है क्या? अगर ऐसा ही होता तो वह, जो तीन जवान बच्चों की माँ है, अचानक बावन बरस की प्रौढ़ा स्त्री से चौदह बरस की हो पाती? चकित, उत्सुक, स्तब्धा, सहमी-सहमी सी उसी चौदह बरस की, अबूझ पहेलियों में डूबती-उतराती किशोरी। हाँ वही स्त्री जिसके भीतर अथाह प्रेम है। जो दुनिया से, हर-एक इंसान से, प्रकृति से बहुत प्यार करती है। चिड़ियों का चहचहाना रोज़-रोज़ सुनने पर भी, हर सुबह उनकी आवाज़ पर उतना ही विभोर होकर खिड़की से सलाखों पर ठुड्डी टिकाए खड़ी हो जाती है। सबको बहुत-बहुत देने को आतुर स्त्री।

पर वो ऐसी क्यूँ है? वह खुद जानती है? हमारे बनने में कितनी-कितनी अदृश्य शक्तियाँ काम करती हैं, हमें खुद पता नहीं चलता। उसी से हम अज्ञात रूप से संचालित होते हैं। कई बार तो अचानक मृत्यु के दरवाज़े पर, भीतर कुछ सक्रिय हो जाता है, सारे पर्दे खुल जाते हैं, रौशनी भीतर तक पहुँचती है और सब कुछ साफ-साफ पता चल पाता है कि हम जैसे हैं वैसे क्यों हैं। आज अचानक जीवन के पचास साल बीत जाने के बाद उसके भीतर का भी पर्दा खुल गया है।

''हरतुलिया हर ताले ताल
हमें पढ़ावैं पंडित लाल
पंडित लाल ने दिया असीस
जीयो बेटा लाख बरीस''

वह चौंकी। हाँ-हाँ बिल्कुल वही, बिल्कुल वैसा ही। अगर वक्त का बीतना तय है तो ऐसा कैसे हो सकता है कि कोई जिन्दगी के छत्तीस साल किसी के साथ पूरा-पूरा होने जैसा महसूस करने में गुजारे, सुखी हो, सन्तुष्ट हो, सम्मानित हो, ढेर सारा प्यार करे, ढेर सारा प्यार पाए और अचानक पता चले कि प्रेम, जो वह भर-भरकर उलीचती रही थी, उसका स्रोत दरअसल कहीं और था, प्रेम जो वह पा रही थी, अपने भीतर समा रही थी वह किसी और के अहसास में लिपटा हुआ आता था। तो क्या वह छत्तीस साल के लम्बे सपने में थी और आज अचानक नींद खुलने पर उसने पाया कि जो कुछ घटित होता हुआ सा लगता रहा है, दरअसल सपना था?

अभी आँख खुलने पर वह वहीं है, ठीक वहीं...

''हरतुलिया हर ताले...''

दूसरी बार फिर उसने दरवाज़े पर यह पुकार सुनी और भागती आयी।

'लो जी!' हड़बड़ाकर उसने पोटली को दरवाज़े पर खड़े उस विद्यार्थी की झोली में डाल दिया।

'जाहह!! दो पोटली गिर गई।' उसके मुँह से निकला। विद्यार्थी ने एक पोटली झोले से निकाली, 'इसे आप वापस रख लें'

'दान की हुई चीज वापस कैसे रख लूँ? रहने दो।'

'जो इच्छा से, विचार करके दिया जाता है वह दान होता है। यह गलती से मेरी झोली में गिरा, इसका आपको अफसोस भी हुआ। यह दान नहीं है। इसे आप वापस रख लें ।'

'नहीं रखती जी। इससे तुम्हारे मास्टर जी का फायदा ही होगा, तुम्हें समझ नहीं आता?'

'नहीं! इससे गुरु जी की दी हुई शिक्षा की हानि होगी।'

'हे भगवान! क्या समझते हो जी अपने आपको? महा पंडित? शास्त्रार्थ मत करो हमसे। हम वापस नहीं लेंगे, चाहो तो फेंक दो।' वह पैर पटकती हुई अन्दर आ गयी।

पता चल जाए पंडित जी कौन से स्कूल में पढ़ते हैं तो सब बड़र-बड़र करना भूला दें सब मास्टर जी हमारे बाबूजी के दोस्त हैं, हमारी सब बात भी मानते हैं। हर साल यह दिन उसके लिए उत्साह से भरे उत्सव की तरह होता था। विद्यार्थी घर-घर जाकर अपने गुरु के लिए भिक्षाटन करते

थे। गुरुकुल परम्परा का यह अनोखा ही रूप था। यह एक तरह की गुरुदक्षिणा भी होती थी और शिक्षकों को वेतन देने का तरीका भी। दो दिन पहले से ही वह धोती को फाड़कर ढेर सारी पोटलियाँ बनाने लगती थी। हर एक पोटली में चावल, दाल, हल्दी, सब्जी, पैसा, सब याद से डालती जाती। किसी पोटली में कद्दू थोड़ा छोटा पड़ जाए तो उसकी भरपाई थोड़ा और चावल डालकर कर देती। सबके लिए बराबर होना चाहिए, नहीं तो विद्या माँ नाराज़ हो जाएँगी। तेरह साल की इस बाल किशोरी का दान देने का यह अधिकार पिछले सात सालों से अक्षुण्ण रहा है। पर अबकी तो उसका उत्साह एकदम से ठंडा पड़ गया। सब उस महापंडित के कारण। मुँह फुलाकर उसने तकिए में मुँह गड़ा दिया।जैसा कि होना था, वह एक दिन चौदह की भी हो गई, लेकिन सोच में, व्यवहार में वह तेरह की रही या शायद बारह की या...पता नहीं व्यवहार को उम्र की चौहद्दी में ठीक-ठीक कैसे बांधा जाता है।

वह जिस काल में पैदा हुई थी उस काल में दस साल की होते न होते लड़कियाँ धोती बाँधाने लग जाती थीं, बारह की उम्र तक ब्याह और पन्द्रह सोलह की उम्र में गौना। पर घर की सबसे छोटी, अम्मा, बाबूजी की लाडली अभी भी सलवार जंफर पहनती है। पाँचवीं कक्षा तक की पढ़ाई बाबूजी के स्कूल में करने के बाद अब घर में बाबूजी पढ़ाने लगे हैं। घर से बाहर नहीं निकलती है। सारी सहेलियाँ ब्याह गई हैं। अभी किसी का गौना नहीं हुआ। किताबों के अलावा बाहर की दुनिया से जोड़ने वाले एक ही सूत्र हैं 'ललटेन कक्का'। ललटेन कक्का आस-पास के पाँचों टोला में लालटेन जलाने का काम करते हैं। लगभग पन्द्रह-बीस घर के बाद एक खम्भे पर लालटेन टंगी होता है। सूरज डूबते न डूबते कक्का कंधो पर लाल अंगोछा, एक हाथ में बाँस की सीढ़ी, दूसरे में तेल का डिब्बा और लालटेन लेकर हाजिर। जब भी आते खुली आवाज़ में कुछ न कुछ गाते आते। कभी भजन, कभी साखी, कभी ठुमरी, कभी रेडियो वाला गाना। फिर खम्भे पर सीढ़ी लगाकर ऊपर चढ़ना, लालटेन के शीशे को साफ करना, तेल भरना, बाती को मसलकर जले हिस्से को हटाना,फिर उसे जलाना। उनका असली नाम किसी को याद नहीं। बच्चों के लिए वो ललटेन कक्का हैं, बुजुर्गों के लिए ललटेन बचवा और सब उन्हें ललटेनवा बुलाते हैं। किरण डूबते उनकी आवाज़ कानों में पड़ी नहीं कि वह सारे काम छोड़कर, हाथ में जो कुछ भी हो उसे पटककर छत पर भागती थी। उसके घर के छत से बस हाथ भर की दूरी पर टंगा था लालटेन। कक्का अपना काम करते जाते और उसकी अनथक बातों का जवाब भी देते जाते। एक से एक किस्सा टोले-मुहल्ले की खबर, स्कूल की बातें, लाला मास्टर और उनकी लम्बी चुटिया, नेहरू जी की बातें, इमली, भटकोईयाँ, बैर, फालसा, सिनेमा और भी कितनी-कितनी बातें बातें और काम खत्म होते ही वो कुर्ते की जेब आगे कर देते। वह उसमें से मीठी गोली निकालती और खुशी से चहकती भागती। कभी-कभी बेर, भटकोईयाँ, फालसा, इमली का दोना भी हाथ लगता। वह अक्सर बाबूजी के पुस्तकालय से किताबें लाकर उन्हें देती।

''कक्का कल किताब ज़रूर ले आना, नहीं तो बाबूजी को पता चलेगा तो किताब भी बन्द, मीठी गोली भी।''

''नहीं बिटिया! तुम चिन्ता क्यों करती हो? कल एक हाथ से किताब एक हाथ से मीठी गोली।''

दोनों के बीच अक्सर ऐसे अनुबंध होते रहते।

00000

''एई! तुम कौन हो जी? कक्का कहाँ हैं ?'' उसने जैसे कुछ सुना ही नहीं। बाँस की सीढ़ी पर खुद को टिकाकर लालटेन उतारने लगा।

अरेहहह! ये तो महापंडित जी महाराज हैं। उस घटना को लगभग साल बीतने आये लेकिन वह न उस पंडित को भूल सकी न उसे कोसना छूट पाया।

''क्यों जी? तुम्हें सुनाई नहीं देता? महाढीठ भी हो? ये कक्का का काम है। तुम कहाँ से आये?'' वो बुरी तरह चिढ़-चिढ़कर बोल रही थी।

''उनके पैर में चोट लगी है'' उसने लालटेन का शीशा साफ करते हुए बस इतना ही कहा।

ऊँह!! एक तो मेरे कक्का नहीं आये, न मीठा गाना, न मीठी बात, न मीठी बोली और उस पर से ये नकचढ़ा। हे भगवान! ऐसा कुछ करो कि उसके हाथ से सब लालटेन गिरकर टूट जाय, फिर ये कभी न आये। मन ही मन यह सब सोचती, मनाती वह बेहद उदास मन से नीचे उतर गई। शाम कितनी फीकी हो गयी थी कक्का के बिना।

''आज भी कक्का नहीं आये ? क्यों?'' दूसरे दिन फिर उसने पूछा।

लड़का इस तरह अपने काम में लगा रहा जैसे उसने कुछ भी न सुना हो।

''तुम्हें एक बार में बात सुनाई नहीं देती? ऊँचा सुनते हो कि अपने आपको बड़ा लाट साहब समझते हो?''

''उनके पैर के घाव को ठीक होने में समय लगेगा। कुछ दिन नहीं आ पाएँगे।''

लड़के ने उसे पूरी तरह अनदेखा करके ऐसे कहा मानो अपने-आपसे बोल रहा हो। वह बुरी तरह झुंझला गई थी।

भगवान जी को भी कक्का ही मिले चोट लगाने के लिए? इस केले के घौद की तरह मुँह लटकौना को चोट लगाते तो पता चलता। उदास खीझ के साथ वह बुदबुदाती रही।

''शायद आज...!!'' इस उम्मीद में हर शाम उसके पाँव छत की तरफ बढ़ ही जाते। पर न कक्का आ रहे थे न शाम का रंग मीठा हो रहा था। एक...दो...तीन ...दस...बारह...दिन बीत गये थे। अब 'शायद आज' वाली उम्मीद कहीं खो गई थी, लेकिन खत्म नहीं हुआ था छत पर जाने का उसका सिलसिला। दरअसल उम्मीदें अपना रूप बदल रही थीं, चुपके-चुपके शाम के धुँधलके में हर दिन सवाल वही थे ''कक्का नहीं आये?''

जवाब भी बिल्कुल वही ''उनका पैर अभी ठीक नहीं हुआ।''

लेकिन बातें बदल रही थीं, शब्दों का माध्यम बदल रहा था और इसका पता उन बात करने वालों को भी नहीं था।

अब वह जवाब मिलते ही वहाँ से भागती नहीं थी, तबतक खड़ी रहती थी जबतक वह सब कुछ निपटाकर उस गली से बाहर नहीं निकल जाता था। वह अब भी उतना ही गम्भीर रहता था, उतना ही चुप, लेकिन अब वह सीढ़ियाँ चढ़ते हुए छत की तरफ देखता था। लालटेन जलाने के बाद उसकी पीली रौशनी के आर-पार दो जोड़ी आँखें कुछ बाँट लेती थीं। पर क्या??

लड़के की बड़ी-बड़ी लड़कियों जैसी आँखें उस नारंगी रौशनी में शंकर जी की आँखें लगती थीं

उसे।

पूरे उन्नीस दिनों के बाद टोले की शाम ललटेन कक्का की सुरीली आवाज़ के साथ झूमकर गा उठी थी। ललटेन कक्का? वह चिहुँकी। पर हमेशा की तरह सूप पटककर बेचैन होकर छत पर नहीं भागी। मीठी गोलियों की तो याद भी नहीं आई उसे।

साथ कोई और भी हो शायद? उसने सोचा। अभी-अभी तो कक्का ठीक हुए हैं। इत्ता सारा सामान अकेले थोड़े ही न ला पाएँगे।

कोई और...?? वह छत पर भागी।

कौन? किसकी उम्मीद में वह भागी?

कक्का अकेले थे। स्वस्थ हो गए थे। इतने दिनों बाद उन्हें देखना अच्छा लग रहा था, लेकिन.....हाँ यही लेकिन जो अपने भीतर जाने कितने रहस्य छुपाए रखता है, जिसे खुलने में कभी-कभी छत्तीस साल लग जाते हैं।

''आ हा हा हा हा। बिटिया को देखके तो जी जुड़ा गया। कैसे हो बिटिया?''

उसने सर हिलाकर ''ठीक हूँ'' का इशारा किया। उसकी बातें जो कक्का को देखते ही अनथक शुरू हो जाती थीं कहाँ खो गईं? उसे क्या रीता हुआ लग रहा था?

''उपलवा तुमको मीठी गोली देता था ना रोज़?''

''कौन उपलवा?'' उसने चौंककर पूछा?

''हमारा बिटवा। वही तो आता था ना हमारा काम संभालने। अरे हम तो हफ्ता दिन पहले ही एकदम ठीक हो गए थे लेकिन वही एकदम आने नहीं देता था। आज जबरदस्ती करके आए हैं बिटिया। अरे तुमसे जो किताब सब ले जाते हैं उसके लिए ही तो। न कोई संगी न साथी। किताब-कॉपी-कलम बस्स। कहता है गुरुजी की तरह बनना है।'' कक्का अपनी रौ में थे। उनका काम ही मानों उनका प्रेम था। जिन्हें अपने काम से प्यार हो, उसे करते हुए उनके चेहरे पर अद्भुत चमक होती है, सन्तोष की चमक। कक्का के चेहरे पर वही चमक थी।

''हम रोज़ के रोज़ उसको मीठी गोली देते थे कि मेरी देवी बिटिया का परसाद है ये। ना दो तो करजा भी चढ़ेगा, देवी माँ नाराज़ भी हो जाएँगीं, दिया था ?''

पर वह कहाँ सुन रही थी कि कक्का क्या कह रहे हैं। उसके दिमाग में तो एक ही बात घूम रही थी कि वह कक्का का बेटा है।

कक्का का बेटा! एक बार बता नहीं सकता था? समझता क्या है अपने आपको? ठीक ही नाम है उपला, गोबर, गोईंठा...। उपला-फुपला!!!

''कहाँ खोई हो बिटिया? वो तुमको मीठी गोली नहीं देता था क्या?''

वह चौंकी। झूठमूठ सर हिलाकर जताया कि उसे उसका हिस्सा रोज़ मिलता था। नकचढ़ा, मुँहलटकौना और लाट साहब ही नहीं एक नम्बर का जीभचट्ट भी है। मेरा हिस्सा पूरा का पूरा खुद खा गया। अब्भी कक्का को बता दें तो सब मनसोखी निकल जाएगी। उसकी शिकायत दर-असल किस

अब वह जवाब मिलते ही वहाँ से भागती नहीं थी, तबतक खड़ी रहती थी जबतक वह सबकुछ निपटाकर उस गली से बाहर नहीं निकल जाता था। वह अब भी उतना ही गम्भीर रहता था, उतना ही चुप, लेकिन अब वह सीढ़ियाँ चढ़ते हुए छत की तरफ देखता था। लालटेन जलाने के बाद उसकी पीली रौशनी के आर-पार दो जोड़ी आँखें कुछ बाँट लेती थीं। पर क्या?? लड़के की बड़ी-बड़ी लड़कियों जैसी आँखें उस नारंगी रौशनी में शंकर जी की आँखें लगती थीं उसे।

बात की थी? गोलियों की? तो फिर जिससे इतनी शिकायत थी उसे बचाने के लिए झूठ क्यों कहा? क्या उसे पता भी था वह ये सब क्यों कर रही है? वह उदासी भरी नाराज़गी से भुनभुनाती उतर आई।

पर अभी तो कक्का लालटेन जला भी नहीं पाए थे, जेब आगे बढ़ा भी नहीं पाए थे! फिर?? फिर ऐसा और कितना कुछ होना बाकी था जो पहली बार होना था अपने-आप।

''बिटिया की तबियत ठीक नहीं है का? दो दिन से छत पर नहीं आई।'' कक्का अम्मा से पूछ रहे थे।

''नहीं, तबियत तो ठीक है, आजकल पढ़ाई में मन लगा रही है। इम्तहान देगी ना प्राइवेट।''

''अच्छा!!!'' कक्का की आवाज़ की उदासी ने उसे ग्लानि से भर दिया। वह दौड़कर दालान पर आई और उनकी अपना धान निकालने के लिए जेब में हाथ डाल दिया।

''नहीं बिटिया रानी ये तो तुमको उसी जगह पर, उसी समय मिलेगा। जहाँ मन्दिर वहीं देवी का परसाद।''

इस तरह बातों का, फरमाईशी गानों का, गोलियों का सिलसिला फिर शुरू हो गया।

सिनेमा वाला परचा बाँट्या था कक्का अबकी सोमवार?

हाँ बिटिया। परचा बाँट्या था और भोंपू से परचार भी कर रहा था। 'आनंदी' में 'अनारकली' लगी है। आ हा हा हा। बहुत कमाल गीत है उसमें

''कौन सा गीत कक्का? सुनाओ न कक्का।''

''ये ज़िन्दगी उसी की है, जो किसी का हो गया, प्यार ही में खो गया...''

''क्या गीत है। इतनी मीठी आवाज़, सीधो कलेजा को छूने वाली। बिटिया रानी कभी पूरा गीत सुनाएँगे।''

''ये प्यार क्या होता है कक्का?''

''बड़ा अनमोल चीज होता है रानी। प्यार न हो तो आदमी राच्छस हो जाय।''

''पर ये होता क्या है?''

''अब ये हम कैसे बताएँ हो बिटिया। तुम जो अपने अम्मा, बाबूजी से करती हो सो प्यार है, तेरे अम्मा-बाबूजी, हम, तुमसे जो करते हैं सो ही प्यार है। प्यार आदमी को देवता बना देता है। राधाजी प्रेम के कारण ही तो देवी हो गईं। ऐसा होता है प्रेम।''

''आप भी उपला से प्यार करते हैं?'' उस गोबर-गोईठा से भी कोई प्यार कर सकता है क्या, उसने मन ही मन सोचा।

''हाँ बिटिया। संसार में वही तो मेरा सब कुछ है। दो बरस का था जब माँ चल बसी। वही जीने का सहारा बना, वही जीने का बहाना भी।''

वह भी आपसे प्यार करता है? वह पूछना चाहती थी, पर क्यों नहीं पूछ पायी?

वह बच्ची थी? या उसके जाने समझे बिना भीतर ही भीतर कुछ बड़ा हो रहा था।

''मनोरमा की अम्मा, कल उप्पल आएगा। उसको पुस्तकालय की चाभी दे देना। अब से वही पुस्तकालय की देख-रेख करेगा। सुबह आकर खोलेगा, पढ़ाई भी करेगा और सब हिसाब-किताब भी देख दिया करेगा।''

''अजी! चाभी तो 'रमा' अपने पास रखती है। दिनभर उसकी डोरी अँगुली में फँसाए घूमती रहती है। मुँह फूल जाएगा उसका, आप ही बतिया लें उससे।''

पर बाबूजी को बतियाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। उसने सुन लिया था और मुँह फुला चुकी थी?

मैं किसी उप्पल-फुत्फल को चाभी नहीं दूँगी। मैं क्या देख-भाल करना, हिसाब-किताब करना नहीं जानती। ये मेरा घर है, मेरा पुस्तकालय है, इसकी चाभी किसी और को क्यों दूँ?

बाबूजी जानते थे उससे कुछ भी कहना बेकार है। लड़का जब आएगा तो चुपचाप चाभी सौंप देगी, मन से या बेमन से।

रातभर उसे सपना आता रहा कि एक लम्बा-चौड़ा, बड़े-बड़े दाँत, बड़े-बड़े नाखूनों वाला आदमी उसकी चाभी छीनने की कोशिश कर रहा है। वह भाग रही थी कि अचानक उस राक्षस जैसे आदमी ने उसकी कलाई पकड़ ली और चाभी उसके हाथ से छूट गयी।

वह चीखकर उठी तो उसकी अम्मा उसकी कलाई थामे बाबूजी से कह रही थीं।

''इसको देखिए जरा, चाभी को ऐसे मुट्ठी में कसकर सोई है जैसे कोई इसका खजाना छीन रहा हो। इसकी उमर तक दोनों बहनें गवना गई थीं और इसमें अभी तक लड़कपन है।'' अम्मा ने उसकी हथेली से चाभी निकाल ली थी।

देखूँ जरा इस होनहार उप्पल-फुत्फल को। वह भौहें चढ़ाए अम्मा-बाबूजी के पीछे-पीछे दालान तक गई।

वह भीतर ही भीतर खुद को पराजित महसूस कर रही थी। उसे अपना यह अधिकार किसी को दिया जाना अपने ऊपर अविश्वास किये जाने जैसा लग रहा था।

''अरे! यह गोब्बर, गोईंठा यहाँ क्यों आया है।'' लड़के को देखकर उसके मुँह से निकला।

उसे ध्यान आया कि अपने बाल उसने नहीं संवारे हैं।

''लो उत्पल बेटा चाभी लो। स्कूल का प्रधानाध्यापक बन जाने के बाद जिम्मेदारियाँ इतनी बढ़ गईं हैं कि समय ही नहीं मिलता। अब तुम इसकी सारी जिम्मेदारी संभालो। कोई कठिनाई हो तो मुझसे या 'मनोरमा' से पूछ लेना।''

मनोरमा की तरफ जब बाबूजी ने इशारा किया तो न लड़का मनोरमा की तरफ देख रहा था, न मनोरमा अब गोबर की तरफ।

''जी गुरुजी!'' बस इतना ही कह पाया वो।

''ए अम्मा! बाबूजी इस उपला को उत्पल क्यों कह रहे हैं।''

''दुर्ररररे लौंडिया। उसका यही तो असल नाम है। तेरे बाबूजी ने ही रखा था। इतना टेढ़ा नाम बोलने में तो सबकी जीभ टेढ़ी हो जाय। इसलिए प्यार से सब उपला बुलाते हैं।''

''तो...''

अब उसके घर में एक ऐसे का होना तय हो चुका था जिससे उसे ढेरों शिकायतें थीं। जो उसके लिए महापंडित, लाट साहब, गोबर-गोईंठा, मुँह लटकौना, नकचढ़ा और जीभ-चट्ट ही नहीं उसके अधिकारों का हरणकर्ता भी था। पर सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि जिसके होने से भी उसे परेशानी थी और न होने से भी। दोनों हाथ पीछे बाँधकर, माथा उठाए भौंहों पर बल डालकर बीच-बीच में निरीक्षण करने भी जा चुकी थी; यह जताने के लिए कि चाभी मिल जाने से वह मालिक नहीं हो गया। मालकिन तो वही है।

''सुबह से लड़का सर झुकाए मूर्त्ती की तरह वहीं बैठा पढ़ रहा है। जा उसे बतासा और पानी दे आ।''

अम्मा ने लोटे में पानी और काँसे की तश्तरी में गुड़ वाला बतासा देते हुए कहा। मैं नहीं दूँगी। मैं क्यों दूँ। मैं उसकी नौकर हूँ क्या। वो हमारा नौकर है। उसको कहो आये और आकर ले जाय।

तू इतनी चिड़चिड़ी क्यों हो रही है? अम्मा ने लाड़ से खींच लिया उसे। बेटा जी! चाभी उसे दिया गया है देखभाल, हिसाब-किताब करने के लिए। तुम्हारा ही तो काम करेगा ना। उसका अपना कुछ थोड़े ही है, सब तेरा ही तो है। दूसरी वाली चाभी तू रख लेना। अच्छा छोड़ बेसरा की माई को कहती हूँ, दे आएगी।

वह निरन्तर उससे दूर जाना चाहती थी। उसकी आँखों को, उसकी चुप्पी को, सपने में उसके आने को, उसके वजूद को ही पूरा का पूरा नकार देना चाहती थी, और यह सब चाहते हुए वह लगातार उसकी ओर बढ़ रही थी। अब बेसरा की माई वहाँ नहीं जाती थी, न अम्मा को कुछ कहने की ज़रूरत पड़ती थी। दस बजते ही बतासा-पानी या गुड़ का शर्बत उसके हाथों में होता था, जो चुपचाप किताबों पर सर झुकाए लाट साहब के सामने रख दिया जाता था।

उस दिन वह लोटा रखकर चली नहीं आयी वहीं खड़ी रही, उसे अपनी आँखों के सामने शर्बत पीता हुआ देखने के लिए। लेकिन वह बिना सर उठाए पता नहीं क्या कॉपी में गोजता रहा।

''क्यों जी गोदना गोद रहे हो क्या कॉपी में कि थोड़ा सा इधर-उधर हो गया तो खराब हो जाएगा?'' लड़के ने चौंककर उसकी तरफ देखा।

उसकी आँखों का सामना करना इतना आसान था क्या? शंकर भगवान जैसी तपस्या वाली आँखें पता नहीं कितना कुछ कहती कितना कुछ छुपाती आँखें कंठ सूखने लगा था उसका। सारी योजना, सारा मालिकाना रुआब दिखाने का झूठा नाटक, तुनक मिजाजी पता नहीं कहाँ काफूर होने लगी। पर वह ज़िद्द में थी।

''शर्बत पीते क्यों नहीं?'' उसकी धीमी, काँपती आवाज़ मानों कंठ में ही फँसी रह गयी। छिः यह मुझे डरपोक समझेगा। उसने खुद को झिड़का। ''मैंने कहा शर्बत क्यों नहीं पीते? हमारे पीछे खिड़की से फेंक डालते हो क्या? कोई टोना-टोटका करते हैं क्या हम?''

कैसा लाल-लाल हो रहा है गोबर-गोईंठा का चेहरा। उसका आत्मविश्वास बढ़ने लगा था।

उसने बिना कुछ कहे एक साँस में सारा शर्बत पी डाला। पर उसकी तपस्या वाली आँखें कहाँ फँसी रह गयी थीं? अरे शर्बत की मिठास का पता भी चला? शर्बत में गुड़ की जगह नमक भी होता तो क्या वह जान पाता?

अपने चेहरे पर जाने कितने कुछ गढ़ती मिटाती उसकी आँखों का सामना करना अब उसके लिए सम्भव नहीं था। सीढ़ियाँ उतरते हुए उसके पाँव जाने कहाँ पड़ रहे थे। खामोशी की अपनी एक आवाज़ होती है। एक ऐसी आवाज़ जो सरसराती हुई हमारे भीतर तक पहुँचती है और दिल-दिमाग को अपना कब्जे में ले लेती है।

दोनों कोहराम मचाती खामोशी से घिर चुके थे।

''अम्मा मुझे खाना बनाना सिखला दो। मेरी सब सहेलियाँ मुझे चिढ़ाती हैं कि पढ़ने के अलावा मुझे कुछ नहीं आता। मैं जिन्दगी भर दुलारी नन्हकू रहूँगी। पेट पोछनी।''

''अच्छा? पेट पोछनी तो तू है ही, दुलारी भी है। अब ये बता महारानी कि कल तक तरकारी काटने के लिए कहने पर नाक-भौं चढ़ा लेती थी। आज क्या हो गया कि खाना बनाना सीखेंगी महारानी जी।''

''तो क्या? कल मलतिया ने कढ़ी बनाया था और मुझसे कह रही थी कि मैं ये सब कब्भी नहीं कर पाऊँगी। मुझे अब्भी ही सीखना है। अब्भी ही।''

कल...हाँ कल ही तो बाबूजी अम्मा से कह रहे थे उत्पल का भी खाना बना दिया करना। बिना कुछ खाए-पिए दिनभर यहाँ पढ़ता, काम करता रहता है। इसीलिए खाने-पीने को लेकर बहुत लापरवाह है। जब तक यहाँ आता है उसके भी खाने-पीने की व्यवस्था यहाँ कर दो।और आज से, अभी से वह खाना बनाना सीख रही थी। बना रही थी, परोस रही थी और चुपचाप कोई अपना हिस्सा समेट-सहेज रहा था।

''रमा चौदहवाँ पूरा करने वाली है। देखती हूँ खाना भी बनाने लगी है। शांत हो गई है। घर संभालने लायक हो गई है। इसकी दीदीया लोग तो इस उमर तक ससुराल जा चुकी थीं।''

''हाँ सो तो है मनोरमा की अम्मा। वैसे 'रमा' अपनी बहनों से अलग रुचि की है और समय भी थोड़ा बदला है। पर अब सोचना होगा। समझ रहा हूँ मैं।'' लाड़ली बेटी के पराए हो जाने की कल्पना से बाबूजी की आवाज़ भर आयी थी।

चौक से यह सब सुनती हुई वह कुछ नहीं समझ रही थी। वह कुछ सुन ही कहाँ रही थी। वह तो नीम की गाछ पर कोयल की बोली की मिठास में गुम थी। पहले उसकी बोली इतनी मीठी तो नहीं लगती थी।

अब वह धोती पहनने लगी है। आजकल किसी की छोटी सी तकलीफ पर उसकी आँखें भर आती हैं। उसे अपना मन कैसा तो बड़ा-बड़ा सा लगता है जैसे सारी दुनिया समा गयी हो उसमें अम्मा-बाबूजी की ही हर बात मानती है। शाम को ढलता सूरज देखती है और खो जाती है। रात को आँखों पर हथेलियाँ रखती है तो भीतर एक चाँद निकल आता है। चाँद में कुछ और भी झिलमिलाता है। वह सपनों में खो जाती है। बारिश की आवाज़ सुरीली लगती है। अब उसके गाने के अभ्यास का समय बदल गया है, गाने बदल गये हैं, गानों के बीच का तारतम्य बदल गया है। यह सब क्यों हो रहा है, वह नहीं जानती। वह दरअसल यही नहीं जानती कि यह सब हो रहा है। कुछ समा गया था उसके भीतर जो खामोशी से उसे गढ़ रहा था। अब वह पुस्तकालय में मालिकाना भाव से नहीं जाती। यह भाव अब रहा ही कहाँ उसके भीतर। तर्कों-बहसों में जीने वाली 'रमा' कहीं खो गई है। वह चुपचाप बैठती है, किताबों में आँखें गड़ाए एक जोड़ी आँखें बिना उसकी तरफ देखे, उसके भीतर बाहर कुछ उकेरती रहती हैं। वह भर जाती है। हर दिन वह और-और अच्छा सा महसूस करती है।

अपने चेहरे पर जाने कितने कुछ गढ़ती मिटाती उसकी आँखों का सामना करना अब उसके लिए सम्भव नहीं था। सीढ़ियाँ उतरते हुए उसके पाँव जाने कहाँ पड़ रहे थे। खामोशी की अपनी एक आवाज होती है। एक ऐसी आवाज जो सरसराती हुई हमारे भीतर तक पहुँचती है और दिल-दिमाग को अपना कब्जे में ले लेती है। दोनों कोहराम मचाती खामोशी से घिर चुके थे।

''उसकी आवाज सुने बहुत दिन हो गये, वह सोचती है।''

''तरकारी में आज बिल्कुल मिर्च नहीं डालूँगी, कल वह ठीक से खा नहीं पाया था, वह निर्णय लेती है।''

''कल उसकी आँखें लाल-लाल, भारी-भारी थीं, कहीं उसे बुखार तो नहीं आया। चुपके से उसकी ओर देखने वाली 'वह' चिन्ता करती है।''

तालाब पर की मिट्टी से बाल धोया था उसने। बिना तेल-कंघी किए, खुले बालों में चली गई थी किताबों की उस दुनिया में, जहाँ एक और दुनिया बन रही थी और बनाने वाले को इसका पता तक नहीं था। पहली बार उसने उसे नज़रें भरकर देखा था और देखता रह गया था, अपलक। वह पलट गयी। काश उसे जूड़ा करना आता तो अभी बालों को समेट लेती। घुँघराले बाल धुलने के बाद फैलकर कैसे तो हो जाते हैं। धत्!! नहीं-नहीं यही ठीक है, इनकी ओट तो है।

वह उसे खाने के लिए बुलाने आयी थी ना। अचानक उसे याद आया।

उसे बस कहना होता था 'खाना' और वह उठकर चुपचाप उसके पीछे चला आता था। चापाकल से हाथ-पाँव-मुँह धोता, खाना खा लेता, कभी परोसा नहीं लेता। एक दिन आजीजी में उसने थाली में एक ही रोटी परोसी। खा चुकने पर दूसरा डालने लगी तो उसने थाली के उपर एकदम से हथेली का

रोका लगा दिया। दिनभर वह ग्लानि में रही। खाना नहीं खाया गया। बार-बार रोने-रोने जैसा जी होता रहा था।

वह उसे 'खाना' कहने के लिए पलटी तो उसे ही देखती आँखें झट से किताब पर झुक गईं। उस किताब के पन्ने के सादे हिस्से पर उलटे कलम से पता नहीं वह क्या लिखने लगा। ''खाना'' उसने धीरे से कहा। वह चुपचाप उठा हमेशा की तरह और सब कुछ वैसा ही हुआ जैसा होता रहा था।

उसके जाते ही अपनी चाभी से पुस्तकालय खोला। जिस किताब को वह पढ़ रहा था उसे खोलकर पता नहीं क्या पाने की उम्मीद करने लगी।

ब्यालीसवाँ पेज मुड़ा हुआ था। तो क्या उसे पता था, मैं इसे देखने आऊँगी। उसके भीतर कुछ काँप गया।

कलम के पिछले हिस्से से गड़ा-गड़ाकर ऐसे लिखा था कि अक्षर उभर आए थे।

'हम मन की दरिया में डूबे
कैसी नैया, क्या मझधाार...'

'आपके बाल बहुत सुन्दर हैं और...' और...? वह यह जानने के लिए बेचैन हो गई थी पर इस बेचैनी का कोई हल नहीं था। वह उससे पूछ नहीं सकती थी। वह पूछती तो वह जान जो जाता कि गोबर जो उसके बारे में सोचता है, वह ठीक है। वह उसकी सोच के अनुसार किताब ढूँढने आई थी। उसने किताब के उस पन्ने को ठीक-ठीक वैसे ही मोड़ दिया। अब अक्सर चोरी-चोरी वह यह देखती रहती थी कि उलटे कलम से वह फिर कुछ लिख रहा है कि नहीं।

जिस दिन किताब के पन्नों पर उसने 'मनोरमा', 'मनोरमा' बार-बार उकेरा देखा था अम्मा से कहा था अम्मा तुम लोग मुझे मनोरमा क्यों नहीं कहती। 'रमा' बच्चों जैसा नाम लगता है। अब मैं बड़ी हो गयी हूँ।

हाँ बेटा सो तो देख रही हूँ कि तू बड़ी हो गई है। पाँव दबाती बेटी का हाथ खींचकर अम्मा ने कहा था। तेरी सब सखियों का ब्याह हुए दो साल हो गया, अम्मा ने चिन्तित होकर कहा।

आजकल ठाकुर चाचा खूब आने लगे थे। उनके आने पर अम्मा खूब उत्साह में रहती थीं। पता नहीं क्या चुपके-चुपके बतियाती रहती थीं।

उस दिन वह नहीं आया था। नौ बज चुके थे। उसने खुद ही पुस्तकालय खोला।

''आज चौका में बिटिया का जाने का मन नहीं है क्या?''

''नहीं अम्माँ। आज जी ठीक नहीं लग रहा।'' वह कुर्सी पर पीछे टेक लेकर बैठ गयी। उसके हाथ-पैर में मानों जान ही नहीं हो। वह पन्ना सामने खुला था जिसके पन्ने पर उसके नाम सैकड़ों बार उकेरे गए थे। शब्द खो गये थे पर उसे उतने ही साफ-साफ दिख रहे थे।

'मैं क्या जानूँ क्या जादू है
इन दो मतवारे नैनों में
एक अथाह सागर सा है
इन दो मतवारे नैनों में
जादू है... जादू है।'

ललटेन कक्का से कई बार सुने इस गाने को गाते हुए जाने क्यों उसका गला रुँधाने लगा, आँखों से जैसे कोई बाँध टूटकर बह निकला हो। अचानक उसे अपनी पीठ पर सरसराहट जैसी महसूस हुई। चौंककर आँखें खोलकर उसने पीछे देखा। उसके ठीक पीछे, इतना नज़दीक कि उसका कुर्ता, उसके बालों को छू रहे थे, वह खड़ा था। एकदम जड़, स्तब्ध, वक्त को रोक देने की अदम्य कामना के साथ। कैसी जद्दोजहद थी उसके चेहरे पर। वह काँप उठी थी। 'चोर कहीं के' जैसा कुछ कहना चाहती थी पर जुबान पर जैसे 'ताला' लगा हो। वह भागना चाहती थी पर जान जैसे किसी ने खींच लिया हो।

''रमा बिटिया ठाकुर चाचा आये हैं। भेली का शर्बत और अगरौटा लेते आना।''

अम्मा की आवाज़ ने उसे धक्का दिया। उसे राहत सी भी मिली। उसके बाद बार-बार वह चौंकती रही थी, मानों एक साया उसके साथ-साथ चल रहा हो। वह सहम रही थी, डर रही थी, संकोच हो रहा था, अच्छा लग रहा था और...और...रोने का मन हो रहा था।

''वहाँ तो सब कुछ पक्का हो गया भौजी। लड़का तो हीरा है हीरा। धनबाद से इंजीनियरिंग किया है। रमा दसवीं की प्राइवेट परीक्षा देगी सुनकर खुश हो गया। आगे पढ़ाएगा, कह रहा था। एक ही दिक्कत है भौजी। लड़की का गौना दो दिन में कर देना होगा।''

उस रात किताब के आख़िरी पन्ने पर उकेरे गये 'मनोत्पला' पर धीमे-धीमे उँगलियाँ फिराते हुए धत्!! कहकर वो हँस पड़ी थी।

उसी रात बाबूजी के सिरहाने पानी का लोटा रखते हुए उसने सुना था, अम्मा कह रही थीं

''जल्दी ही रमा का छेका-बरेछा करना होगा। लड़का हाथ से निकलना नहीं चाहिए।''

रमा के साथ-साथ उसके बाहर-भीतर निरन्तर उसके साथ रहने वाला साया भी सबकुछ सुन रहा था।

पहली बार स्याही से लिखा मिला था।

'आपकी शादी हो रही है?'

स्याही कुछ फैल गयी थी

पहली बार उसने भी कुछ लिखा था। ठीक उसी के नीचे 'हाँ'

वहाँ की स्याही भी कुछ फैल गई थी।

शादी-ब्याह की तैयारी में उत्पल से बाबूजी-अम्मा को बहुत मदद मिल रही थी। दीदी जल्दी आ पाने की स्थिति में नहीं थीं। भैया की परीक्षा चल रही थी, वह आ नहीं सकता था। वह भी गेहूँ धोने-सुखाने, चावल छाँटने, दाल दरने में अम्मा की मदद करती रहती थी। किताबों का वह स्वप्निल संसार अब बन्द सा ही हो गया था। शादी के दस दिन बचे थे। उसने पुस्तकालय का दरवाज़ा खुला देखा। वह कब वहाँ दरवाज़े पर खड़ी हो गई उसे पता ही नहीं चला। वह अकेला खड़ा था एकदम चुपचाप, अचल, वह होकर भी मानो नहीं था।

दोनों को एक दूसरे के अनकहों को सुनने की, आहट पहचानने की, होने को महसूस करने की ऐसी आदत पड़ चुकी थी कि वह समझ गया 'मनोरमा' उसके पीछे खड़ी है। वह चौंका नहीं। उसे पलटकर अपनी ओर देखते हुए पाकर मनोरमा चौंकी। वह पास आया। पहली और आख़िरी बार सीधे-सीधे उसने मनोरमा से कुछ कहा

''वहाँ सबको बहुत सम्मान और प्यार देना। तुम्हारा होना प्रेम देने और प्रेम पाने के लिए है। जो मिले उसे हृदय से स्वीकार करना। जो नहीं है उसके लिए, जो है, उसकी अवहेलना करना अपराध होता है।''

फिर उसने मनोरमा की हथेलियों में अपनी

मुट्ठियों से कुछ भरकर उसकी हथेली भी बन्द कर दी। ''मैं हमेशा तुम्हारा कर्जदार रहना चाहता था। पर उसके लिए अब इसकी जरूरत नहीं, इसीलिए लौटा रहा हूँ।'' अपने माथे पर एक काँपती हथेली वह महसूस करती रही। उसकी आँखें बहती रही। जाओ, नीचे बहुत काम है। हथेली का धीरे से हटाया जाना उसके कलेजे में हूक भर रहा था। वह अनंतकाल तक ऐसी ही दशा में रहना चाहती थी।

पर...उसने सर उठाकर उसकी ओर देखा।आँखों की इस भाषा को, इस भाषा में लिखी कहानी को कौन पढ़ पाया। कोई भी तो नहीं।

''आप बहुत अच्छा गाती हैं, इसे बनाए रखिएगा'' कहकर उसने अपना चेहरा घुमा लिया।

उसने मुट्ठियों में भरी मीठी गोलियाँ गिनी थी। बीस। उन्नीस कक्का की ओर से और बीसवाँ?? यह कैसा कर्ज था?

विवाह मंडप में उसने सप्तपदी स्वयं से बोला था। आज इस क्षण को, इस काल को, इस अग्नि,, आकाश को साक्षी मानकर मैं अपने बीते कल का त्याग करती हूँ। अपने परिचय का त्याग करती हूँ,अपनी भावनाओं, तमाम सपनों का त्याग करती हूँ।

वह पति के साथ धनबाद आ गयी थी। सुन्दर, सुशिक्षित, प्रबुद्ध, उदार पति के साथ निरन्तर विकास करती हुई वह कॉलेज में लेक्चरार हो गई। बहुत खुश थी वह और बहुत खुश था उसका पति जयेन्द्र, उसके ससुराल के लोग, उसके मित्रगण,उसके विद्यार्थी। शादी के नौ बरस बाद जब पता चला वह माँ बनने वाली है तो खुशियाँ सँभाले नहीं संभल रही थीं। कैसा रोमांचक अनुभव था उसके लिए। बिल्कुल अपने जैसा अपने ही भीतर कुछ गढ़ना, अपने ही रक्त, अपनी ही साँस से। जयेन्द्र के लिए तो मानों वही बच्ची हो गई थी। हर वक्त उसकी चिन्ता करते रहते थे। ''देखना मुझे बेटी होगी।'' जयेन्द्र के कंधे पर सर रखकर उसने कहा था।

अच्छा? तो तुम्हें पता चल गया। जयेन्द्र प्यार से उसके गाल को थपथपाकर हँस पड़े थे।

> ''वहाँ सबको बहुत सम्मान और प्यार देना। तुम्हारा होना प्रेम देने और प्रेम पाने के लिए है। जो मिले उसे हृदय से स्वीकार करना। जो नहीं है उसके लिए, जो है, उसकी अवहेलना करना अपराध होता है।''

''लो भई ज्योतिषी जी आ गई हमारी बेटी।'' जयेन्द्र ने बिटिया को उसके सीने से लगा दिया। ''मनोत्पला' नाम रखेंगे इसका।'' बिल्कुल अनायास, अनजाने उसके मुँह से निकला।

''अच्छा तो बेटी होने की अपनी उम्मीद पर तुम्हें इतना भरोसा था कि नाम भी सोच रखा था।''

'' नहीं जय। पहले तो कभी नहीं सोचा। अभी-अभी मन में आया अचानक।''

जयेन्द्र मुस्कुरा दिए थे ''हाँ विदुषी माँ से ऐसे ही किसी नाम की उम्मीद थी। वैसे नाम अच्छा है।'' जयेन्द्र को नाम पसन्द आया, जानकर बहुत सन्तोष हुआ था उसे।

चन्द्रपुर में धनबाद से भी ज़्यादा गर्मी पड़ती थी। मनोत्पला दो साल की हो चली थी। उसके पीछे भागते-भागते गर्मियों में वह और परेशान हो जाती थी। यही सब देखते हुए जयेन्द्र अक्सर कहते बाल छोटे करवा लो।

''मुझे तुम्हारा ये केश-प्रेम समझ में नहीं आता। औरतें तो बाल इसीलिए नहीं कटवा पातीं कि पतियों को पसन्द नहीं और यहाँ पति कहता रहता है बाल छोटे करा लो और पत्नी है कि दुनिया भर की परेशानियाँ मोल लेंगी पर बालों की देखभाल में कभी कोई कमी नहीं।''

वह हमेशा हँसकर टाल देती। लेकिन वह ऐसा जानबूझ कर नहीं करती थी।

मनोत्पला को बचपन से संगीत में लगाव था। जबतक तीन-चार साल की थी तभी से तानपूरा पर अभ्यास करती माँ के साथ बिल्कुल खामोशी से बैठी रहती थी।

''माँ! मैंने सिर्फ दो चीज़ों के लिए आपको बहुत कांशस देखा है। एक आपके बाल, दूसरा आपका संगीत अभ्यास। वर्ना तो दो रंग के चप्पल पहनकर आप कॉलेज आ जाती हैं। मेरी सहेलियाँ पता है क्या कहती हैं? कहती हैं कि तुम्हारी माँ ब्युटी कांशस नहीं हैं, इसीलिए और ज्यादा ब्युटीफुल लगती हैं।''

मनोत्पला की चहकती आवाज़ पर वह झेंप जाती थी। छब्बीस की हो गयी मनोत्पला को अभी तीन साल शादी नहीं करना था। वह एक संगीत अकादमी चलाती है और उसे अपने अकादमी को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक ले जाना है। कितनी खुश थी मनोत्पला। पाँव मानों ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे। उसकी अकादमी को किसी बहुत बड़ी कम्पनी की तरफ से स्पांसर किया गया था, लाइव कंसर्ट के लिए। माँ! आप हमेशा मेरे लिए बेस्ट का चुनाव करती हैं। आप ही बताइए न कौन सा गाना गाऊँ मैं?

और मनोत्पला का अभ्यास शुरू हो गया था।

''बहुत अच्छा गाती हो, इसे बनाए रखना'' इस काँपती, भींगी, धुँधलाई आवाज़ के ठीक पहले मनोत्पला मंच पर गा रही थी।

''मैं क्या जानूँ क्या जादू है
इन दो मतवारे नैनों में''।

❐

RBC Dominion Securities

Professional wealth management since 1901

Hira Joshi, CFP
Vice President & Investment Advisor

RBC Dominion Securities Inc.
260 East Beaver Creek Road
Suite 500
Richmond Hill, Ontario L4B 3M3

Tel: (905) 764-3582
Fax: (905) 764-7324
1 800 268-6959

hira.joshi@rbc.com

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
पसंद लेखकों की

दस कहानियाँ नई सदी की पसंद लेखकों की

विजय राय (सम्पादक लमही)
1 मेंगोसिल (उदय प्रकाश)
2 ख़्वाजा ओ मेरे पीर (शिवमूर्ती)
3 क्विजमास्टर (पंकज मित्र)
4 स्याही में सुर्खाब के पंख (अल्पना मिश्र)
5 संझा (किरण सिंह)
6 हनियां (विवेक मिश्र)
7 मधुवन में राधिका (ग़ज़ल गैज़म)
8 कठपुतलियाँ (मनीषा कुलश्रेष्ठ)
9 महुआ घटवारिन (पंकज सुबीर)
10 उत्तरप्रदेश की खिड़की(विमलचन्द्र पाण्डेय)

स्वाति तिवारी (कहानीकार)
1 स्वाँग (मनीषा कुलश्रेष्ठ)
2 लाश की तरह ठंडा (पंकज सुबीर)
3 तीन सहेलियाँ तीन प्रेमी (आकांक्षा पारे)
4 संजा (किरण सिंह)
5 बावड़ी (कविता)
6 स्याही में सुर्खाब के पंख (अल्पना मिश्र)
7 युग (वंदना राग)
8 बनतो बुआ (वंदना शुक्ल)
9 ओ मरियम (मनीषा कुलश्रेष्ठ)
10 कुफ़्र (पंकज सुबीर)

महेन्द्र दवेसर दीपक (कहानीकार)
1 क़ब्र का मुनाफ़ा (तेजेन्द्र शर्मा)
2 तिरस्कार (पद्मेश गुप्त)
3 चमड़े का सिक्का (गौतम सचदेव)
4 ममता (स्वर्गीय पुष्पा भार्गव)
5 दूसरी बार (कादम्बरी मेहरा)
6 उसकी ज़मीन (उषा वर्मा
7 मेरे हिस्से की धूप (ज़किया ज़ुबेरी)
8 मेरा अपराध क्या था (उषाराजे सक्सेना)
9 विसर्जन (शैल अग्रवाल)
10 प्रेयसी (दिव्या माथुर)

कविता (कहानीकार)
1 पांड़े कौन कुमति तोहे लागी(काशीनाथ सिंह)
2 मोहनदास (उदय प्रकाश)
3 टावर ऑफ साइलेंस (मनोज रूपड़ा)
4 टेक बे त टेक न त गो (नीलाक्षी सिंह)
5 कथा के गैरजरूरी प्रदेश में (अल्पना मिश्र)
6 यूटोपिया (वंदना राग)
7 जानकी पुल (प्रभात रंजन)
8 लूगड़ी का सपना (सत्यनारायण पटेल)
9 पानी (मनोज कुमार पांडे)
10 एक मधुर सपना (प्रेम रंजन अनिमेष)

जयश्री राय (कहानीकार)
1 पानी (मनोज कुमार पांडे)
2 इन्द्रधनुष के पार (गीताश्री)
3 यस सर (अपूर्व जोशी)
4 सात फेरे (सोनाली सिंह)
5 मेरा अज्ञात मुझे बुलाता है (स्नोवा बार्नो)
6 महुआ माज़ी(चन्द्र बिन्दु)
7 सत्यापित (कैलाश वानखेड़े)
8 पालवा (भालचन्द्र जोशी)
9 टावर ऑफ साइलेंस (मनोज रूपड़ा)
10 पड़ताल (पंकज मित्र)

पसंद आलोचकों की

राकेश बिहारी
1 मेंगोसिल (उदय प्रकाश)
2 दास्तान गो (प्रियंवद)
3 टॉवर ऑफ सायलेंस(मनोज रूपड़ा)
4 अतिरिक्त का अकस्मात (महेश कटारे)
5 पालवा (भालचन्द्र जोशी)
6 टेक बे त टेक न त गो (नीलाक्षी सिंह)
7 उलटबाँसी (कविता)
8 खारा पानी (जयश्री राय)
9 लूगड़ी का सपना (सत्यनारायण पटेल)
10 सत्यापित (कैलाश वानखेड़े)
11 पड़ताल (पंकज मित्र)
12 यूटोपिया (वंदना राग)
13 पानी (मनोज कुमार पांडे)
14 कथा के गैरजरूरी प्रदेश में (अल्पना मिश्र)
15 लापता नत्थू उर्फ दुनिया न माने(रवि बुले)

सरिता शर्मा (कहानीकार, समीक्षक)
1 महुआ घटवारिन(पंकज सुबीर)
2 हाथ से फिसलती ज़मीन (तेजेंद्र शर्मा)
3 इन दरखतों से खून टपकता है (अनघ शर्मा)
4 सावंत आंटी की लड़किया(गीत चतुर्वेदी)
5 अयोध्याबाबू सनक गए हैं(उमाशंकर चौधरी)
6 इश्क फरेब (चन्दन पाण्डेय)
7 कठपुतलियाँ (मनीषा कुलश्रेष्ठ)
8 हनियाँ (विवेक मिश्र)
9 अधूरे अंत की शुरुआत (विमलेश त्रिपाठी)
10 रंगमहल में नाची राधा(नीलाक्षी सिंह)

गीताश्री (कहानीकार, सम्पादक बिंदिया)
1 स्वाँग (मनीषा कुलश्रेष्ठ
2 महुआ घटवारिन (पंकज सुबीर)
3 काली पहाड़ी (विवेक मिश्र)
4 उलटबाँसी (कविता)
5 खारा पानी (जयश्री राय)
6 केएनटी की कार (संजय कुंदन)
7 सत्यापित (कैलाश बानखेड़े)
8 लूगड़ी का सपना (सत्यनारायण पटेल)
9 बोलेरो क्लास (प्रभात रंजन)
10 वह सपने बेचता था (राकेश बिहारी)

अनघ शर्मा (कहानीकार)
1 स्वाँग (मनीषा कुलश्रेष्ठ)
2 शून्यात पूर्णमुदच्यते (पराग मांदले)
3 हसरत का कोई नाम नहीं होता(पराग मांदले)
4 महुआ घटवारिन(पंकज सुबीर)
5 उत्तर प्रदेश की ख़िड़की (विमलचंद्र पाण्डेय)
6 इन दरख़्तों से ख़ूँ टपकता है (अनघ शर्मा)
7 इब्तिदा के आगे ख़ाली ही (नीलाक्षी सिंह)
8 नकार (चंदन पाण्डेय)
9 पवित्र सिर्फ़ एक शब्द है(विमलचंद्र पाण्डेय)
10 गंधर्व-गाथा (मनीषा कुलश्रेष्ठ)

शरद सिंह (कहानीकार)
1 ठेकेदार (चित्रा मुद्गल)
2 गोपाल को किसने मारा (मन्नू भंडारी)
3 लकीर (उर्मिला शिरीष)

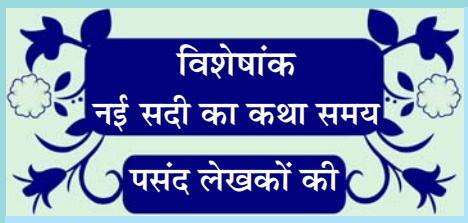

दस कहानियाँ नई सदी की पसंद लेखकों की

4 महुआ घटवारिन (पंकज सुबीर)
5 इंतज़ार पांचवे सपने का(प्रेम भारद्वाज)
6 कल फिर आना(तेजेन्द्र शर्मा)
7 गोरिल्ला प्यार (गीताश्री)
8 यस सर (अजय नारवरिया)
9 यूटोपिया(वंदना राग)
10 अपनी क़ैद (जयश्री राय)

तेजेन्द्र शर्मा (कहानीकार)

1 क्षितिज से परे (सुधा ओम ढींगरा)
2 साँकल(ज़किया ज़ुबैरी)
3 चौथी ऋतु (अचला शर्मा)
4 पंगा (दिव्या माथुर)
5 अख़बारवाला (सुदर्शन प्रियदर्शिनी)
6 चिड़िया(अमरेन्द्र कुमार)
7 रॉनी (उषा वर्मा)
8 सुबह साढ़े सात से पहले (सुमन कुमार घई)
9 ईबू (महेंद्र देवेसर दीपक)
10 आख़री गीत(नीना पॉल)

नीना पॉल (कहानीकार)

1 ओवरफ़्लो पार्किंग (तेजेन्द्र शर्मा)
2 सी- ७०९६ (पंकज सुबीर)
3 अनुष्ठान (गौतम सचदेव)
4 कच्चा फल (महेंद्र दवेसर दीपक)
5 कमज़ोर लड़की की कहानी (सूरज प्रकाश)
6 अख़बार वाला (सुदर्शन प्रियदर्शनी)
7 क्षितिज से परे (सुधा ओम ढींगरा)
8 चौथी ऋतु (अचला शर्मा)
9 रोड टैस्ट (इला प्रसाद)
10 कॉस्ट इफ़ैक्टिव (ऊषा वर्मा)

उषा वर्मा (कहानीकार)

1 क़ब्र का मुनाफ़ा (तेजेन्द्र शर्मा),
2 पंगा (दिव्या माथुर)
3 सरदारिनी बेगम (रमा जोशी)
4 तीन तिलंगे (उषा राजे सक्सेना)
5 हिंजड़ा (कादम्बरी मेहरा)
6 अब और तब (कृष्ण कुमार)
7 लंबी उडारी (कविता वाचक्नवी)
8 क़िस्सा तोता मैना (गौतम सचदेव)
9 ध्रुव-तारा (शैल अग्रवाल)
10 ऐसा क्यों (नीना पॉल)

विमलेश त्रिपाठी (कहानीकार)

1 लापता नत्थु उर्फ दुनिया ना माने (रवि बुले)
2 अंधेरा (अखिलेश)
3 डर (विमल चंद्र पाण्डेय)
4 महुआ घटवारीन (पंकज सुबीर)
5 खंडहर और इमारत (विमलेश त्रिपाठी)
6 लू (मो. आरिफ)
7 परिन्दे के इंतजार सा कुछ (नीलाक्षी सिंह)
8 मोहनदास (उदय प्रकाश)
9 गोमूत्र (गीत चतुर्वेदी)
10 मुनादियों के पीछे (परितोष चक्रवर्ती)

अनिलप्रभा कुमार (कहानीकार)

1 अख़बारवाला (सुदर्शन प्रियदर्शिनी)
2 सूरज क्यों निकलता है (सुधा ओम ढींगरा)
3 कांच के इधर-उधर (सुधा अरोड़ा)
4 उसकी मौत (विकेश निझावन)
5 पासपोर्ट के रंग (तेजेन्द्र शर्मा)
6 गुरुमाई (सुषम बेदी)
7 खिड़की(इला प्रसाद)
8 वह जो अटूट नहीं (अंशु जौहरी)
9 2050(दिव्या माथुर)

पसंद आलोचकों की

वैभव सिंह

1 मोहनदास (उदयप्रकाश)
2 रेहन पर रग्घू (काशीनाथ सिंह)
3 मौसम और तार (मोहम्मद आरिफ)
4 भूलना (चंदन पांडे)
5 पांच का सिक्का (अरुण असफल)
6 बास की पार्टी (संजय कुंदन)
7 पानी (मनोज कुमार पांडे)
8 क्लिजमास्टर (पंकज मित्र)
9 नीचे और नीचे (शशांक)
10 फूलपुर की फुलवरिया मिसराइन (प्रत्यक्षा)

10 धरा की बेटी (रेणु राजवंशी गुप्ता)

सुदर्शन प्रियदर्शिनी (कहानीकार)

1 बेमौसम की बर्फ़ (अनिल प्रभा कुमार)
2 क्षितिज से परे (सुधा ओम ढींगरा)
3 एक नीर्विकार(अंशु जौहरी)
4 खिड़की(इला प्रसाद)
5 ओवरफ़्लों पार्किंग(तेजेन्द्र शर्मा)
6 अंतिम तीन दिन(दिव्या माथुर)
7 गाँठ (विकेश निझावन)
8 चौथमल मास्साब पूस की रात(पंकज सुबीर)
9 वर्किंग पार्टनर (उषा राजे सक्सेना)
10 रोटी (तरसेम गुजराल)

उषा राजे सक्सेना (कहानीकार)

1 हिंजड़ा(कादंबरी मेहरा)
2 चौथी ऋतु (अचला शर्मा)
3 क़ब्र का मुनाफ़ा(तेजेन्द्र शर्मा)
4 रौनी(उषा वर्मा)
5 पंगा(दिव्या माथुर)
6 सौ रुपए का नोट (महेन्द्र दवेसर दीपक)
7 पराया देश(प्राण शर्मा)
8 जीरेवाला गुड़(गौतम सचदेव)
9 कन्वेयर बेल्ट(नीरा त्यागी)
10 बीज(शैल अग्रवाल)

ज़किया ज़ुबेरी (कहानीकार)

1 सी- ७०९६(पंकज सुबीर)
2 खिड़की (तेजेन्द्र शर्मा)
3 इज़्ज़त(अजय नावरिया)
4 सोनमछरी (गीताश्री)
5 शर्म (हरि भटनागर)
6 आख़री गीत (नीना पॉल)
7 चिड़िया(अमरेन्द्र कुमार)
8 मेहरचन्द की दुआ (अचला शर्मा)
9 क्षितिज से परे (सुधा ओम ढींगरा)
10 सुबह साढ़े सात से पहले(सुमन कुमार घई)

सुधा ओम ढींगरा (कहानीकार)

1 देशांतर (सुदर्शन प्रियदर्शिनी)
2 बहता पानी (अनिल प्रभा कुमार)

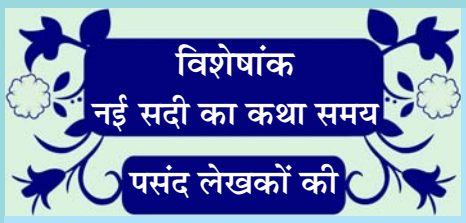

दस कहानियाँ नई सदी की पसंद लेखकों की

3 खिड़की(इला प्रसाद)
4 एक निर्विकार (अंशु जौहरी)
5 गुरुमाई (सुषम बेदी)
6 टेलिफ़ोन लाइन(तेजेन्द्र शर्मा)
7अंतिम तीन दिन (दिव्या माथुर)
8 ऑटोप्रेन्योर(उषा राजे सक्सेना)
9 अँधेरे का गणित (पंकज सुबीर)
10 यहाँ कोई बैठा है (विकेश निझावन)

विमल चंद्र पाण्डेय (कहानीकार)

1 अति सूधो सनेह को... (मजुलिका पाण्डेय)
2 क्विजमास्टर (पंकज मित्र)
3 कुश्ती (योगेन्द्र आहूजा)
4 ब्रह्महत्या (शशिभूषण द्विवेदी)
5 प्रतियोगी (नीलाक्षी सिंह)
6 शोकगीत (कुणाल सिंह)
7 भूलना (चन्दन पाण्डेय)
8 साज़-नासाज़ (मनोज रूपड़ा)
9 लू (मोहम्मद आरिफ)
10 बिगडैल बच्चे (मनीषा कुलश्रेष्ठ)

कुमार अनुपम (कवि)

1 पानी(मनोज पाण्डेय)
2 आज़मगाह (मनोज रुपड़ा)
3 हसरत का कोई नाम नहीं होता(पराग मांदले)
4 महुआ घटवारिन (पंकज सुबीर)
5 उत्तर प्रदेश की ख़िड़की(विमल चंद्र पांडेय)
6 शून्यात पूर्णमुदच्यते (पराग मांदले)
7 इब्तिदा के आगे ख़ाली ही(नीलाक्षी सिँह)
8 नकार (चंदन पांडेय)
9 इन दरख़्तों से ख़ूँ टपकता है (अनघ शर्मा)
10 स्वाँग (मनीषा कुलश्रेष्ठ)

अशोक मिश्र (सम्पादक बहुवचन)

1 तक्षशिला में आग (राकेश मिश्र)
2 बाजार में रामधन (कैलाश बनवासी)
3 दोपहर (विवेक मिश्र)
4 ये बेवफाइयाँ (हुस्न तबस्सुम निहाँ)
5नगरवधुएँ अखबार नहीं पढ़तीं(अनिल यादव)
6 कठपुतलियाँ (मनीषा कुलश्रेष्ठ)
7 सनातन बाबू का दांपत्य (कुणाल सिंह)
8 ईस्ट इंडिया कंपनी(पंकज सुबीर)
9 मुक्ति प्रसंग(अल्पना मिश्र)
10 भेम का भेरू मांगता (सत्यनारायण पटेल)

हरनोट एस. हरनोट (कहानीकार)

1 मोहनदास(उदय प्रकाश)
2 अधखाया फल(आनंद हर्षुल)
3 बौनी होती परछाई(मनीषा कुलश्रेष्ठ)
4 शहर में रामधन (कैलाश बनवासी)
5 महुआ घटवारिन (पंकज सुबीर)
6 मस्तूलों के इर्द गिर्द (विमल चन्द्र पांडेय)
7 जानकी पुल (प्रभात रंजन)
8 निर्वासन (अजय नवारिया)
9 क़ब्र का मुनाफ़ा (तेजेन्द्र शर्मा)
10 फोटो अंकल (प्रेम भारद्वाज)

प्रदीप जिलवाने (कवि, कहानीकार)

1 उत्तरप्रदेश की खिड़की(विमलचन्द्र पाण्डेय)
2 तार (मोहम्मद आरिफ)
3 जानकीपुल (प्रभात रंजन)
4 स्वीट होम(उमाशंकर चौधरी)
5 युटोपिया(वंदना राग)
6 क्विज मास्टर (पंकज मित्र)
7 डूब (कुणाल सिंह)
8 चौथमल मास्साब पूस की रात(पंकज सुबीर)

पसंद आलोचकों की

रोहिणी अग्रवाल

1 इक्कीसवीं सदी का पेड़ (मृदुला गर्ग)
2 पांड़े कौन कुमति तोहे लागी(काशीनाथ सिंह)
3 मेंगोसिल (उदय प्रकाश)
4 दास्तान गो (प्रियंवद)
5 पूत-पूत, पूत-पूत (संजीव)
6 प्रतियोगी (नीलाक्षी सिंह)
7 सत्यापित (कैलाश वानखेड़े)
8 पानी (मनोज कुमार पाण्डेय)
9 लूगड़ी का सपना (सत्यनारायण पटेल)
10 जोकर (अर्चना वर्मा)

9 रंगमहल में नाची राधा(नीलाक्षी सिंह)
10 भूलना(चंदन पाण्डेय)

मनीषा कुलश्रेष्ठ (कहानीकार)

1 सी-७०९६ (पंकज सुबीर)
2 पाँच का सिक्का (अरुण असफल)
3 संझा (किरण सिंह)
4 काली कविता के कारनामे(विमल चंद्र पांडे)
5 टॉवर ऑफ सायलेंस (मनोज रूपड़ा)
6 दो चम्मच औरत (मधु कांकरिया)
7 दूसरा ताजमहल (नासिरा शर्मा)
8 सात पान की हमेल (महेश कटारे)
9 रंगमहल में नाची राधा (नीलाक्षी सिंह)
10 सोन मछरी (गीता श्री)

मधु अरोरा (कहानीकार)

1 हंगल साहब ज़रा हँस दीजिये (हरि मृदुल)
2 दो पाटन के बीच (महेंद्र देवेसर दीपक)
3 दो एकान्त (पंकज सुबीर)
4 विष वल्लरी(कंचन सिंह चौहान)
5 स्टिंग ऑपरेशन (लक्ष्मी शर्मा)
6 आख़िरी गीत (नीना पॉल)
7 बथान (प्रेम भारद्वाज)
8 पंगा (दिव्या माथुर)
9 स्वाँग (मनीषा कुलश्रेष्ठ)
10 सूरज क्यों निकलता है(सुधा ओम ढींगरा)

रामेश्वर काम्बोज हिमांशु (कहानीकार)

1 खरोंच(सुकेश साहनी)
2 घड़ा (विवेक मिश्र)
3 दो पाटन बीच (महेन्द्र दवेसर दीपक)
4 कमरा नं १०३(डॉ. सुधा ओम ढींगरा)
5 सदाफूली(दीपिका जोशी)
6 टेपचू (उदय प्रकाश)
7 पुराने कपड़े (डॉ शरद सिंह)
8 आख़िरी बयान(डॉ. श्याम सखा श्याम)
9 मृगतृष्णा(सुदर्शन रत्नाकर)
10 मातमपुर्सी(सूरज प्रकाश)

कादम्बरी मेहरा (कहानीकार)

1 क़ब्र का मुनाफ़ा (तेजेन्द्र शर्मा)

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
पसंद लेखकों की

दस कहानियाँ नई सदी की पसंद लेखकों की

2 पंगा(दिव्या माथुर)
3 सरदारिनी बेग़म(रमा जोशी)
4 तीन तिलंगे (उषा राजे सक्सेना)
5 हिंजड़ा (कादम्बरी मेहरा)
6 अब और तब (कृष्ण कुमार)
7 लंबी उडारी (कविता वाचक्नवी)
8 क़िस्सा तोता मैना (गौतम सचदेव)
9 ध्रुव-तारा(शैल अग्रवाल)
10 ऐसा क्यों (नीना पॉल)

प्रेमचंद सहजवाला (कहानीकार)

1 मिड डे मील (अल्पना मिश्र)
2 अनामा (मनीषा कुलश्रेष्ठ)
3 काली पहाड़ी (विवेक मिश्र)
4 जंगल का जादू तिल तिल (प्रत्यक्षा)
5 गंगासागर (अजय नावरिया)
6 मादा (सुमन सारस्वत)
7 संझा (किरण सिंह)
8 कुफ्र (पंकज सुबीर)
9 बनाना रिपब्लिक (शिवमूर्ति)
10 दो ईडियट (प्रेमचंद सहजवाला)

विकेश निझावन (कहानीकार)

1 संतोष श्रीवास्तव (शहीद खुर्शीद बी)
2 आग में गर्मी कम क्यों है(सुधा ओम ढींगरा)
3 बाकी जमीन (प्रमिला वर्मा)
4 सूरज का छौना (जयश्री राय)
5 दो पाटन के बीच (महेन्द्र दवेसर दीपक)
6 मालती जोशी (अतृप्त आत्माओं का देश)
7 राजी सेठ (अपने दायरे)
8 सुदर्शन प्रियदर्शिनी (धूप)
9 डार्क जोन (जसवीर राणा)
10 अगला यथार्थ (हिमांशु जोशी)

रचना श्रीवास्तव (कहानीकार)

1 अनाम रिश्ता (पुष्पा सक्सेना)
2 कौन-सी ज़मीन अपनी (सुधा ओम ढींगरा)
3 खिड़की (इला प्रसाद)
4 लकीर (उमेश अग्निहोत्री)
5 धूप (सुदर्शन प्रियदर्शिनी)
6 अवसान (सुषम बेदी)
7 फिर से (अनिल प्रभा कुमार)
8 वह जो अटूट नहीं (अंशु जौहरी)
9 कौन कितना निकट (रेणु राजवंशी गुप्ता)
10 चिड़िया (अमरेन्द्र कुमार)

दिव्या माथुर (कहानीकार)

1 गुलेल (महेन्द्र दवेसर 'दीपक')
2 वह रात (उषा राजे सक्सेना)
3 कब्र का मुनाफ़ा (तेजेन्द्र शर्मा)
4 चरैवेती (शैल अग्रवाल)
5 चिड़िया (अमरेन्द्र कुमार)
6 कलश (सुषम बेदी)
7 कौन सी ज़मीन अपनी (सुधा ओम ढींगरा)
8 उज्ज्वला अब खुश थी (दीपक मशाल)
9 साँकल (ज़किया ज़ुबेरी)
10 मेहरचंद की दुआ (अचला शर्मा)

Hindi Pracharni Sabha
(Non-Profit Charitable Organization)
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna ID No. 84016 0410 RR0001
'For Donation and Life Membership
we will provide a Tax Receipt'
Annual Subscription: $25.00 Canada and U.S.A.
Life Membership: $200.00
Donation: $
Method of Payment: Cheque, payable to "Hindi Pracharni Sabha"

सदस्यता शुल्क
(भारत में)
वार्षिक: 400 रुपये
दो वर्ष: 600 रुपये
पाँच वर्ष: 1500 रुपये
आजीवन: 3000 रुपये

Contact in Canada:
Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham,
Ontario L3R 3R1
Canada
(905)-475-7165
Fax: (905)-475-8667
e-mail: hindichetna@yahoo.ca

Contact in USA:
Dr. Sudha Om Dhingra
101 Guymon Court
Morrisville,
North Carolina
NC27560
USA
(919)-678-9056
e-mail: ceddlt@yahoo.com

Contact in India:
Pankaj Subeer
P.C. Lab
Samrat Complex Basement
Opp. Bus Stand
Sehore -466001, M.P. India
Phone: 07562-405545
Mobile: 09977855399
e-mail: subeerin@gmail.com

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
परिचर्चा

प्रवासी रचनाकार : एक गोलमेज़ परिचर्चा

उषा राजे सक्सेना

कृष्ण बिहारी

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

अनिल प्रभा कुमार

सुरेशचन्द्र शुक्ल

कादम्बरी मेहरा

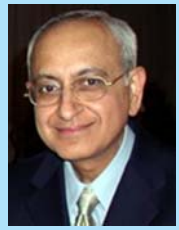
सुमन कुमार घई

इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही प्रौद्योगिकी, औद्योगिकी और तकनीकी विकास विश्व बाज़ार पर हावी हो गया। अंतरजाल ने घर-घर दस्तक दी और विश्व सिमट कर करीब आ गया और साथ ही करीब आ गईं भाषाएँ और साहित्य। भूमंडलीकरण ने स्वदेश में पश्चिमवाद और बाज़ारवाद से लोगों की पहचान करवाई ; जिससे सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तन होने स्वाभाविक थे। देश के लेखकों ने जमकर बाज़ारवाद के विरुद्ध लिखा; जबकि बाज़ारवाद विकास की प्रक्रिया है। विभिन्न देशों प्रदेशों के बीच कारोबार के दौरान सबसे पहले नए शब्दों से व्यापारी ही परिचित होता है। उसमें संस्कृति भी है, स्थानीय समाज भी है। ज्यों-ज्यों व्यापार देश-विदेश फैलता है; त्यों ही बढ़ते हैं शब्द और भाषाएँ। भाषाविद् डॉ. सुरेश कुमार वर्मा के अनुसार भाषा बड़ी मौज से सब तरफ बहती है और वैयाकरण का अनुशासन बर्दाश्त नहीं कर पाती। मूल या तत्सम शब्दों से निस्सृत नए शब्दों को कोई लाख भ्रष्ट कहे, किन्तु वास्तव में वे भाषा के निरन्तर परिवर्तनशील बने रहने के परिचायक हैं। परिवर्तन जीवन्तता का प्रतीक है। परिवर्तन प्रकृति का विधायी तत्त्व है, जो उसे सदैव ताज़ा, स्फूर्त और सानन्द बनाए रखता है।

देशांतर में रचे कथा साहित्य में परिवर्तन की जीवन्तता, स्फुर्ती, ताज़गी और भाषा के नए प्रयोग हैं और स्वच्छंद वातावरण में अस्तित्व, व्यक्तित्व और अस्मिता की खोज है। नई सदी में भारत से इतर देशों की कहानियों की पड़ताल, प्रवृत्तियाँ, दशा और दिशा को खोज, अनसुलझे मुद्दों पर चर्चा और वैश्विक कहानियों के मूल स्वर को पकड़ने के लिए हिन्दी चेतना ने एक परिचर्चा का आयोजन किया। जिसमें अमेरिका से सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अनिल प्रभा कुमार, कैनेडा से सुमन कुमार घई, ब्रिटेन से उषा राजे सक्सेना, कादम्बरी मेहरा, नर्वे से सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक' और अबुदाबी से कृष्ण बिहारी ने हिस्सा लिया। गोल मेज़ विमर्श के रूप में यह परिचर्चा आपके सम्मुख प्रस्तुत है

प्रश्न: देशांतर में लिखे जा रहे कथा साहित्य ने नई सदी में ज़ोर शोर से अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। स्वदेश में कहानी नए परिदृश्य लेकर पाठकों के सम्मुख उपस्थित हुई है। यूँ कहा जाए कि कहानी क्षेत्र में एक तरह से क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। भारत से इतर देशों में लिखी जा रही कहानियाँ उनके कितनी समानांतर हैं।

उषा राजे सक्सेना

२१वीं सदी के हिन्दी कथा साहित्य ने देश और काल की सीमा का अतिक्रमण कर निश्चय ही नए परिदृश्य दिए हैं; जिससे कहानी लेखन में एक नए प्रकार का क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। विदेशों में ही नहीं देश में भी लिखे जा रहे हिन्दी कथा साहित्य में भूमंडलीकरण के दौरान विस्तार और संक्रमण की संभावनाएँ पहले से कहीं अधिक बढ़ीं हैं। दोनों में शैलीगत तथा विषयगत समानताएँ और विभिन्नताएँ भी मुखरित हुई हैं। हिन्दी पट्टी के क्षितिज पर वैश्विक हिन्दी साहित्य का सितारा चमका है।

साहित्य सदैव से मनुष्य और मनुष्य की समाजिकता के संघर्षों के इतिहास को नए-नए रूपों और प्रारूपों में अभिव्यक्त करता आया है। आज के हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी से सम्पन्न औद्योगिकी समाज में जो क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं, उससे कहानी का पारम्पारिक ढाँचा टूटा है। कहानी लेखन में नए-नए प्रयोग हुए हैं। आज की अधिकांश कहानियाँ विमर्श प्रधान हैं, जिसमें इमिग्रैंटस (राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय) के यथार्थ जीवन का चित्रण विवरण के साथ प्रस्तुत होता है। वस्तुत: वर्तमान में हिन्दी कहानी विधा को परिभाषाओं के ढाँचे में नहीं बाँधा जा सकता है। आज के हिन्दी साहित्य जगत में अनेक ऐसे लेखक हैं; जो साहित्यिक लेखन को मात्र निजी व्यवहार मानते हैं। वे रचना, अपने मानसिक दबावों, अंतर्द्वंद्वों अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए करते हैं। अत: यह कहना अनुचित न होगा कि देश-विदेश में जो नए विषयों पर कहानियाँ लिखी जा रही हैं, वे संकीर्णता से मुक्त स्वानुभव की संवेदनशील कहानियाँ होने के साथ वैचारिक भी हैं। इन कहानियों में बौद्धिकता के सम्यक संतुलन के साथ निजता भी है, साथ ही कथ्य, शैली और शिल्प भारत की पारंपरिक लेखन से काफ़ी कुछ हट कर है। इनमें परमिस्सिव सोसाइटी (मुक्त समाज) में रहने के कारण नज़रिए का अंतर भी अपनी पूरी सच्चाइयों, विद्रूपताओं और विषमताओं के साथ चित्रित हुआ है।

भारत के वे रचनाकार किसी न किसी अर्थ में कोई न कोई पक्ष लेते रहे है जो 'वाद' के नाम से जाने जाते रहे हैं। आज भारत में लिखी जा रही कहानियों के कथा तत्त्व में दलितविमर्श, स्त्री विमर्श और राजनीतिक भ्रष्टाचार प्रमुख है। जातिगत भेद-भाव भारतीय समाज का स्थायी भाव है। बटवारे की राजनीति हर क्षेत्र में कुँडली जमाए बैठी है। कथा साहित्य में बार-बार उसी की पुनरावृति होती है। लेखक बिना किसी वरद्हस्त के अपने आपको

सक्षम भी नहीं पाता है। अत: वह किसी न किसी 'गॉड फ़ादर' के साथ जुड़ जाता है।

कृष्ण बिहारी

विदेश में हिन्दी लेखन हो रहा है। मैंने जबसे होश संभाला उस समय से पढ़ता आ रहा हूँ। अमेरिका, ब्रिटेन, मॉरिशस, कनाडा, नार्वे आदि जगहों में रहते हुए लोग लिख रहे हैं। इस लेखन की पहचान भी है। कई नाम हैं जो बहुत प्रतिष्ठित हैं। लेकिन यह कोई मानदंड नहीं होना चाहिए कि यदि कोई विदेश में रहकर लिख रहा है तो वह बहुत अच्छा लिख रहा है या कि कचरा लिख रहा है। विदेश में रहते हुए लिखना कोई प्रमाणपत्र नहीं है।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

देशांतर में लिखा साहित्य अब अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने लगा है। हमें आवागमन, संचार और इन्टरनेट का आभार मानना चाहिए कि परदेश में बेनाम जीते हुए कई दशक बीत गए, अब जाकर भारत से इतर लिखे साहित्य को कम से कम सौतेला ही सही (प्रवासी साहित्य) कह कर आँका जाने लगा है। यों भी-नई सदी के लेखन में देश-विदेश दोनों में क्रांतिकारी परिवर्तन आए हैं, जो शिल्प या कथ्य तक ही सीमित न रह कर अपनी सारभौम-अभिव्यक्ति से अभिव्यंजित हो रहे हैं। प्रवासी साहित्य में सच्ची-संजोई हुई मानवीय सम्वेदनाएँ, अपनों से बिछड़ने की टीस बड़ी संजीदगी से प्रस्तुत हुई है; जो इस साहित्य को एक स्वस्थ हवा का झोंका प्रदान करती है। जहाँ आज भारत में सम्बन्धों को काई लग गई है, वहीं, यहाँ के लोग अपनी पुरानी संवेदित सार्थकताओं को जीवंत रखे हुए हैं, जो उन के कहानी लेखन को एक सहजता एवं सौष्ठव प्रदान करती है।

अनिल प्रभा कुमार

देखिए, यह भूमंडलीकरण का युग है। अब हम अलग-अलग कोष्ठकों में बंटे हुए तो रह नहीं गए, इसलिए विश्व के किसी भी कोने में जो होता है, उसका प्रभाव तो सारी दुनिया पर पड़ता है। उत्सुकता, जिज्ञासा भी रहती है, हथेली पर रखे आमले की तरह सब कुछ जान लेने की। अगर हम कहते हैं कि कहानी के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है तो इस परिवर्तन के पीछे कई कारण रहे हैं। राजनीतिक, सामाजिक, बौद्धिक, वैयक्तिक और सबसे बढ़कर वैश्विक स्तर पर एक दूसरे को देखते हुए चिंतन और संवेदना की नई मनोभूमियों से परिचित होना। भारत से इतर देशों मे लिखी गई कहानियाँ भी इनसे अछूती कैसे रह सकती हैं? विदेशों मे लिखी गई कहानियों की जन्म-भूमि अलग ज़रूर है पर पूरी तरह विदेशी भी नहीं कह सकते। उसकी मिट्टी में खाद भारत की ही मिली हुई है। तभी तो वह हिन्दी कहानियाँ हैं, नहीं तो कुछ और भी हो सकती थीं। विदेश की जलवायु भारतीय मूल्यों और संस्कृति से बिल्कुल भिन्न है। लेखक के मानस को इसका आदी होने और समझने में समय लगता है। संवेदना बीज तो लेखक अपने मूल के लेकर चलता ही है, क्योंकि वही उसकी धरोहर है; जिसे लेकर वह नई ज़मीन पर, नई संवेदनाओं के साथ अपनी पुरानी संवेदना का तालमेल बिठाने के लिए मानसिक तौर पर जूझता है। विदेश की जलवायु में वह अपने अस्तित्व को बचाने के लिए आरम्भ में संघर्ष करता है। फिर समय बीतने के साथ वह धीरे-धीरे नए वातावरण में इस सांस्कृतिक झटके से उबरता है। एक मुक्त और स्वच्छंद वातावरण में उसका चिंतन अपनी पुरानी कुंडली उतार देता है। नया वातावरण, नई परिस्थितियाँ उसे एक नई सोच देती हैं। वह तटस्थता के साथ बहुत कुछ सोच और महसूस कर सकता है; जो पारम्परिक वातावरण में शायद नहीं कर पाता। ये सारे तत्व उसके लेखन में एक नया दृष्टिकोण, एक नई भाव-भूमि प्रस्तुत करते हैं। विदेश में रह रहे लेखक अपने मूल देश के लेखन के सम्पर्क में रहते हुए उतनी ही गति से आगे बढ़ रहे हैं जितने भारत के। दोनों की पटरियाँ अवश्य अलग-अलग हैं, पर गन्तव्य एक ही है।

सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

विदेशों में लिखे लिखा जा रहा कथा साहित्य हमेशा से भारतीय साहित्य से प्रेरित रहा है, लेकिन साथ ही साथ विदेशी साहित्य का असर भी प्रतिबिंबित करता है। भारत और विदेशों में होने वाले सामाजिक परिवर्तन बहुत ही स्पष्ट रूप से विदेशी साहित्य के द्वारा पाठकों के सामने लाए जा रहे हैं।

कादम्बरी मेहरा

जब आप 'समानांतर' शब्द का प्रयोग करते हैं तो दो परस्पर प्रतिद्वंद्वी विधाओं के रेस लगाने का आभास होता है। ऐसा क्यों ? मेरे दृष्टिकोण में भारत से बाहर लिखा जाने वाला साहित्य भारतीय साहित्य का ही संवर्धन है। विदेशों में बसे यह लेखक किसी अन्य देश या जाति के नहीं हैं। वह मूलरूप से भारतीय हैं, भारतीय शिक्षा प्राप्त, उसी की संस्कृति के सांचे में ढले, उन्हीं मान्यताओं के कायल हैं। आर्थिक प्रगति की तलाश में जो लोग पचास और साठ के दशकों में विदेशों में जा बसे वह बौद्धिक रूप से अधिक सचेत व कर्मठ बन गए। सत्तर का दशक आते-आते जब उन्होंने विवाह आदि किए तब जो नारीवर्ग चयनित किया गया वह कदाचित उनसे अधिक शिक्षित व प्रबुद्ध था। इस समूह ने ज़िम्मेदारी से विभिन्न सामाजिक व भौतिक जटिल परिस्थितियों से मुकाबला किया और तिस पर भी अपनी भारतीयता को न केवल बचाकर रखा वरन् उसे निखारा। आज यही समूह लेखन में सन्नद्ध है। इनका मनोबल,सामान्य ज्ञान व संवेदनशीलता स्वदेश के स्थानबद्ध सरल जीवन के आदी लेखकों से अधिक है। इनके लेखन में जो अंगीकृत नई संस्कृतियों का प्रभाव है, वह भारत के लिए वरदान है।

भारत के लेखक व लेखिकाएँ सामान्य तौर पर गृहकार्य या आजीविका के लिए दूसरों पर निर्भर हैं। वह चाहे दिन की चार कहानियाँ खींच लें या वर्ष के तीन उपन्यास लिख मारें। यहाँ विदेश के स्वावलंबी दैनिक जीवन की गतिविधियों से अवकाश निकाल कर साहित्य सृजन करना एक तपस्या है।

सुमन कुमार घई

जिस क्रांति की बात की जा रही है, मेरा मानना है कि उस क्रांति का उद्भयव इंटरनेट से जुड़ा हुआ है। इंटरनेट के आरम्भिक दिनों में विदेशों में रहने वाले साहित्य प्रेमियों को लिखने पढ़ने के लिए एक ऐसा माध्यम मिला; जिसके लिए वह भारत में प्रकाशित होने वाले साहित्य या प्रकाशकों की पसन्द और नापसंद पर निर्भर नहीं रहे। दूसरा आप्रवासी लेखकों के पास साधनों की सुलभता के कारण कुछ साहित्यिक जालघर देखने को आए जैसे कि बोलोजी.कॉम जो अब हिन्दी नेस्ट.कॉम है,

अनुभूति-अभिव्यक्ति, भारत-दर्शन और साहित्य कुंज इत्यादि। क्योंकि इन जालघरों के संपादक/प्रकाशक स्वयं आप्रवासी लेखक थे, इनकी सोच अलग थी और विदेशों में बसे लेखकों को अपनी अभिव्यक्ति का नया माध्यम मिला। इंटरनेट का दूसरा लाभ विचारों के आदान-प्रदान था; जिसका प्रभाव विदेशों के लेखन पर पड़ा। उन दिनों विदेशों में लिखी गई कहानियाँ अधिकतर भारतीय पृष्ठभूमि पर आधारित होती थीं। परन्तु इस समय विदेशों में लिखी जा रही अधिकतर कहानियाँ आप्रवासियों के आज के अनुभवों पर आधारित होती हैं। जहाँ तक भारतीय लेखन के समानांतर होने की बात है, तो मैं इसे कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ, क्योंकि हमारी समस्याएँ, हमारी उपलब्धियाँ और अनुभव भारतीय लेखकों से अलग हैं, इसलिए हमारी कहानियों में इनका प्रतिबिम्ब झलकता है। मेरा मानना है कि विदेशों में लिखा जा रहा साहित्य उसी तरह अपनी स्वतंत्र दिशा की ओर बढ़ रहा है जैसे कि अंग्रेज़ी का साहित्य विभिन्न देशों में अपनी अलग पहचान रखता है।

❐

प्रश्न: भारत से इतर देशों में लिखी जा रही कहानियों की प्रवृत्तियों से आप कितने आशावान हैं?

उषा राजे सक्सेना

विदेशों में लिखी जा रही हिन्दी कहानियाँ जो हर तरह के 'वाद' से मुक्त हैं, हिन्दी पट्टी के आम पाठकों तक पहुँच रही हैं और वे उन्हें पसंद कर रहे है, क्योंकि उन्हें उनमें बहुत कुछ नया मिल रहा है; जो भारत के अधिकांश हिन्दी लेखक उन्हें नहीं दे पा रहे हैं। भारत में लिखी जा रही कहानियों में सैद्धांतिकी है, कलात्मकता है, गहन विमर्श है, वे उच्चकोटि की भी हैं परंतु पाठक उसमें वही यथार्थ पाता है; जिसमें वह जीता है, वही शब्दावली, वही मुहावरे, जिसे वह प्रयोग में लाता है। संभवत: उसे उन कहानियों में एक रसता का आभास होता है, नवीनता का नहीं। भारत का मध्यवर्ग एक ऐसा समाज है; जो आदर्शों में भटकता हुआ जीता है। देश में अर्से से लगभग इन्हीं विषयों पर कहानियाँ लिखी जा रही हैं। इधर विदेशों का समाज 'मुक्त समाज' (permissive) है। संभवत: परंपरावादी और आदर्शवादी समाज उसे मर्यादाहीन होने की संज्ञा दें भी सकते हैं, परन्तु पश्चिमी समाज का यथार्थ ऐसा ही है। कहानियाँ हवा में तो लिखी नहीं जाती हैं। देश और देशांतर दोनों के रचनाकार अपने अपने देश की वास्तविकता अपनी रचनाशीलता में ला रहे हैं। विदेशों के मुक्त समाज की समस्याएँ भारत के पारंपरिक समाज की समस्याओं से बिल्कुल भिन्न हैं। अत: विदेशी हिन्दी कथाकार की कहानियों की कथा-वस्तु और उसके निर्वाह शैली में हिन्दी पट्टी के पाठक को नवीनता मिलती है साथ ही उसके शब्दावली, रूपक, वाक्य-विन्यास और मुहावरों आदि में भी एक दूसरे तरह का नयापन मिलता है जो उसे आकर्षित करता है। देशांतर के उभरते लेखकों के लेखन को भारत के विद्वान् भले ही उसे बिना पढ़े 'अधकचरा और हिंदुत्ववादी' कह लें पर आम पाठक देशांतर के सृजन को इसलिए पसंद कर रहा हैं क्योंकि देशांतर की कहानियाँ नई ज़मीन तोड़ती हैं। जब देशांतर का रचनाकार अपने पीछे छोड़े हुए देश के बारे में लिखता है तो वह उसे एक भिन्न नज़रिए से देखता है; जो पश्चिमी परिवेश के संक्रमण से विकसित हुआ होता है। हिन्दी पट्टी का पाठक ऐसी रचनाओं को पढ़ कर अचकचाता ज़रूर है पर वह रुककर सोचता भी है। इस तरह वह देश और परदेस दोनों को ही इस नई दृष्टि से देखने का प्रयास करता हैं। इस तरह उसका पूर्वाग्रह भी टूटता है। वह वैचारिक संकीर्णता से बाहर निकलता है किंतु इसके साथ यह भी कहना चाहूँगी कि देश के आर्थिक उदारीकरण के कारण देश के महानगरों में जो मॉल कल्चर और आधुनिकता आई है, वह विदेशों में लिखी जा रही कहानियों के बहुत करीब ठहरती है। इक्कीसवीं सदी के पिछले बारह वर्षों में भारतीय समाज बहुत बदला है। उदारीकरण के बाद भारतीय सरकार ने जो निजीकरण को बढ़ावा दिया है, उससे भारत के शहरों का गणित तेज़ी से आगे बढ़ा है; जिससे भारत के लेखकों का पारंपारिक लेखन प्रभावित हुआ है। २००४ में रविन्द्र कालिया के संपादन में वागर्थ और बाद में नया ज्ञानोदय ने एक बिल्कुल नए प्रकार की कहानियाँ हिन्दी साहित्य को दीं। आज अगर बिना नाम दिए देश और देशांतर की कहानियाँ किसी आलोचक को दी जाएँ तो वह यह नहीं बता पाएगा कि ये कहानियाँ विदेशी हिन्दी साहित्यकार की है या भारत के किसी युवा लेखक की है; जो महानगर में रहता है। इसी संदर्भ में मुझे मनीषा कुलश्रेष्ठ, स्नोवा बार्नो, कुणाल सिंह, गीत चतुर्वेदी आदि की कुछ कहानियाँ याद आ रही है; जिनके शीर्षक यदि बदल दिए जाएँ और लेखक का नाम हटा दिया जाए तो थोड़े फेर बदल के बाद वे देशांतर के लेखकों की कलम से निकली कहानियाँ लगने लगेंगी।

कृष्ण बिहारी

साहित्यकार आशावान् ही होता है। निराशा के बीच भी उसे आशा ही दिखती है। एक बेहतर भविष्य ही उसकी रचना का उद्देश्य होता है। यूँ तो आशाएँ तोड़ने के लिए समाज के अन्य घटक रात-दिन एक किए हुए हैं।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

विदेशों में लिखे साहित्य की प्रवृत्तियाँ घड़ी-घड़ाई या साहित्य कोश में निर्धारित प्रवृत्तियों से मेल नहीं खातीं। यहाँ नई सभ्यता में पनपने से मूल्यों का मोहभंग है। नए परिवेश में अपने-आप को ढालने की कशमकश है। जब आप परिवेश बदलते हैं तो टूट-फूट तो होती ही है। ऊपर से यहाँ की समस्याएँ आर्थिक कम मानसिक अधिक हैं। मेरे विचार में इस मोहभंग की अपनी दिशाएँ हैं; जो भारत की प्रवृत्तियों से भिन्न हैं। साहित्य के क्षेत्र में यह नया आयाम है, नई दिशा है, घिसी-पिटी समस्याएँ नहीं हैं। इसलिए इन कहानियों के नए तेवर हैं, नए पहलू हैं और नई चुनौतियाँ हैं; जो साहित्य को बहुमुखी और दृढ़ बनाने में सहायक होंगी।

अनिल प्रभा कुमार

विदेशों में लिखी जा रही कहानियों की प्रवृत्तियों से मैं आशावान् ही नहीं बल्कि उत्साहित भी हूँ। रोज़ नई ज़मीन तोड़ी जा रही है। नए नए विषयों और संवेदनाओं से परिचय कराया जा रहा है। अचरज होता है कि कहाँ इतने ख़ज़ाने छिपे पड़े थे। विदेशों मे लिखने वालों की पीढ़ी अभी अपेक्षतया नई-नई ही उभरी है। उत्साह बुलन्दी पर है। वह लेखक अन्वेषक हैं। नए विषय, नई संवेदनाओं और

भावभूमियों को अपनी कहानियों में रचकर वह साहित्य को भेंट कर रहे हैं। अवचेतन में उन्हें यह भी मालूम है कि उनकी तुलना भारत में लिख रहे समसामयिक महारथियों से भी होगी। शिल्प और विचार भी उतने ही मंजे हुए होने चाहिए जितनी भाव वस्तु। विदेशों मे रहकर लिख रहे लेखकों के लिए एक अदृश्य दबाव भी रहता है, अपने मूल देश के पाठकों, सम्पादकों और आलोचकों से स्वीकृति पाने का। इसलिए विदेशों मे रहकर लिखी जाने वाली कहानियों में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुत करने की आतुरता दिखाई देती है। यह एक बहुत आशावादी और सकारात्मक लक्षण है।

सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

मैं बहुत आशावान हूँ क्योंकि आज साहित्य इंटरनेट की वजह से ज़्याादा लोगों तक पहुँच रहा है।

(1) यहाँ के परिवेश और सामजिक बदलाव

(2) दो संस्कृतियों की टकराहट

(3) दो या अधिक राजनैतिक विचारों की टकराहट और संघर्ष

(4) धर्म के नवीनीकरण का प्रयास करती कहानियाँ

इन सभी प्रवृत्तियों के कारण और इंटरनेट जैसे माध्यम के कारण मैं बहुत ही आशावान हूँ।

कादम्बरी मेहरा

जो कथा साहित्य सामने आया है उसकी अपील भारत और विदेश दोनों के लिए समान है। भाषा शैली में कहीं कोई भिन्नता नहीं है अलबत्ता विदेशों से नए प्रयोग किये जा रहे हैं; जो निश्चय ही हिन्दी साहित्य को संपन्न बना रहे हैं। विदेशों में लिखी गई कहानियाँ अपने निजी परिवेश से उठाई गईं हैं। इनकी संवेदन-शीलता वैश्विक स्तर पर आंदोलित करती है। कोई रिश्ता न होते हुए भी

मानवता का आदान प्रदान, सम्बन्धों का विघटन या जुड़ाव आदि सामान्य जीवन वृत्तियाँ यहाँ भी उगती पनपती हैं, इन्हें कथा साहित्य ही पूरी ईमानदारी से भारतीय पाठकों तक पहुँचा सकता है।

इन कहानियों में जहाँ एक ओर विदेशी परिवेश की झलक है, वहीं भारतीय मूल्यों की गरिमा भी अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'सफ़ेद चादर' में कैसे एक हिरण का दुर्घटना में मर जाना एक भाई की मृत्यु की कचोट को छीलता है ; या फिर एक अनजान 'अखबारवाला' कितने संस्कारों के तार झिंझोड़ देता है (सुदर्शन प्रियदर्शिनी : अखबार वाला) ; यह केवल भारतीय मन ही समझ सकता है। परन्तु क्या भारत में भी, आम जीवन में, ऐसी संवेदना परिलक्षित होती है? चौराहे पर पड़ी किसी युवक की सर फटी लाश और उसको बचा के अंधाधुँध भागता, चलता ऑटोमेटिक भारत? प्रतिदिन सामूहिक बलात्कार से तड़पती बच्चियाँ ? बेइज़्ज़त भिखमंगे पदाधिकारी। कार्यालयों की अकर्मण्यता। कूड़े के ढेर। सशक्त लेखन की ज़रूरत है। विदेशी साहित्य में जो मानसिक व भौतिक सफ़ाई उपलब्ध है वह भारत के लिए ताज़ा हवा है। यह हमें अक्सर याद दिलाती हैं कि नए मूल्यों के समक्ष पुरानी परम्पराएँ कितनी छूंछी पड़ जाती हैं। जब उनकी प्रासंगिकता अवरोहित हो जाती है। (गौतम सचदेव : जीरे वाला गुड़) कहना न होगा कि भारत आत्म सुधार में बहुत मंद है और यह विदेशी कहानियाँ उसे गति प्रदान करती है।

सुमन कुमार घई

विदेशी कहानियाँ दिन प्रति दिन व्यस्क होती जा रही हैं। कला पक्ष भी निखर रहा है तो कहानी की तकनीक और उसमें प्रयोगवाद भी देखने को मिल रहा है। आप्रवासी लेखक के मन में भारत में प्रकाशन का जो एक प्रलोभन था, वह कम होता जा रहा है। वापिस लौट कर फिर इंटरनेट की बात कर रहा हूँ, तकनीकी रूप से हिन्दी के यूनिकोड फॉण्ट के प्रचलित होने के बाद हिन्दी के ब्लॉग तो बाढ़ की तरह बढ़े हैं। यह बात सही है कि उनमें से कुछ गिने चुने ही स्तरीय साहित्यिक कहे जा सकते हैं, लेखन में वर्तनी की अशुद्धियाँ भी खटकती हैं, परन्तु मुझे इसमें एक आशा की किरण नहीं बल्कि एक सूर्य उगता दिखाई दे रहा है कि लोग कम से कम लिख तो रहे हैं। न केवल हिन्दी कहानी बल्कि हिन्दी का भविष्य भी उज्ज्वल लगने लगा है।

❐

प्रश्न: वे कौन से अवरोध हैं जो विदेशों में लिखी जा रही कहानियाँ स्वदेश की हिन्दीपट्टी में वह स्थान नहीं ले पा रहीं, जिसकी वे हकदार हैं। क्या कथ्य, शैली, शिल्प की भिन्नता है या आलोचकों की बेरुखी।

उषा राजे सक्सेना

अनगिनत अवरोध है। आलोचकों की बेरुखी और हिन्दी के पंडितों का सामंतवादी अहंकार इसका सबसे बड़ा कारण है। यहाँ मैं आलोचक कथाकार डॉ. रोहिणी अग्रवाल के शब्दों को कोट कर उपरोक्त प्रश्न का उत्तर देना चाहूँगी, रोहिणी जी कहानी संग्रह 'वह रात और अन्य कहानियाँ' के प्रस्तावना में पृ.२ पर लिखतीं है, 'प्रवासी साहित्य को लेकर हिन्दी का आलोचना-जगत ज़्यादा उत्साही और तटस्थ नहीं है। एक तरह का शुद्धतावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए वह भारत की भौगौलिक सीमा में रचित हिन्दी साहित्य को 'अपना' मानता है, क्योंकि यही भारत (हिन्दी पट्टी) का यथार्थ अपनी तमाम विडम्बनापरक विद्रूप सच्चाइयों, सीमाओं और संभावनाओं के साथ उपस्थित होता है। इसी यथार्थ में स्वयं उसके होने और बेहतर भविष्य गढ़ने की आकांक्षाएँ निहित हैं और इसी में जड़ें, अस्मिता भविष्य भी। वह उसका आत्मविस्तार भी है और सृजन भी। प्रवासी साहित्य उसकी इस गदगद विह्वलता में कहीं बाधा बनता है।' भारत का हिन्दी साहित्य ख़ेमों में बटा है। साहित्यिक महंत अलगाव और वर्गीकरण से अपनी गद्दी मजबूत किए रहते हैं।

यद्यपि इधर विदेशों में लिखे जा रहे हिन्दी कहानी पर पाठकों, संपादकों और प्रकाशकों की नज़र पड़ी है। कथ्य, शैली और शिल्प की भिन्नता और नवीनता ने ही पाठकों और संपादकों को विदेशों में लिखे जा रहे साहित्य की ओर खींचा है। अभी हाल ही में जब यू. जी. सी. की दृष्टि विदेशों में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य पर पड़ी तो उसने बड़ी उदारता से शोध और सेमिनार को लिए लाखों रुपयों का अनुदान देना आरंभ कर दिया। प्रादेशिक सरकारों के अनुदानों से पत्र-पत्रिकाएँ, प्रवासी अंक और विशेषांक आदि प्रकाशित करने लगीं तथा अकादमियाँ संकलने प्रकाशित करने लगीं। आज देशांतर का साहित्य दुधारू गाय है। विश्वविद्यालयों में यू.जी.सी के पैसों से 'प्रवासी साहित्य सम्मेलन' हो जाता है, बिना पढ़े ही लोग देशांतर के साहित्य पर व्याख्यान दे जाते हैं। यू.जी.सी के अनुदान का रचनात्मक

उपयोग बहुत कम और दुरुपयोग अधिक हो रहा है।

कृष्ण बिहारी

आज आलोचना बची ही कहाँ है ? समालोचना तो पूरी तरह गायब है। आज सब कुछ प्रायोजित और सेल्फ मार्केटिंग से जुड़ गया है। एक नया तंत्र पैदा हुआ है जिसे जुगाड़ तंत्र के नाम से जाना जाने लगा है। इसके बावजूद अच्छे लेखन को पहचान मिल रही है। प्रायोजित लेखन की उम्र बहुत नहीं होती।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

प्रवासी साहित्य को दोयम दर्जे का कह कर अगर भारतीय समालोचकों के अहम् की तुष्टि होती है और उसे अपने समान्तर न रख पाने का अहम् वह पाले रखना चाहते हैं तो यह उनकी व्यक्तिगत समस्या है। मेरे विचार में प्रवासी साहित्य न शिल्प से, न कथ्य से या किसी अन्य साहित्यिक मानदंड से दोयम दर्जे पर आता है। हम चाहते है कि हमारे साथ कोई रियायत न बरती जाए और हमें मान्य साहित्यिक मानदंडों पर ही परखा जाए। आज तक जो हाशिए पर डाल कर हमें नजर-अंदाज़ किया गया है, उस पर अब अवश्य विचार किया जायगा क्योंकि हाशिए पर डाली हुई सामग्री अन्ततः सारे सम्वाद का निचोड़ होता है। उस निचोड़ में मानवीय मूल्य-उभर कर आए हैं और उन से आँख मूँद कर कब तक कोई रह पाएगा।

अनिल प्रभा कुमार

अवरोधों की कहानी तो शाश्वत है, सदैव रही है और आगे भी रहेगी। विदेशों मे लिखी जा रही कहानियों का परिचय अभी अपेक्षाकृत नया ही है। दूसरे इस बाहर रचे गए साहित्य की मात्रा इतनी कम है कि उसे अपनी पहचान बनाने में समय का लगना स्वाभाविक है। जब समुद्र लाँघ आने भर से सम्बन्धों में भी 'आँख से दूर दिल से दूर' वाली भावना आ जाती है तो वही भाव स्वदेश के लेखकों या आलोचकों में भी आ जाए तो कोई हैरानी की बात नहीं। मैं आशावादी हूँ। निस्संदेह स्वदेश में लिखने वालों की मुख्यधारा बड़ी प्रबल और प्रगाढ़ है। उसमें यदि हमें स्थान पाना है तो हमारी कहानियों में इतना दम होना चाहिए कि वह अपने बूते पर हिन्दी पाठकों से मान्यता ग्रहण करने की क्षमता रखती हों।

हिन्दी कहानियों का मुख्य पाठक वर्ग तो भारत में ही है। अपनी ज़मीन से जुड़ी समस्याएँ, उसके सरोकार, उनके अपने बौद्धिक और मानसिक मुद्दों से उनका लगाव होना स्वाभाविक है। विदेश में लिखी गई कहानियों के विषय उन्हें प्रभावित तो करते हैं, उन कहानियों को वह सराहते भी हैं पर तब तक वह उन्हें अपना नहीं पाते, जब तक उन कहानियों में एक सार्वभौमिक तत्व न हो और वह है संवेदना, जो देश-काल की सीमा से परे होती है। केवल विषयों की नवीनता या शिल्प का अनूठापन लिए कहानियाँ, जो अन्तर्मन में गहरे धंस कर सोचने को विचलित न करें, केवल एक मानसिक विलासिता के रूप में ही स्वीकार हो पाती हैं, उनमें स्थायीपन नहीं होता। चाहे वह कहानियाँ देश में लिखी गई हों या विदेश में।

आलोचकों की बात को इतनी गम्भीरता से नहीं लिया जा सकता। पहली बात, आलोचक हिन्दी में हैं ही कितने? वे भी हम लेखकों की तरह ही हैं। उनकी भी अपनी धारणाएँ और विचार हो सकते हैं। आजकल कुछ आलोचक उभर रहे हैं जो प्रवासी लेखन के बारे में लिखते हैं। वहाँ भी किसी कारणवश उनकी दृष्टि कुछ गिने-चुने लेखकों से आगे नहीं जा पाती। मेरे विचार से साहित्यकार को इन सरोकारों से मुक्त होकर अपने लेखन-धर्म को ही पूरी ईमानदारी से निबाहने का प्रयत्न करना चाहिए। मुख्यधारा में विदेश में लिखी गई कहानियों को स्थान न मिलने को मैं ज़्यादा गंभीरता से नहीं लेती। मैं आशावादी हूँ। पहचान ज़रूर मिलेगी पर सही समय आने पर। हमें अधीर होने के बजाए अपने लेखन पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। रचनाएँ अपने-आप अपनी उपस्थिति दर्ज करवा लेंगी।

सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

मेरे दृष्टि में विदेशी साहित्य को स्वदेश में पात्रानुसार संवर्धन मिलता है; जो कि बहुत अच्छी बात है।

कादम्बरी मेहरा

न कहानियों का शिल्प फर्क है न शैली। ना ही भाषा के प्रयोग में कोई अवरोध है। पाठक वर्ग ने विदेश में लिखी जा रही कहानियों को हाथों हाथ लिया है। मगर भारत पादान बनाने की मानसिकता से उबर नहीं पाया है। हिन्दी में नित्य बनते जा रहे कोष्ठकों के कारण जो अलगाव पैदा हो रहा है, उसे मिटाना अति आवश्यक है। मुख्य धारा के लेखकों का हमें प्रवासी कहकर एक ओर संचित कर देना उनके आत्मविश्वास की कमी को दर्शाता है। इसमें कोई शुबह नहीं है कि पिछले दो दशकों ने भारत को बिलकुल नए कथानक प्रदान किये हैं। भारत की दशा पर नए तरीके से सुधारवादी प्रयोग आज़माए हैं। देश देशांतर के वर्णन, सामाजिकता, दृष्टिकोण व रिश्तों के गठन पेश किए हैं। और सबसे ज़्यादा इस बात पर ज़ोर दिया है कि आम लोग, चाहे जिस जाति या देश के हों, मानवता में भिन्न नहीं होते।

ज़रूरत है कि विदेशों में बसे लेखकों को और अधिक स्पेस दी जाए हमारे आलोचक जो भारत में ही बैठे हैं; अपना गृहकार्य पूरी लगन व ईमानदारी से करें तो देश विदेश दोनों का भला होगा। आलोचनाएँ किसी एक लेखक के भारत भ्रमण पर सुनी सुनाई इनफार्मेशन के आधार पर यदि परोसी जाएँगी तो वह तीसरे दर्जे की या बिलकुल फालतू होंगी। कहानियों की आलोचना करने व श्रेष्ठ कहानियाँ चुनने के लिए एक आलोचक मंडल होना चाहिए न कि व्यक्तिगत एक सूत्री आलोचना।

सुमन कुमार घई

आपका यह प्रश्न मेरे दिल के बहुत करीब है और अक्सर इसके प्रति मैं चर्चा करता रहता हूँ। इस प्रश्न के कई पक्ष हैं। पहला तो स्वदेश की मुख्यधारा में स्थान की बात आती है। इसकी सबसे बड़ी समस्या प्रकाशन की है। प्रकाशक किसी भी पुस्तक को व्यावसायिक दृष्टिकोण से देखते हैं; क्योंकि उनके लिए कोई भी पुस्तक पैसा कमाने का माध्यम है। नए हस्ताक्षरों पर दाँव लगाने से वह हिचकिचाते हैं; जो कि समझ भी आता है। ऐसे में विदेश में बसा लेखक, भारत में अपनी पहचान बनाए तो कैसे? वह न तो किसी साहित्यिक खेमे में शामिल हो सकता है और न किसी की चापलूसी कर पाता है कि वह किसी जाने पहचाने प्रकाशक द्वारा प्रकाशित हो सके। बातें कुछ कड़वी हैं, परन्तु वास्तविकता यही है। मेरा अपना दृढ़ विश्वास है कि हमें क्यों यह आवश्यकता महसूस होती है कि हमारी पीठ भारत के साहित्यिक मठाधीश थपथपाएँ? ऐसा होना ही नहीं चाहिए। इस समय आप ही

बताएँ क्योंकि मैं हिन्दी चेतना के साथ आरम्भिक दिनों से संबंधित था और आज आप हैं-मेरे जाने के बाद आप इस पत्रिका को उस ऊँचाई तक ले गई हैं कि भारत के लेखक भी इसमें प्रकाशित होने के लिए लालायित रहते हैं। क्या आपने इसमें किसी को प्रकाशित करने के लिए देसी-परदेसी का दुराव किया? नहीं, परन्तु भारत का प्रकाशक बिना कुछ सोचे समझे विदेशी साहित्य पर आप्रवासी साहित्य की मोहर लगा कर उसे केवल आप्रवासी विशेषांकों के लिए रख देता है।

अब तीसरे पक्ष की बात करता हूँ जो आलोचकों के बारे है-कथ्य शैली, शिल्प की भिन्नता भी इसी का भाग हैं। बहुत पहले जब हम लोगों ने हिन्दी राइटर्स गिल्ड की स्थापना की तो उद्घाटन के समय सौभाग्य से डॉ. महीप सिंह कैनेडा में ही थे, हमने उन्हें आमन्त्रित किया। हमारा उत्साह देख कर और कुछ रचनाएँ सुनने के बाद उन्होंने मुझसे कहा कि हम लोग पुस्तकों की समीक्षा के लिए उन्हें भारत भेजें। मैंने उनसे पूछा कि क्या भारत का समीक्षक हमारे दैनिक जीवन की उन सूक्ष्मताओं को समझ पाएगा, जिन्हें उसने जिया ही नहीं। वह मेरे से सहमत थे, हाँ मैंने यह अवश्य स्वीकार किया कि कलापक्ष के लिए हम उनके सुझावों का स्वागत कर सकते हैं। आलोचकों की बेरुखी तो मैं स्वयं झेल चुका हूँ। तेजेन्द्र शर्मा जी ने एक बार आप्रवासी कहानियों के संकलन के लिए कहानियाँ माँगी; जो कि भारत में प्रकाशित होनी थीं। प्रकाशक ने कहानियों को प्रकाशन से पहले ही आलोचक को थमा दिया। आलोचक ने उन्हें पूरा पढ़ा तक नहीं और अजीब बात तो तब हुई जब प्रकाशित संकलन के पहले पन्नों में कहानियों की आलोचना भी प्रकाशित हुई। आलोचक ने स्वीकार किया कि उन्होंने बस स्टैड पर खड़े होकर कुछ कहानियाँ पढ़ी हैं और उसी के आधार पर आलोचना लिखी है। सौभाग्यवश या दुर्भाग्यवश मेरी कहानी भी उन्हीं में से एक थी, जो विशुद्ध रूप से कैनेडियन आप्रवासी के अनुभव पर आधारित 'लाश' थी। आलोचक महोदय आप्रवासी अनुभव से अनिभिज्ञ थे तो उनकी टिप्पणी में दिखा। अब मैं बेरुखी की और क्या बात करूँ।

❐

प्रश्न: नई सदी के इस कथा समय में आप स्वयं को कहाँ खड़ा पाते / पाती हैं?

उषा राजे सक्सेना

यह एक विचित्र प्रश्न है। मैं कहाँ खड़ी हूँ? यह मैंने कभी सोचा ही नहीं। मैंने तो अभी क़लम पकड़ी है....धीरे-धीरे लिखना सीख रही हूँ। मैंने बहुत थोड़ा लिखा है। भारत में लोग ३०-३५ की उम्र में पच्चीस तीस किताबें लिख चुके होते हैं और मेरी आयु के लोगों के खाते में दो-ढ़ाई सौ पुस्तकें तो अवश्य होती हैं। बमुश्किल मेरी मात्र आठ-नौ पुस्तकें ही प्रकाशित हो सकी हैं। इन पुस्तकों के अतिरिक्त हिन्दी पट्टी की लघु पत्रिकाओं में पच्चीस-तीस आलेख, दस-एक साक्षात्कार, २०-२१ समीक्षाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें फिल्म समीक्षा भी शामिल है। कुछ और भी है; जो अँग्रेज़ी और हिन्दी में है जो अप्रकाशित है। मेरे मन में यह आकांक्षा ज़रूर है कि किसी आलोचक की दृष्टि मेरे लेखन पर पड़े और वह उसे गहराई से पढ़े और मुझे संकेत दे कि मैं कहाँ खड़ी हूँ।

बचपन से घर में स्वाध्याय और लेखन का परिवेश मिला किंतु ब्रिटेन आने के बाद वह सबकुछ इस नए परिवेश के साथ सामंजस्य बैठाने में खो-सा गया। मैंने बहुत दबाव और तनाव के साथ बहुत डरते-डरते जीवन के मध्य में फिर से ख़ालीपन से विवश होकर हिन्दी में लिखना शुरू किया था। पर धीरे धीरे मुझमें साहस आता गया और मैं ईमानदारी और बोल्डनेस के साथ अपने अनुभव कविता, कहानी और लेखों के माध्यम से लिखने लगी। शायद इसी बोल्डनेस के कारण मेरे 'एक्स्प्लोरर' कहानीकार को पहचान मिली। इस ईमानदारी का ख़ामियाजा मुझे भुगतना पड़ा, व्यक्तिगत जीवन में भी और साहित्यिक जीवन में भी। मेरा कहानी लेखन 'प्रवास में' कहानी संग्रह के साथ आरंभ हुआ जिसमें औसत दर्जे की कहानियाँ संग्रहीत थीं। 'वाकिंग पार्टनर' की कहानियों से मुझे पहचान मिली। 'वह रात और अन्य कहानियाँ' ने मुझे एक ऐसी 'एक्सप्लोरर कहानीकार' बना दिया /.....जिन्हें पढ़ना दो संस्कृतियों के आपसी सामंजस्य के बाद की उदात्त मानवीय अनुभूति से आप्लावित होना है.....'-डॉ. रोहिणी अग्रवाल-हरियाणा। डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, कमलेश्वर जी और हिमांशु जी ने भी कई बार ऐसा ही कुछ भारतवंशियों के कहानी साहित्य पर व्याख्यान देते हुए मेरी कहानियों के लिए कहा है। अभी हाल ही में मेरी एक कहानी 'ऑटोप्रिन्योर' जिसका कथानक एक ऐसी आधुनिक प्रोफेशनल लड़की की है जो जन्मी, पली-बढ़ी ब्रिटेन में है किंतु भारत को अपनी कर्मभूमि मात्र अपने दम पर सफलता पूर्वक बनाती है, २०१३ के हंस के जुलाई अंक में आई है। कहानी का कथानक (प्लॉट) 'ब्रेन-गेन' और 'डायसपोरा डिविडेंट' के रूप में मेरे मन मस्तिष्क में बरसों से मंथन कर रहा था। 'ब्रेन-गेन' और 'डायस्पोरा डिविडेंट' अभी अधूरी पड़ी कहानियाँ हैं पर उनके बीच 'ऑटोप्रिन्योर' नाम से इस सशक्त लड़की तिश (तुशारकन्या) ने अपनी कहानी मुझसे मेरी लेखनी से लाइन तोड़ कर लिखवा ली.....

कृष्ण बिहारी

मैं तो अपने समकालीनों के साथ खड़ा हूँ। उन्हीं के बीच में खुद को पाता हूँ। यही सचाई है।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

मैं स्वयं को कहाँ खड़ा पाती हूँ यह मैं कैसे देख सकती हूँ। मैं स्वयं को-स्वयं नहीं देख पाती। दूसरे ही मेरे कद की ऊँचाई या बौनापन आँक सकते हैं-मैं नहीं। इतने बड़े महासागर में एक बूँद की क्या बिसात की वह अपना मूल्य जता सके। कुछ पत्रिकाओं में छप जाना, या कुछ पुस्तकों का प्रकाशित हो जाना नितांत नगण्य है, जब तक निष्पक्ष दृष्टि से उन का मूल्यांकन न हो।

अनिल प्रभा कुमार

मैंने तो अभी चलना शुरू ही किया है। रुककर उस जगह को देख पाऊँ कि मैं कहाँ खड़ी हूँ, बड़ा बेतुका-सा लगता है। क्या फ़र्क पड़ता है कि मैं कहाँ खड़ी हूँ? एक संतोष है कि मैं अपने जुनून का हाथ पकड़कर चल पड़ी हूँ। बस, चलती रहूँ, यही काफ़ी है मेरे लिए। कहाँ पहुँचती हूँ, यह भी एक दिलचस्प सफ़र रहेगा।

आज ही एक अजीब-सी बात हुई। पिछले महीने 'हिन्दी-चेतना' में मेरी कहानी 'किसलिए' छपी जो मैंने कुछ वर्ष पहले लिखी थी। अपने कुछ

मित्रों को मैंने उसका लिंक ईमेल द्वारा भेज दिया। आज कई दिनों के बाद एक मित्र की ईमेल वापिस मिली; जिसके पास भी कभी बहुत प्यारा कुत्ता था और चार महीने पहले ही उसका पति भी उसे अकेला छोड़कर इस दुनिया से चला गया। कहानी पढ़ने के बाद उस मित्र ने लिखा, 'जब मैने तुम्हारी यह कहानी पढ़नी शुरू की तो लगा कि तुमने यह मेरे लिए लिखी है या यह केवल एक संयोग है। कहानी दिल को छू गई। पुरानी स्मृतियाँ फिर से तरोताज़ा हो गईं आँसू अब रुकने का नाम नहीं ले रहे। दोनों की याद आ गई। क्या तुमने 'किसलिए' मेरे लिए लिखी है कि मैं आगे बढ़ूँ ?.....तुमने कहानी नहीं, मेरी हकीक़त लिखी है। बहुत अच्छी है....।' जब भी कोई ऐसी सरल, बेलाग टिप्पणी अपने दिल से भेजता है तो वह मेरे लिए किसी भी पुरस्कार से ज़्यादा मूल्यवान हो जाती है। तब लगता है मैं जहाँ भी हूँ, जिस जगह भी खड़ी हूँ, ठीक ही हूँ।

सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

नई सदी के कथाक्रम में मुख्यता 1980 के बाद के सामजिक परिवेश को अपने साहित्य के द्वारा पाठकों के सामने लाने की कोशिश करता हूँ और साथ ही साथ सामाजिक परिवर्तन का विश्लेषण अपने विचारों के द्वारा पाठकों के सामने लाने का प्रयास करता हूँ। लेकिन मैं आजकल के नए माध्यम जैसे इंटरनेट, ब्लागिंग, वेबसाइट का प्रयोग करना ज़्यादा पसंद करता हूँ।

कादम्बरी मेहरा

एक बार श्रीमती उषा वर्मा ने कहा था कि टुकड़ा-टुकड़ा सच को जोड़कर एक झूठी कहानी बनती है। मैं वास्तविकता की कायल हूँ। यदि कहानी का आधार घटित सत्य नहीं है तो वह बेपाया होती है। ऐसी भी कहानियाँ लिखी गई हैं जो किसी चालू जोक पर आधारित हैं और उनको केवल उनके नएपन के कारण पाठकों ने उछल-उछल कर लपका है। जोक अक्सर अतिशयोक्तियाँ होते हैं। कल्पना को सत्य रूप में प्रेषित करें तो परिकथा लगती है। उन्मादी मन की उड़ान।

मैं महान् लेखिका होने का दावा नहीं कर सकूँगी आजन्म। लेखक के लक्ष्य आगे-आगे खिसकते चलें तो भला। मगर जो कुछ भी अभी तक लिखा है उसे पाठकों ने सराहा है। अधकचरे आलोचकों की मुझे परवाह नहीं। यह खेद की बात है कि विदेशों में लिखी जा रही कहानियों की आलोचना करनेवाले भारत के वह लोग हैं; जो कभी स्वयं विदेश नहीं गए या गए तो केवल सरकारी खर्चे पर।

संपादकों के निर्णय पर मैं प्रश्न नहीं लगा सकती। हर पत्रिका का अलग उद्देश्य होता है। परन्तु एक सामान्य आचार सहिंता के नियमों को यदि वह मद्देनज़र रखें और स्वीकृति व अस्वीकृति की सूचना तत्परता से दें तो उनका कुछ नहीं घटेगा। साल-साल दो-दो साल तक रचनाएँ पड़ी-पड़ी बासी होती रहें तो दु:ख होता है।

ऐसा दो बार मेरे साथ हुआ कि मेरी कहानी किसी पत्रिका ने फाइलों में दबा दी और उस मौजूं पर फिल्म बनकर आ गई। मैं तो रो दी। पर क्या करती? हमारी इस व्यथा के पीछे सिर्फ प्रबंधन की लापरवाही है। लेखन में नंगई मुझे पसंद नहीं। कलम की शुभता का मान रखना मुझे अच्छा लगता है।

सुमन कुमार घई

नई सदी में विश्वग्राम कल्पना नहीं रह गया है। भारतीय समाज विशेषकर महानगरों में तो विदेशी समाज के बहुत करीब आ रहा है, चाहे यह अभी केवल ऊपरी सतह की समानता मात्र है। जो भारतीय कहानियाँ इन महानगरों में लिखी जा रही हैं, वह बहुत कुछ वैसा की कह रही हैं जो हम देखते और सुनते हैं। इधर, जैसा कि मैंने पहले भी कहा है कि विदेशों में लिखा जा रहा साहित्य वयस्क हो चुका है। विदेशों के लेखकों में एक आत्मविश्वास है, जो पहले नहीं था; जो उसके लेखन में प्रतिबिम्बित होता दिखाई दे रहा है।

❐

प्रश्न: विदेशों में लिखी जा रही कहानियों की दशा और दिशा के बारे में आप की क्या राय है?

उषा राजे सक्सेना

देशांतर के उन रचनाकारों ने नई ज़मीन तोड़ी है; जो कच्ची उम्र में ही विदेश आ गए थे और जिनकी विचार प्रक्रिया अभी पूरी तरह से परिपक्कव नहीं हो पाई थी; जो संक्रमण के लिए तैयार थे। ये वे युवा कलमकार थे; जो विदेशों में नौकरी खोजने के लिए आए थे या ये वे युवा लड़कियाँ थीं; जो अभी कॉलेज से निकल कर अपने पतियों के साथ विवाह के बाद आई थीं और जिन्हें विदेशों में ही रिहाइश करनी थी।

यदि देखा जाए तो विदेशों में हिन्दी में लेखन करनेवाली महिला रचनाकार ही अधिक हैं, कुछ अपवादों को छोड़ दें तो अधिकांश पुरुषों ने अँग्रेज़ी को ही अपने सृजन का माध्यम बनाया है। कच्ची उम्र में आईं इन महिलाओं ने बच्चों के सही परिवरिश के लिए अपने अपनाए हुए देश के सामाजिक तौर-तरीके, नियम-कानूनों के बीच द्वंद्वों, दु:खों, अकेलेपन और विषमताओं के बीच जीवन यापन किया। उन्होंने अपनी इन्हीं विवशताओं और अंतर्द्वंद्वों से मुक्ति पाने के लिए लेखनी पकड़ी।

सदियों से पुरुष वर्चस्व वाले समाज में यंत्रणा झेलने के बाद विदेशों में आई महिलाओं ने जब एक ऐसे समाज में साँस ली; जहाँ उन्हें साँस लेने के लिए खुली हवा, आर्थिक बराबरी, समाज में बराबर का दर्ज़ा आदि मिला तो उन्होंने अपनी सनातन चुप्पी तोड़ने के लिए मातृभाषा की धारदार लेखनी का सहारा लिया। इस नए समाज में जब उनके योग्यता का खुला मूल्यांकन हुआ तो इस अहसास को घरेलू दबाव और तनावों के बीच ख़ुद को ज़िंदा रखने के लिए अपने अनुभवों को देश के साथ बाँटा। ऐसा मैं इसलिए कह रही हूँ कि ऐसे युवा रचनाकारों की विशेष कर महिलाओं की दृष्टि हर तरह के संक्रमण के लिए तैयार होती है। संक्रमण से नई दृष्टि पैदा होती है; जो नई ज़मीन तोड़ती है और नई दिशा तलाशते हुए आगे बढ़ती है।

विदेशों में आज जो पीढ़ी हिन्दी में लिख रही है, वही हिन्दी लेखकों की वस्तुत: पहली और अंतिम पीढ़ी है। हमारी दूसरी पीढ़ी के पास न तो हिन्दी भाषा है, न ही भाषा का वह संस्कार है; जो लेखन के लिए चाहिए। हो सकता है कि विदेशों में हिन्दी लेखन भविष्य में भी होता रहे किंतु यह लेखन भारत से आए नए युवा इमिग्रेंटस ही होंगे; जिनकी हिन्दी भाषा पर पकड़ होगी। नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव और हरि सुमन बिष्ट आदि संभवत: अचला शर्मा, सुषम बेदी, उषा प्रियंवदा, कृष्ण

बलदेव वैद्य, अंजना संधीर, तेजेन्द्र शर्मा, कविता वाचक्नवी (जो भारत में ही लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे और ४०-५० की आयु में विदेश पहुँचे) आदि को प्रवासी साहित्यकार की कोटि में नहीं रखते हैं (हंस-अप्रैल २०११. 'मेरी तेरी उसकी बात'-पृष्ट २)। वे पहली पीढ़ी के उन लेखकों को ही प्रवासी रचनाकार मानते हैं; जिन्होंने युवा छात्रों की तरह अथवा विवाह के कारण विदेशों में स्थायी रिहाइश स्वीकार करते हुए लेखन का आरंभ किया और विदेशी परिवेश के दबाव और द्वंद्वों के बीच भारत की लघु पत्रिकाओं द्वारा बामुश्किल हिन्दीपट्टी के हिन्दी साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराई।

कृष्ण बिहारी

विदेशों में हिन्दी लेखन का भविष्य कैसा है ? इसकी दशा और दिशा क्या होगी ? यह प्रश्न सचमुच सोचने का है लेकिन ऐसा तो हिन्दुस्तान की उन सभी भाषाओं के साथ हो रहा है; जिनमें देश के बाहर रहने वाले भारतीय लिख रहे हैं। जब घर में मातृभाषा मरेगी तो अंजाम का पता होना चाहिए। हमारे बच्चे अब अंग्रेज़ी में सोचते हैं। यानी, हमारी आने वाली उस पीढ़ी को जो विदेश में अपना भविष्य तलाशेगी, उसे अगर लिखना भी होगा तो वह अंग्रेज़ी में लिखेगी। लेखन चलता रहेगा। लेकिन शायद हिन्दी में नहीं होगा।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

प्रवासी साहित्य किन्हीं वादों, आंदोलनों या खेमों में बँटा हुआ साहित्य नहीं है। साहित्यिक मानदंडों की दृष्टि से यह एक स्वस्थ दिशा है, जहाँ उसे वादों-विवादों का ग्रहण नहीं लग सकता। इस में न साम्प्रदायिकता है न कोई पार्टीबाजी। यह विशुद्ध मानवीय-उलझनों से उलझता हुआ और कहीं-कहीं दिशा-निर्देश करता साहित्य है।

अनिल प्रभा कुमार

भारत से इतर देशों में लिखी जा रही कहानियों में एक नयापन, ताज़गी तो है ही। सुदूर बसे देशों के लोगों के बारे में जो आम आदमी को उत्सुकता रहती है, ये कहानियाँ उस उत्सुकता को शांत या उद्विग्न दोनों ही करती हैं। हिन्दी की प्रमुख धारा में इस विदेश से आती हुई साहित्यिक धारा का भी अपना योगदान है, इसे नकारा नहीं जा सकता। नॉसटेल्जिया के बचपन को पार कर अब यह कहानी-धारा पूरे यौवन पर है। अब विदेश में लिखी कहानियाँ अपनी-अपनी ज़मीन पर नए-नए मुद्दों से जूझ पड़ी हैं। इन कहानियों में एक और तरह की परिपक्वता झलकती है। शिल्प और शैली के भी प्रयोग हो रहे हैं। भारत में लिखी जा रही कहानियों की तरह ही इधर विदेशों में लिखी जा रही कहानियाँ भी समानान्तर स्पर्धा में रचनाशील हैं। पृष्ठभूमि, अवधि और संख्या को विचाराधीन रखते हुए लिखने के अनुपात का अन्तर होना स्वाभाविक है। विदेशों मे लिखे कथा साहित्य को मान्यता देने के दरवाज़े तो खुल ही चुके हैं। इन कहानियों की दशा बहुत अच्छी है और दिशाओं का पता तो सूर्य निकलने पर ही लगेगा।

सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

देशांतर में रहने वाले प्रवासी भारतीयों के मनोभाव और मनोव्यथा को प्रवासी साहित्य में आसानी से देखा जा सकता है। लेकिन कभी-कभी मुझे लगता है कि प्रवासी साहित्य विभिन्न देशों की भौगोलिक, सामाजिक और राजनैतिक दशा से संभवता प्रेरित भी रहा है। इसके अतिरिक्त राजनैतिक परिवर्तन के कारण उसके मूल्यों में भी बदलाव आता रहता है।

कादम्बरी मेहरा

जितनी मैंने पढ़ी हैं उनके आधार पर मैं कह सकती हूँ कि विदेशों में लिखी जाने वाली कहानियाँ एक बहुत बड़ा रंगारंगी फलक प्रस्तुत करती हैं। कथानकों की विविधता अप्रतिम है। भारत में चल रहे विवादों के तहत लिखी गई कहानियाँ---- स्त्रीविमर्श हो या दलित विमर्श या राजनैतिक गुटबाजी--सब उबाऊ लगती हैं। विदेशों का कथा साहित्य एक ओर अपनी स्थानीय संस्कृति का प्रभाव दर्शाता है वहीं भारतीय दृष्टिकोण से उसका मूल्यांकन भी करता चलता है। नए व पुराने का उचित सम्मिश्रण हिन्दी के लिए वरदान है। पाठकों को निरंतर नवीनता की तलाश रहती है यदि हम उनके मनोरंजन व ज्ञानवर्धन को उपेक्षित करेंगे तो साहित्य दीमक का चारा बनेगा।

सुमन कुमार घई

विदेशी कहानी अपनी दिशा पहचान चुकी है। वह भारत की ओर न देख कर अपने समाज की ओर देख रही है। अगर इस स्वतंत्र दिशा की ओर बढ़ेगी तो दशा स्वत: बेहतर होगी।

❐

प्रश्न: नई सदी में हो रहे प्रवासी सम्मलेन विश्व के कथा साहित्य का विस्तार कर रहे हैं या उन्हें सिर्फ प्रवासी विशेषांकों तक सीमित कर रहे हैं।

उषा राजे सक्सेना

नई सदी में 'प्रवासी' शब्द का बाजारीकरण हुआ है। प्रवासी सम्मेलनों में भारत सरकार विदेशों में बसे उद्योगपतियों को निमंत्रित करती है, उन्हें भारत में 'इन्वेस्टनेंट' के लिए तरह तरह के आकर्षक प्रस्ताव प्रेषित करती है और फल-स्वरूप उन्हें देश में कई तरह की सुविधाएँ प्रदान करती है। 'प्रवासी साहित्य सम्मेलन' इसी के समानांतर हिन्दी साहित्य के प्रचारकों की देन है। 'प्रवासी साहित्य सम्मेलन' जैसे आयोजन निश्चय ही विदेशों में लिख रहे रचनाकारों को प्रकाश में लाती है इसके फल स्वरूप विदेशों में रहनेवाले आयोजक भारत से कवियों और लेखकों को 'बाई-एयर' बुलाते है उन्हें मंच देते हैं। उनके रहने-सहने खाने-पीने घुमाने-फिराने की अच्छी से अच्छी व्यवस्था करते है। आदर-सत्कार के साथ उन्हें विदेशों का सैर कराते हैं। इस तरह के साहित्यकारों के आदान-प्रदान से साहित्य के प्रचार-प्रसार के साथ व्यक्तिगत और सामूहिक लाभ भी होते हैं। साथ ही खेद की बात यह भी है कि अब तक के हुए तकरीबन सौ-सवा सौ सम्मेलनों ने अभी तक कोई ऐसा आलोचक हमें नहीं दिया है जिसने बिना पक्षपात के वैश्विक हिन्दी कहानी साहित्य की समीक्षा की हो। मित्रों की ओर मुँहदेखी समीक्षा तो बहुत हुई है पर क्या किसी ने एक व्यापक हिन्दी कहानियों की समीक्षा करते हुए उसमें देशांतर के कहानियों को भी शामिल किया है। मैंने अजय नवारिया, रोहिणी अग्रवाल, सुधीश पचौरी, उर्मिला शिरीष, संगम पाण्डेय, मैनेजर पाण्डेय, सुशील सिद्धार्थ, बलवंत कौर, राजीव रंजन प्रसाद आदि के लेख समकालीन कहानी पर पढ़े हैं उन्होंने कहीं भी भूले से भी किसी देशांतर के रचनाकार को उसमें सम्मिलित नहीं किया। विदेश

में रहकर लिखनेवाला हर रचनाकार हिन्दी का रचनाकार है। हिन्दी पट्टी का आलोचक कभी देशांतर के लेखकों को हिन्दी पट्टी के आलोचना साहित्य में स्थान नहीं देता है। क्या कारण है? क्या कोई भारतवंशी रचनाकार ऐसा नहीं है जो उनके विज़न में उस समय आए; जब वे आलोचनाएँ लिख रहे होते हैं। ऐसा क्या है कि जब वे तुलनात्मक लिखते है तो भारतवंशी साहित्यकार उस परिदृश्य से बाहर होते हैं, जबकि उन्होंने अलग से प्रवासी खाँचे में डालकर उनके बारे में बहुत कुछ संतुलित लिखा हैं। इसका कारण क्या साहित्यिक बँटवारा नहीं है? ख़ेमेबाजी नहीं है? क्या वे अप्रत्यक्ष रूप से नहीं कह रहे है कि तुम हमसे अलग हो। हमारे समानांतर नहीं हो, दोयम दर्ज़े के हो, प्रवासी हो जैसा कि आलोचक रोहिणी अग्रवाल कहती हैं।

कृष्ण बिहारी

प्रवासी सम्मेलनों से लाभ की जगह नुकसान हो रहा है। रचनाकार, रचनाकार है। वह गाँव में है, शहर में है, प्रदेश और देश की राजधानी में है, और विदेश में है। जहाँ है वहाँ के समाज और वातावरण पर लिख रहा है। एक ब्रैकेट में आना स्वयं को संकुचित करना है। अपनी निगाहों में भी और पाठकों की दृष्टि में भी। यह वर्गीकरण हमें सबसे तोड़ता है, जोड़ता नहीं है। आप या तो अछूत की श्रेणी में खुद चले जाते हैं या डाल दिए जाते हैं। लोगों को लगता है कि आप अपने लिए आरक्षण मांग रहे हैं। लोगों को यह भी लगता है और कुछ लोग तो कहने भी लगे हैं कि विदेश में रहने वाले हिन्दी के रचनाकार बिकने वालों को पैसे खिलाकर पत्र-पत्रिकाओं में छप रहे हैं। सुनकर दु:ख होता है। मुझे हिन्दुस्तान के किसी लेखक ने प्रवासी कभी नहीं कहा। राजेंद्र यादव ने तो किसी सेमीनार में कहा भी कि वे मुझे प्रवासी लेखक नहीं मानते। मैं हिन्दी का लेखक हूँ। प्रवास में तो मैं नौकरी कर रहा हूँ। हर दस महीनों में एक बार भारत आता हूँ। गाँव-घर-परिवार और रिश्तेदारों तथा मित्रों से जुड़ा हूँ तो प्रवासी लेखक कहाँ से हुआ?

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

भारत में प्रवासी साहित्य पर कुछ माननीय संस्थाओं की जो कृपा दृष्टि हुई है-उस का भी एक अलग तरह का गणित है। इस नए दृष्टि-छत्र के नीचे जो बाँट-भाग हो रही है वह पहले की अलिखित उपेक्षाओं से अधिक खतरनाक है। प्रवासियों के नाम से पैसा बटोरना, सम्मेलन करवाना, किसी व्यक्ति विशेष को सम्मानित करना (अपनी-भाग-बाँट के लिए) यह अपने आप में एक अलग भ्रष्टाचार का खेमा खड़ा हो रहा है। ताम-झाम की दृष्टि से यह आकलन भव्य है पर इस नाम के नीचे-साहित्य का और विशेषकर प्रवासी साहित्य का और भी ह्रास हो रहा है। जो इस मिली-भगत का हिस्सा (अपने डॉलर की कुव्वत पर) बन जाते हैं या बन सकते हैं, केवल उन की ही दुदुम्भी बजती है और बाकी फिर वैसे ही पहले की तरह उपेक्षित और अपमानित होकर अपने कलेवर में सिमट जाते हैं।

अनिल प्रभा कुमार

मैं अभी तक किसी भी प्रवासी सम्मेलन में सम्मिलित नहीं हुई इसलिए उनके विषय में कुछ नहीं कह सकती। हाँ, जो भी इनके बारे में पढ़ा या सुना है उसमें से राजनीति की तीखी गन्ध ज़रूर लगी। प्रवासी सम्मेलनों का जितना शोर है, उससे हो सकता है कुछ लोग बहती गंगा में हाथ धो भी रहे हों पर देखना तो यह है कि विश्व के कथा-साहित्य का इस अनुपात में कितना विस्तार हो रहा है? मैं प्रवासी अंकों के विरुद्ध नहीं हूँ। कम से कम शुरूआत तो हो रही है, विदेश में लिखने वालों को मंच प्रदान करने की। परिचय होगा तो बात आगे भी बढ़ेगी।

सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

विदेशी साहित्य को संवर्धित करने में प्रवासी साहित्य का बहुत योगदान है। और इसको यथासंभव संवर्धन भी प्राप्त हो रहा है। नार्वे एक उदाहरण है।

कादम्बरी मेहरा

मैं अभी तक ऐसे किसी सम्मलेन में नहीं गई हूँ। अत: अधिक नहीं कह सकती। उनके उद्देश्य बहुत साफ़ साफ़ नहीं समझ पड़ते। अगर स्थिति मेरे वश में होती तो मैं यह आयोजन समाप्त कर देती। यह देश के पैसे (ग्रांटस) की बर्बादी है।

सुमन कुमार घई

प्रवासी सम्मेलनों की अपनी उपयोगिता है, चाहे वह विदेशों में हों या भारत में। जैसा मैं पहले कह चुका हूँ कि अब आप्रवासी लेखक भारती प्रकाशकों के अँगूठे के तले नहीं हैं। इंटरनेट जैसे माध्यम ने प्रकाशन क्षेत्र में क्रांति ला दी है। अगर रचना में दम है तो उसके पाठक तो जुटेंगे ही-दूसरी ओर यह प्रवासी सम्मेलन उन अच्छे लेखकों को चर्चा में लाने का माध्यम बन रहे हैं और मैं इनके आयोजकों के परिश्रम को बहुत आदर की दृष्टि से देखता हूँ।

❐

प्रश्न: विदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में कहाँ कमी रह गई है; जो हम इस सदी में कोई युवा कथाकार हिन्दी साहित्य को नहीं दे सके।

उषा राजे सक्सेना

उपरोक्त प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है जो मात्र विदेशों में रहने वाले भारतीयों को ही नहीं भारतवासियों को भी चिंतित करता है। महत्त्वकांक्षाओं की अँधी दौड़ में आज बच्चों को हिन्दी भाषा और साहित्य का संस्कार और परिवेश नहीं मिल पा रहा है। आज विश्व की भाषा, प्रौद्योगिकी की भाषा, सफलता की भाषा 'अँग्रेज़ी' है जो उसे जन्म के समय ही घुट्टी में पिला दी जाती है। सदियों से ऐसा चलता आ रहा है कभी फ़ारसी के रूप में, कभी उर्दू के रूप में, कभी अँग्रेज़ी के रूप में, मानसिक दासता की यह 'कन्डिशनिंग' अब ख़तरनाक मोड़ पर पहुँच चुकी है शायद लाइलाज भी हो चुकी है।

इतने प्रचार प्रसार के बाद भी हम विदेशों में हिन्दी को युवा कथाकार इसलिए नहीं दे पा रहे हैं क्योंकि हिन्दी के झंडावरदार हिन्दी का प्रचार-प्रसार केवल अपनी रोटी सेंकने के लिए कर रहे हैं। धर्म के धंधेबाजों की तरह आज हिन्दी के धंधेबाज भी पैदा हो गए है; जो हिन्दी का इस्तेमाल अपने स्वार्थ के लिए कर रहे हैं। हिन्दी के मैदान में बड़े-बड़े खिलाड़ी और व्यापारी आ पहुँचे हैं; जो बहुत ऊँचे स्केल पर सेमिनार, कॉन्फ्रेंस, शिविर, प्रकाशन और मेले आदि लगा कर अपना प्रोफ़ाइल ऊँचा कर रहे है, विदेश यात्राएँ कर रहे है, जेबें भर रहे हैं। दूसरी बात ककहरा पढ़ लेने से, हिन्दी फिल्में और सीरियल देख लेने से कुछ शब्द और वाक्य तो युवावर्ग को बोलने आ जाते हैं परंतु कथाकार होने के लिए जो भाषा का संस्कार और शब्द संस्कृति आनी चाहिए उसके लिए आज के युवा के पास न

तो शिक्षा है, न ही परिवेश, न ही समय और न ही हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए कोई प्रतिबद्धता....

कृष्ण बिहारी

मैंने पहले ही कहा है कि हमारी आने वाली पीढ़ी में तो रचनाकार हैं और अच्छा लिख रहे हैं। आगे भी रचनाकार होंगे। जहाँ तक विदेश में हिन्दी के भावी रचनाकारों की बात है, वह सोचना ही अब कठिन लगता है।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

विदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार की कमी इस बात का कारण नहीं कि कोई नया साहित्यकार इस नई पीढ़ी में पैदा नहीं हुआ-या तैयार नहीं हो रहा। इस का सब से बड़ा दुर्भाग्य यह रहा कि जो पीढ़ी यहाँ 70-80 के दशक में आई-उन्हें अपने पैर इस नई मिटटी में ज़माने के लिए 15-20 वर्ष लग गए। उस पर तुर्रा यह कि वे अपने आप को और अपने बच्चों को इस नई प्राप्त सभ्यता में पूरी तरह आत्मसात करने के उपक्रम करते रहे और अपनी सफलता का मापदंड उसी को मानते रहे। इसी लागव में उन्होंने अपनी भाषा, अपना पहरावा, अपनी संस्कृति को सौतेला स्थान दे दिया। इस का परिणाम यह हुआ कि बच्चे जो दिन में 10-15 घंटे बाहर के वातावरण में व्यस्त रहते और उस वातावरण में अपने आप को पूरी तरह से डूबाने का यत्न करते उन्हें घर की तरफ से भी इस की पुष्टि मिली। वह मनसा, वाचा और कर्मना से इस नई सभ्यता और इस से मिली स्वछंदता में पूरे मायनों के साथ आत्मसात हो गए। बाद में जब बहुत सालों बाद होश आया तो बहुत देर हो चुकी थी। अब माँ बाप की शतरंज के मोहरे वह नहीं बन सकते थे, जब चिड़ियाँ चुग गई खेत। जिन बच्चों को अपनी भाषा ही नहीं आती वह साहित्य क्या जानेंगे? बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद।

अनिल प्रभा कुमार

विदेशों में जो भी हिन्दी का प्रचार-प्रसार हो रहा है उसका अधिकांश श्रेय हमारी हिन्दी फ़िल्मों को ही जाता है। हिन्दी समितियाँ बहुत हैं; जो अपनी योग्यता भर हिन्दी का प्रसार कर रही हैं हालांकि उनमें भी व्यक्तिगत स्वार्थ आकर सारा परिदृश्य धुँधला कर देते हैं। हिन्दी का प्रचार-प्रसार अधिकतर भारतीय मूल के छोटे बच्चों को ध्यान में रखकर किया जाता है। उसके बाद थोड़े और बड़े बच्चों को भी आकर्षित करने का प्रयत्न होता है। विश्व-विद्यालय के स्तर पर हिन्दी का प्रसार (सौजन्य अमरीकी सरकार) एक विदेशी भाषा के रूप में ही होता है। ऐसे में युवाओं का परिचय तो हिन्दी भाषा और साहित्य से कराया जा सकता है, उनकी रुचि को प्रोत्साहित भी किया जा सकता है पर उन्हें हिन्दी के साहित्यकार के रूप में गढ़ा नहीं जा सकता। मुझे लगता है कि साहित्यकार बनाए नहीं जा सकते, वह संस्कार उनके भीतर होता है या नहीं होता है। यूँ भी पश्चिम की जलवायु साहित्य की अपेक्षा पूंजीवाद और भौतिकता की फ़सल के लिए ज़्यादा अनुकूल है।

सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

विदेशों में हिन्दी का प्रचार-प्रसार अच्छे ढंग से हो रहा है लेकिन कभी-कभी मुझे लगता है कि भारत में प्रवासी लेखकों और प्रवासी साहित्य को कुछ अधिक प्रोत्साहन मिलना चाहिए और साथ ही साथ प्रवासी साहित्य सम्मलेन जैसे कार्यक्रम को अधिक बढ़ावा मिलना चाहिए, इससे मेरे जैसे अनेक प्रवासी साहित्यकार अपने आपको गौरवान्वित महसूस करेंगे।

कादम्बरी मेहरा

इस प्रश्न का उत्तर देने में भानुमती का पूरा पिटारा खुल जाएगा। भारत ने हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए किया ही क्या है? क्या विदेशों में सरकार की ओर से हिन्दी की शिक्षा के उपकरण उपलब्ध हैं ? क्या क्लासों का प्रावधान है ? क्या ऐसा कोई अनुदान है जो व्यक्तिगत उपक्रम में लगाया जा सके ?

अभिभावक भले ही अपने परिश्रम से उद्यम करें। विदेश की शिक्षा संस्थाएँ अधिक सक्रिय रही हैं, बालकों को भारतीय भाषाएँ पढ़ाने के लिए। मगर अब उसके लिए राशि की कमी पड़ गई है और वह क्यों आपकी भाषा को महत्त्व दें जबकि उन्हें अपने देश के लिए सफल नागरिकों को तैयार करना है, न की रंगारंगी ज़ुबाने बोलते भिन्न-भिन्न आगंतुक।

यहाँ भारत भवन में एक पूरा फ्लोर अंग्रेज़ी की किताबों का है और नित्य नई किताबें उसमें आती हैं। मगर हिन्दी की किताबों के लिए एक छोटा सा कमरा है; जिसमें यदि नई किताबें आती है तो पुरानी किताबों को फेंकना पड़ता है। कोई रखवाला भी नहीं है। हिन्दी अधिकारी का यह काम नहीं कि वह लाइब्रेरी बनाए रखे। भारत से आया लाइब्रेरियन अंग्रेज़ी की किताबें देखता है।

पिछली पीढ़ी व अब की पीढ़ी में जो लोग कलम थामे है वह वही लोग हैं; जो भारत से हिन्दी में शिक्षा ग्रहण करके बड़े हुए थे। भारत के तथाकथित अंग्रेज़ी स्कूलों की पैदाइश इस क्षेत्र में फिस्सड्डी रही। अब जो फसल छात्रों की यहाँ आ रही है, वह हिन्दी के एक भी लेखक या कवि को नहीं जानती। रामायण किसने लिखी यह भी नहीं पता? वह लेखक कैसे बनेंगे भला?

हिन्दी का भविष्य ठीक रखना है तो सरकार को अपना नज़रिया बदलना होगा। शिक्षा में हिन्दी के स्तर को उठाना होगा। व्यवहार में हिन्दी को अनिवार्यता देनी होगी। मीडिया में हिन्दी लानी होगी। नेताओं को हिन्दी में भाषण देने होंगे।

सुमन कुमार घई

बहुत पहले एक साक्षात्कार में ऐसा ही कुछ प्रश्न पूछा गया था, उत्तर आज भी वही है-जब हिन्दी भाषा मनोरंजन की भाषा बन जाएगी, हिन्दी को प्रचार-प्रसार की आवश्यकता नहीं रहेगी। अगर विदेशों में लिखा जा रहा साहित्य मनोरंजक है, उच्च कोटि का है, मानवीय संवेदनाओं को छूता है तो आप कुछ ऐसे लोगों को भी उसे पढ़ता पाएँगी, जो स्वीकार नहीं करना चाहते कि वह हिन्दी कहानियाँ पढ़ते हैं-है न अजीब बात!

❐

प्रश्नः यह एक विचारणीय विषय है, अगर अगली पीढ़ी हिन्दी में नहीं आई तो क्या हमारी पीढ़ी के बाद विदेशों में हिन्दी लेखन समाप्त हो जायेगा?

उषा राजे सक्सेना

विदेशों में जो लोग हिन्दी में लेखन कर रहे हैं वे लोग पहली पीढ़ी के लोग हैं। दूसरी पीढ़ी के पास न तो हिन्दी भाषा है न ही हिन्दी भाषा के संस्कार, अपवाद को छोड़ दें। यदि भारत से विदेशों में माइग्रेशन की प्रक्रिया जारी रही तो भारतीय युवा

हिन्दी भाषा साहित्य के संस्कार लेकर विदेशों में आते रहेंगे और लेखन की प्रक्रिया संभवत: चलती रहेगी। यद्यपि यह संभावना भी कुछ कमज़ोर ही लगती है क्योंकि भारत का महत्त्वाकांक्षी युवावर्ग भी आजकल अँग्रेज़ी भाषा की शब्द सम्पदा लेकर ही आगे बढ़ रहा है। विदेशों में पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ ही हिन्दी में लेखन कर रही हैं और अब ५० वर्ष की आयु के नीचे की महिलाएँ भी अँग्रेज़ी भाषा की शब्द संस्कृति में दक्ष होने लगी है तो हिन्दी लेखन के भविष्य पर अपने आप ही एक बृहद प्रश्न चिन्ह लग जाता है..।

कृष्ण बिहारी

हम सभी लोग जो पचीस-तीस साल पहले वहाँ गए, हिन्दी में सोचते थे इसलिए हिन्दी में लिखा लेकिन अब जाने वाले या बीस साल बाद जाने वाले हिन्दी में न तो सोचेंगे और न बोलेंगे इसलिए यह कहना कि हिन्दी में विदेश में लेखन चलता रहेगा, अविश्वसनीय लगता है। अभिव्यक्ति तो रहेगी मगर हो सकता है कि माध्यम बदल जाए।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

इस सच को स्वीकार कर लेना चाहिए कि अगली पीढ़ी कोई हिन्दी का साहित्यकार साहित्य को न दे सकेगी। बस एक ही आशा है कि जो नई पौंध भारत से नौकरी या उच्च शिक्षा के लिए यहाँ आ रही है अगर वह अपने साथ हिन्दी को बांध के लाए तो कोई आशा बंध सकती है। पर वास्तव में देखा जाए तो स्वयं भारत में ही हिन्दी की उपेक्षा क्या कम है। उस उपेक्षा को कैसे आशा और आस्था में बदला जा सकता है यह अपने आप में एक ज्वलंत प्रश्न है।

अनिल प्रभा कुमार

हमारी पीढ़ी जो भारत से आकर विदेश में बस गई है वह अपने सामान में साहित्य-प्रेम की पोटली भी उठा लाई थी। उसी को खोलकर वह संस्कारित होती रहती है। यदि अगली पीढ़ी हिन्दी भाषा को ही जीवित रख पाए तो इसे ही एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानकर संतोष कर लें तो बेहतर है। यह एक कटु और भयानक होने के साथ दुखद सच्चाई भी है कि हमारी पीढ़ी विदेशों में हिन्दी साहित्य रचना करने वालों की अन्तिम पीढ़ी होगी।

मैं विश्वविद्यालय में हिन्दी भाषा और हिन्दी-साहित्य दोनों का प्राध्यापन करती हूँ (अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से)। जब युवाओं से हिन्दी सीखने की रुचि के बारे में प्रश्न उठता है तो पहला जवाब यही होता है कि वे इसलिए हिन्दी भाषा सीखना चाहते हैं कि हिन्दी फ़िल्मों को समझ सकें। दूसरा कारण कि नानी-दादी से बात करना चाहते हैं। जब भी मैं उन्हें कुछ मौलिक लिखने के लिए प्रेरित करती हूँ तो पहले वह रोमन अंग्रेज़ी में लिखते हैं और फिर उसका रूपान्तरण हिन्दी भाषा में कर देते हैं। इसके बाद कम्प्यूटर ज़िन्दाबाद; जो इतना बचकाना अनुवाद करता है कि मैं भौचक्की-सी बैठ जाती हूँ। एक दिन मैंने अपने हिन्दी साहित्य के छात्रों से कहा कि जैसे-जैसे विचार मन में आते जाते हैं, वैसे ही लिखते जाओ। मैं बात उन युवाओं की कर रही हूँ; जो यहाँ पैदा हुए हैं, जो नए-नए भारत से आ रहे हैं, उनकी कहानी अलग है। वे यहाँ विज्ञान विषयों में उच्च शिक्षा लेकर अमीर बनना चाहते हैं, साहित्यकार नहीं। निराश होकर आख़िर मैंने अपने छात्रों से पूछ ही लिया कि 'तुम सोचते किस भाषा में हो?' अंग्रेज़ी में, सबका एक ही जवाब था। अब अंग्रेज़ी में सोचने वाला हिन्दी में क्यों और कैसे लिखेगा!

सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

जब तक भारतीय और भारतीय संस्कृति दुनिया में हैं तब तक हिन्दी भी इस दुनिया में है।

कादम्बरी मेहरा

अवश्य हो जाएगा मगर उसका दोष यहाँ जन्मे बच्चों पर नहीं मढ़ा जा सकता। न ही यहाँ अभिभावकों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। यहाँ कोई ऐसी अनिवार्य कक्षाएँ नहीं उपलब्ध हैं। इसके लिए भारत सरकार को प्रबंध करना चाहिए।

इस सदी में अधिक मात्रा में युवा कार्यकर्ता भारत से बाहर फैले हैं। वह अधिक संपन्न व शिक्षित हैं। पिछली पीढ़ी की तुलना में आर्थिक रूप से अधिक सुरक्षित हैं। हम आधी कमाई घर भेजते थे। अब ऐसा नहीं है। मगर वे लेखन नहीं कर सकते क्योंकि हिन्दी उनकी कमज़ोर है और अंग्रेज़ी में वह अनुभूति नहीं कर पाते, वह भाषा के साथ-साथ एक परजीवी अस्मिता से संत्रस्त हैं; जो उन्हें आतंरिक रूप से खंडित किए डालती है। हिन्दी का अवरोह परजीवी युवा संस्कृति की सृष्टि कर रहा है। अभी भी समय है। शिक्षा में हिन्दी को वापिस लाना चाहिए।

सुमन कुमार घई

यह वास्तव में चिंता का विषय है। कठोर वास्तविकता यही है कि अथक प्रयासों के बाद विदेश में जन्मी पहली पीढ़ी हिन्दी भाषी तो हो सकती है परन्तु कुछ लिखना उनके लिए असंभव सा ही है। यह मैं अपने कैनेडियन अनुभव के अनुसार कह रहा हूँ। दूसरी पीढ़ी तक तो शायद बोलना भी हिन्दी में न हो पाए। विदेशों में हिन्दी लेखन में नव प्राण केवल भारत से आए नए आप्रवासी ही फूँक सकते हैं-परन्तु महानगरों से आए अधिकतर युवा हिन्दी लिखने-पढ़ने में बहुत कम सक्षम हैं। काश! हिन्दी साहित्य भी अंग्रेज़ी साहित्य की तरह विभिन्न देशों में अपना रंग लेकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता।

❐

प्रश्न: इस सदी में स्त्री, दलित, ग्रामीण पृष्ठभूमि और भूमंडलीकरण के दौर में उपभोक्तावादी संस्कृति तथा कई प्रयोगों से लबरेज़ कहानियाँ भारत में लिखी गई हैं। देश, परिवेश, चुनौतियों और सरोकारों की भिन्नता से हमारी कहानियाँ पाठकों को परदेस से आई पुरवाई सी लगती हैं। हमारा लेखन ही हमारी पहचान है। पर हममें से बहुत से प्रवासी लेखक कहलवाना पसन्द नहीं करते। क्या सोचते हैं आप?

उषा राजे सक्सेना

हिन्दी पट्टी के पंचों ने 'प्रवासी साहित्य', 'दलित साहित्य', 'महिला लेखन', 'युवा लेखन' आदि के जो कोष्टक बनाएँ वे हिन्दी साहित्य के लिए बहुत ख़तरनाक हैं। साहित्य को खाँचो में बाँटना उचित नहीं है। हिन्दी के शुद्धतावादी साहित्यकारों की सदा से यह प्रवृत्ति रही है कि वे साहित्य को खाँचों में विभाजित कर उसमें भेद भाव की राजनीति पैदा करें और स्वयं उच्चपदस्त साहित्यिक नेता बने रहें। इस तरह के अराजक तत्वों से हिन्दी साहित्य की क्षति हो रही है। विदेशों में लिखा जा रहा हिन्दी

साहित्य अब जब अपना आकार और स्तर ग्रहण कर चुका है उसे किसी खाँचे की आवश्यकता नहीं है, उसे मुख्य धारा के साहित्य में समाहित कर लेना चाहिए। हिन्दी में लिखनेवाला कोई भी लेखक चाहे कहीं भी रह कर लिख रहा हो, हिन्दी का लेखक ही कहलाना पसंद करेगा। प्रवासी संकलन, प्रवासी अंक, प्रवासी सम्मेलन अभी तक तो ठीक था परंतु अब इनकी अलग से आवश्यकता नहीं है।

हिन्दी भाषा और साहित्य को ज़िंदा रखने के लिए 'एकता' की आवश्यकता है प्रवासी-आप्रवासी, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी, बम्बईया, कलकतिया की नहीं।

अब इसी समस्या को दूसरे परिपेक्ष्य में देखा जाए। आज २१वीं सदी में हम औद्यौगिकी युग से निकलकर प्रौद्योगिकी युग में आ गए हैं। हिन्दी आज भी मात्र कविता, कहानी, साहित्य और बोलचाल की भाषा तक सीमित है। वह प्रौद्योगिकी की भाषा नहीं बन पाई जब कि सारा विश्व प्रौद्योगिकी के पीछे भाग रहा है। सारी प्रोफेशनल पढ़ाइयाँ प्रभु भाषा में हो रही हैं। सारी उच्च शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा, प्रौद्यौगिकी की शिक्षा के साथ संसद की भाषा, न्यायालय की भाषा आज भी अँग्रेज़ी ही है। यूँ सत्य तो यह है कि हिन्दी ही नहीं विश्वग्राम की भाषा सभी मातृ भाषाओं के ऊपर आनेवाले भयानक संकट (भविष्य) की ओर संकेत कर रही है। हिन्दी का शोर बहुत हो रहा है पर उसे काम-काज, व्यापार और टेकनॉलोजी शिक्षा तक नहीं ले जाया जा रहा है। हिन्दी और हिन्दी साहित्य के दशा और दिशा की बात करते हुए आप अपने दायित्व का पल्ला झाड़ते हुए हिन्दी भाषा के अवनति का कारण भाषाई साम्राज्यवाद की राजनीति कहें या वैश्विक षड़यंत्र कहें पर मैं तो इसे सामाजिक, सामूहिक और व्यक्तिगत हिन्दी के हितैषियों की स्वार्थपरता ही कहूँगी।

कृष्ण बिहारी

प्रवासी तो हर वह व्यक्ति है जिसने अपना गाँव या जन्मभूमि छोड़कर अपने जीवन यापन के लिए कोई अन्य स्थान चुना। कभी उसने यह काम स्वेच्छा से किया तो कभी मजबूरी में। व्यक्ति तो प्रवासी हो सकता है मगर रचनाकार भाषा का होता है। आप अमेरिका में और मैं अरब दुनिया में रहते हुए हिन्दी में ही लिख रहे हैं। ऐसा ही अन्य स्थानों पर रहते हुए अन्य लेखक भी कर रहे हैं तो हमें खुद को हिन्दी का लेखक मानना और बताना भी चाहिए।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

प्रवासी कहलाना कोई गाली नहीं है। ब्लकि यह एक पहचान है जो हमारी रचनाओं से प्रेषित होती है और जो भारत से भिन्न मुद्दों को। संवेगों या संवेदनाओं को लेकर रची जाती हैं। एक अलग तरह की मिश्रित संस्कृति के भाव-अनुभाव और आने वाली पीढ़ी को निर्माण करने वाले तथ्यों की और निर्देश करती है। इसलिए इस का एक अलग ही रूप है जो मेरी दृष्टि में बहुत ही स्वस्थ और आशावान है।

अनिल प्रभा कुमार

मुझे तो कहानी विधा पर आए दिन बदलते लेबल, नए-नए गुट और विमर्शों के खाँचें, उन्हीं में से एक प्रवासी-अप्रवासी ठप्पे के झगड़े बड़े ही अर्थहीन से लगते हैं। कभी-कभी लगता है कि राजनीति की तरह साहित्य में भी लोग चर्चा में रहने के लिए मुहिम चलाते रहते हैं। प्रवास तो हम कर ही गए हैं। अगर कोई 'प्रवासी लेखक' कहकर हमारी चर्चा करता है तो उसकी इच्छा। व्यक्तिगत रूप से मैं प्रवासी लेखक कहलाने का बुरा नहीं मानती। मुझे तो अच्छा लगेगा कि अगर कोई कहे, 'वह प्रवासी लेखिका है न अनिलप्रभा कुमार, बहुत अच्छा लिखती है।' मेरी पहचान मेरा लेखन हो मेरा वास नहीं।

सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

इस प्रकार का वातावरण व्यक्तिगत रूप में मैं विदेश में भी महसूस करता हूँ लेकिन मैं इसे नकारात्मक तौर पर नहीं लेता हूँ बल्कि इस प्रकार के साहित्य का विश्लेषण सामाजिक परिवेश में करता हूँ। और अगर मुझे ज़रूरी लगता है तो उसे मैं अपने शब्दों में पाठकों के सामने लाने की कोशिश करता हूँ।

कादम्बरी मेहरा

हमारा लेखन ही हमारी पहचान है। मगर केवल हमारे व्यक्तित्व की ही पहचान नहीं है वरन् हमारी संस्कृति की भी पहचान है। हमारी रगों में दौड़ती हमारी हिन्दी भाषा की पहचान है। यदि हमारे पढ़ने वाले हमारे प्रशंसक, हमारे ग्राहक भारत में रहते हैं, मुख्य रूप से तो हमें उनका लेखक पहले व प्रवासी बाद में गिना जाना चाहिए। हिन्दी में लिखने के लिए भारत में रहना अगर ज़रूरी नहीं है तो कोष्ठकों की ज़रूरत नहीं है।

प्रकाशक आजकल संग्रह छापने में कटिबद्ध हैं। संग्रह बिकता है। मगर मेरे विचार में विदेशों में लिखे जा रहे कथा साहित्य को अलग से संगृहीत करने के बजाए यदि संग्रह अमुक वर्ष की श्रेष्ठ कहानियाँ आदि जनरल शीर्षकों के तहत छापी जाएँ और उनमें भारत और विदेश दोनों की रचनाएँ संकलित की जाएँ तो अधिक उचित होगा।

हिन्दी में नित्य बनते जा रहे कोष्ठकों के कारण जो अलगाव पैदा हो रहा है उसको मिटाना बहुत ज़रूरी है और यह विभाजन भारत ही रोक सकता है क्योंकि यह दलित बनाने की ही प्रक्रिया है।

सुमन कुमार घई

इस विषय पर दो मत हैं। जैसा कि आपने कहा कि बहुत से लेखक अपने आप को प्रवासी कहलवाना पसन्द नहीं करते-यह उनका मुख्यधारा के प्रति विद्रोह है। जब हम अंग्रेज़ी के कैनेडियन लेखन को 'कैनेडियाना', यू.एस.ए. के लेखन को 'अमेरिकन इंग्लिश लिटरेचर' इत्यादि कह सकते हैं, तो विभिन्न देशों में बसे लेखकों को क्यों एक ही पुलिंदे में बाँध दिया जाता है-प्रवासी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हर देश में लिखे जा रहे साहित्य में उस देश की सुगंध रहती है। शायद एक ही संज्ञा-प्रवासी देने वाले भारतीय आलोचक हैं, जो इन सूक्ष्म अंतरों को समझने में असमर्थ हैं। साहित्यकार होने के लिए ऐसे आलोचकों की स्वीकृति को क्यों आवश्यक समझा जाए।

दूसरी विचारधारा उन लेखकों की है कि वह किसी भी तरह भारत में प्रकाशित होना चाहते हैं। चाहे उन पर किसी भी नाम की मोहर लगे। वह भी गलत नहीं हैं, क्योंकि उनका लिखा कोई पढ़ तो रहा है। और विदेशों में प्रकाशन के सीमित साधनों के रहते कुछ समझौते तो करने ही पड़ेंगे। मज़े की बात तो यह है कि जब कोई प्रवासी लेखक लोकप्रिय हो जाता है तो भारतीय प्रकाशक उस पर से प्रवासी चिप्पी हटा भी लेते हैं।

❐

इक्कीसवीं सदी की प्रवासी कहानी

तेजेन्द्र शर्मा

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानीकार तेजेन्द्र शर्मा भारत के बाहर हिन्दी का लेखन कर रहे महत्त्वपूर्ण लेखकों में हैं। उन्हें हिन्दी के मुख्य धारा का लेखक माना जाता है। भारत के बाहर हिन्दी में हो रहा लेखन आज जिस मुकाम पर है उसमें उनका भी एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। कथा यूके संस्था के माध्यम से इन्दु शर्मा कथा सम्मान तथा पद्मानंद सम्मान वे पिछले कई वर्षों से देते आ रहे हैं। हिन्दी चेतना के अनुरोध पर उन्होंने भारत के बाहर हिन्दी में हो रहे कथा लेखन की व्यापक पड़ताल अपने लेख के माध्यम से की है तथा प्रवासी कहानी में पिछली सदी में आये बदलावों को पाठकों के सामने स्पष्ट करने की कोशिश की है। हिन्दी कहानी ने नई सदी में जहाँ एक और भारत में नए प्रयोगों, नए तेवरों के साथ पाठकों को एक नई दुनिया से परिचित कराया तो वहीं भारत के बाहर हो रहे हिन्दी कथा लेखन में भी उल्लेखनीय परिवर्तन नई सदी में देखने को मिले। भारत के बाहर हो रहा कथा लेखन अब केवल प्रवासी लेखन नहीं है, वह हिन्दी की मुख्य धारा का लेखन है। नई सदी में जो प्रवासी कथा लेखन सामने आया वो चौंकाने वाला है। वहाँ की कहानियाँ यहाँ की मुख्य धारा में अपना अधिकार प्राप्त कर चुकी हैं, तथा ये अधिकार 'साड्डा हक एत्थे रख' वाली शैली में खुद प्राप्त किया है। नई सदी के नए तेवरों के साथ सामने आई भारत के बाहर रह रहे हिन्दी कथाकारों के बारे में तेजेन्द्र शर्मा का यह लेख कई सारी जानकारियाँ समेटे हुए है।

तेजेन्द्र शर्मा

भारत में जब कभी भी भारतवंशियों या प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों के विषय में बात की जाती है तो मॉरीशस, सुरीनाम, फ़िजी, और त्रिनिदाद तक सीमित हो जाती है। उनका जहाज़ों पर लद कर जाना, एक सौ पचास साल का संघर्ष, गन्ने की मज़दूरी अब लगभग रोमांटिक सा असर करने लगे हैं। इस आरक्षण कोटे में आहिस्ता आहिस्ता अमरीका, ब्रिटेन, युरोप, खाड़ी देशों और अन्य देशों के लेखकों को भी शामिल कर लिया गया है। अब कभी-कभी उनके लेखन के बारे में चर्चा होने लगी है। ले दे कर अभिमन्यु अनत या चंद और नाम लेकर बात समाप्त कर दी जाती है।

पिछले कुछ दशकों से अमरीका, कनाडा, ब्रिटेन, युरोप, खाड़ी देशों, सिंगापुर एवं ऑस्ट्रेलिया आदि के प्रवासियों ने भी हिन्दी साहित्य लिखना शुरू किया है। मैंने पहले भी कहीं लिखा था कि कहानी विधा में तो जैसे इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में ब्रिटेन में सृजनात्मक्ता का जैसे एक विस्फोट सा हुआ है। सच तो यह है कि पश्चिमी देशों के हिन्दी लेखकों को प्रवासी लेखक कहना उचित भी नहीं है। ये वो लोग हैं जो पढ़े लिखे हैं, आर्थिक रूप से सक्षम हैं, अपनी मर्ज़ी से विदेश में बसने गये हैं। इनके लिये भारत कोई तीर्थ स्थान नहीं है। ये लोग वैसे ही हैं जैसे कोई यू.पी. या बिहार से दिल्ली या मुंबई काम के सिलसिले में जाता है और वहीं बस जाता है। मगर वह अपने गाँव से कटता नहीं है, निरंतर गाँव जाता है और वहाँ की ज़िन्दगी से भी वैसे ही जुड़ा रहता है जैसे अपनाए हुए शहर से।

पश्चिमी देशों के कहानीकारों की एक विशेषता मुंबई के हिन्दी कहानीकारों से बहुत मिलती जुलती है। ठीक मुंबई ही की तरह पश्चिमी देशों के हिन्दी कहानीकार भी पहली पीढ़ी के प्रवासी हैं। जब वे भारत से इन देशों में बसने के लिए आते हैं, तो अपने शहर, अपने देश की यादें साथ ले कर आते हैं। उनकी शुरूआती कहानियों में नॉस्टेलजिया स्वाभाविक रूप से दिखाई देता है। जैसे नया हैण्ड पम्प लगाने पर शुरू-शुरू में पानी के साथ मिट्टी भी चली आती है, ठीक उसी तरह हमारे पहली पीढ़ी के प्रवासियों की कहानियों में भी देश की यादों की मिट्टी कहानियों में अपनी ख़ुशबू लिए साथ हो लेती है। आहिस्ता-आहिस्ता लेखक अपने आसपास के समाज से जुड़ना शुरू करता है और यही वह बिन्दु होता है जहाँ से उसका लेखन हिन्दी साहित्य को कुछ नया देना शुरू करता है। 'लाल पसीना' से जो समृद्धि हिन्दी साहित्य को मिलनी शुरू हुई, वो अब पश्चिमी देशों के लेखकों द्वारा अधिक विस्तृत रूप में हमारे सामने आने लगी है।

मैं दिसम्बर १९९८ में लंदन में बसने आया था। मुझे याद है कि १९९९ तक ब्रिटेन के किसी भी हिन्दी लेखक का अपना कहानी संकलन प्रकाशित नहीं हुआ था। हाँ छिटपुट कहानियाँ इधर-उधर अवश्य प्रकाशित होती रही होंगी। मगर यहाँ के साहित्य की कोई पहचान अभी उभर कर नहीं बनी थी। अमरीका में उषा प्रियंवदा, और सुषम बेदी तथा आबुधाबी में कृष्ण बिहारी स्थापित कथाकार थे और डेनमार्क में अर्चना पेन्युली उभर कर आ रही थीं। ब्रिटेन का पहला संकलित कहानी संग्रह-मिट्टी की सुगंध (संपादक-उषा राजे सक्सेना)-का प्रकाशन १९९९ में हुआ। ब्रिटेन के इस पहले संकलन की भूमिका में रामदरश मिश्र ने लिखा है, 'इस संग्रह में विशिष्ट भूमि पर सामान्य कहानियाँ भी हैं, सामान्य भूमि पर विशिष्ट कहानियाँ भी हैं, और विशिष्ट भूमि पर कुछ विशिष्ट कहानियाँ भी हैं। कुल मिला कर यह संकलन यू.के. में रह रहे हिन्दी कहानीकारों के विविध रंगों और

उपलब्धिगत स्तरों की पहचान कराएगा।'

तब से आज तक ब्रिटेन, अमरीका जैसे देशों में हिन्दी कहानी ने एक लम्बी यात्रा पूरी की है। वहीं यह भी सच है कि हम अभी तक इन देशों में उस पहले लेखक की प्रतीक्षा में हैं; जिसका जन्म इन देशों में हुआ हो। यानि कि इन देशों की दूसरी और तीसरी पीढ़ी शायद ही कभी हिन्दी साहित्य सृजन करने में सक्षम हो पाए।

एक ज़माना था जब ब्रिटेन और अमरीका में बच्चों से कहा जाता था, 'अरे, थोड़ी हिन्दी बोलनी सीख लो। जब वापिस भारत जाओगे तो दादा-दादी, नाना-नानी से कैसे बात करोगे?' आज स्थिति यह है कि ऐसा कहने वाले माँ-बाप अब स्वयं नाना-नानी और दादा-दादी बन गए हैं। उनके नवासों और पोते-पोतियों को यह समस्या भी नहीं है। क्योंकि उनके बुज़ुर्गों को अंग्रेज़ी आती है।

कवि-आलोचक मनोज कुमार श्रीवास्तव ने यमुना नगर के प्रवासी कहानी सम्मेलन में अपने लेख में कहा था, 'प्रवासी साहित्य की अधिकतर रचनाएँ कभी वर्तमान और कभी विगत के बीच इतनी जल्दी-जल्दी शिफ़्ट करती हैं कि वे कई बार कहानी से ज़्यादा कहानीकार की अंतर्कथा बताती चलती हैं। एक ऐसे रचनाकार की जो रहता कहीं है और जिसे याद कहीं और का यथार्थ आता रहता है। जैसे उसके दिल के भीतर एक टेक्स्ट के अंदर एक दूसरा टेक्स्ट बन रहा है। कभी-कभी भीतर का या कहें कि केन्द्रीय टेक्स्ट बाहर के या परिधि के टेक्स्ट को काटता है।'

वहीं प्रख्यात आलोचक डॉ. कमल किशोर गोयनका प्रवासी साहित्य के बारे में अपनी एक अलग राय रखते हैं। उनका मानना है कि विदेशों में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य को प्रवासी साहित्य कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। उनके अनुसार, 'हिन्दी के इस साहित्य का रंग रूप, उसकी चेतना, संवेदना एवं सृजन प्रक्रिया भारत के हिन्दी पाठकों के लिए एक नई वस्तु है, एक नए भावबोध एवं नए सरोकार का साहित्य है। एक नई व्याकुलता, बेचैनी तथा नए अस्तित्व बोध व आत्मबोध का साहित्य है जो हिन्दी साहित्य को अपनी मौलिकता एवं नए साहित्य संसार से समृद्ध करता है।'

मैं वर्ष २००० से २०१३ के बीच लिखी गई १० कहानियों का ज़िक्र इस लेख में करना चाहूँगा; जिन्होंने मेरा ध्यान आकर्षित किया है। इन कहानियों में हमारे लेखक अपने अपनाए हुए देश के अपने अनुभवों को अपने पाठकों के साथ बांटते हैं। कहानियाँ और भी हैं मगर स्थानाभाव के कारण इतनी ही कहानियों का ज़िक्र करूँगा। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह कहानियाँ भी आम आदमी की कहानियाँ हैं। यह आम आदमी ब्रिटेन, अमरीका, या कनाडा का आम आदमी है। उसकी समस्याएँ उन देशों की संस्कृति और हालात से उपजी समस्याएँ हैं। हमें इन कहानियों में किसी प्रकार का वाद ढूँढने की आवश्यकता नहीं ये 10 कहानियाँ मानव मन के दर्द से उपजी कहानियाँ हैं।

SAI SEWA CANADA
(A Registered Canadian Charity)
Address: 2750, 14th Avenue, Suite 201, Markham, ON, L3R 0B6
Phone: (905) 944-0370 Fax: (905) 944-0372
Charity number: 81980 4857 RR0001

Helping to Uplift Economically and Socially Deprived Illiterate Masses of India

Thank you for your kind donation to SAI SEWA CANADA. Your generous contribution will help the needy and the oppressed to win the battle against lack of education and shelter, disease, ignorance and despair.

Your official receipt for Income Tax purposes is enclosed.

Thank you, once again, for supporting this noble cause and for your anticipated continuous support.

Sincerely yours,

Narinder Lal • 416-391-4545

Service to humanity

(1)

'मेहरचंद की दुआ' (अचला शर्मा)

अचला शर्मा की कहानी 'मेहरचंद की दुआ' पाकिस्तान से लंदन में आ बसे नाई महेरआलम की है। दुकान के मालिक नवीन भाई अपनी दुकान की ज़रूरत के अनुसार वह उसका नाम बदल कर मेहरचंद कर देते हैं। 'बात यह है कि मेरे सैलून में आने वाले ज़्यादातर क्लायंट गुजराती हैं, वो भी ऐसे हिंदू जो माँस-मच्छी तक नहीं खाते। अवे तारो नाम मेहरचंद। नवीन भाई ने गुजराती में कहा था जिसका मतलब था कि अब तुम्हारा नाम होगा-मेहरचंद। मंज़ूर हो तो बोलो?'

कहानी ब्रिटेन की चुनावी राजनीति पर भी ध्यान केंद्रित करती है, 'हाँ, इस इलेक्शन में लिब्रल डेमोक्रेट कह रहे हैं कि अगर वो जीत गए तो जितने भी इल-लीगल लोग यहाँ दस साल से बसे हैं, उन सबको माफ़ी मिल जाएगी।' यानी मेहरचंद को सपने देखने की अनुमति सरकार देने वाली है। मेहरचंद दुआ माँग सकता है कि उसकी पत्नी सकीना और चार बच्चे उसके साथ आकर लंदन में रहें।

अचला शर्मा ब्रिटेन के हिन्दुओं के मन की बात भी बताती चलती हैं जब चेतन पटेल कहता है, 'मैं तो कहता हूँ कि सारे मुसलमानों को इस देश से निकाल देना चाहिए, पाकिस्तानियों को तो सबसे पहले। हिंदुओं का नाम सुना कभी बम हमलों में? कभी नहीं। मुसलमान जिस थाली में खाते हैं उसी में छेद करते हैं।'

इस पर रमेश ने कहा, 'ठीक कह रहे हैं चेतन भाई, हिंदू बेचारा मेहनत करता है, जितने पॉलिटिकल असायलम वाले मुफ़्तख़ोर हैं यहाँ, उनमें नब्बे फ़ीसदी मुसलमान हैं।'

मेहरचंद अपने धंधे से अपने मज़हब को दूर रखता है और नवीन भाई के कहने पर नीसडन के स्वामी नारायण मंदिर में जाकर बाल भी काट आता है। तभी उसके जीवन में नंदिनी आती है; जो कि उसकी सह-किराएदार है। आहिस्ता आहिस्ता दोनों में शारीरिक संबंध स्थापित हो जाते हैं। यहाँ फिर देश, धर्म, जात-पांत सब निजी ज़रूरतों के आगे बौने बन जाते हैं। अब दोनों एक दूसरे की ज़रूरत बन गए हैं। वह रात का खाना घर में खाने लगा है-गुजराती शाकाहारी खाना, जो कि नंदिनी बनाती है। नंदिनी-मेहरचंद की नैन !

कहानी का अंत होते-होते नंदिनी और मेहरचंद का रिश्ता इतना गहरा हो जाता है कि मेहरचंद के मन में एक दहशत भरा सवाल खड़ा हो जाता है, 'अगर पप्पू यहाँ आ गया तो यह सबकुछ बदल जाएगा। उसकी ज़िंदगी जैसी चल रही है, वैसी नहीं रहेगी।' वह घबरा जाता है और उसकी दुआ अचानक एक नया रूप ले लेती है, 'अल्लाह मियाँ, लिब्रल डेमोकेरेट जीतें या हारें, सरकार में आएँ चाहे न आएँ, मुझे लीगल स्टेटस मिले या न मिले, मैं तेरे रहमोकरम से जैसा हूँ बहुत ख़ुश हूँ। ऐ मेरे अल्लाह, मुझ गुनहगार बंदे पर यह करम फ़रमाता रह। आमीन सुम्मा आमीन!'

यह कहानी पश्चिमी देशों में बसे दक्षिण एशियाई मूल के लोगों का सूक्ष्म चित्रण करने वाली एक महत्त्वपूर्ण कहानी है।

(2)

'सूरज क्यों निकलता है' (सुधा ओम ढींगरा)

अमेरिका की सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'सूरज क्यों निकलता है' के पीटर और जेम्ज़ खासे ढीठ किस्म के भिखारी हैं। एक तरह से देखा जाए तो ये दोनों 'घीसू' और 'माधव' का अमरीकन अवतार हो सकते हैं। दोनों अपने हाथ में गत्ते का टुकड़ा हाथ में थामे रहते, जिस पर लिखा होता 'होम-लेस, नीड यौर हैल्प'। 'गालियाँ खा खा कर दोनों ढीठ हो चुके हैं, गालियाँ सुन कर चेहरा भाव-हीन ही रहता है और दोनों ऐसा अभिनय करते हैं कि जैसे उन्होंने कुछ सुना नहीं। गत्ते का टुकड़ा हाथ में थामे सूखे होठों पर जीभ फेरते और थूक से गला तर करने की कोशिश करते हुए, वे एक कार को छोड़ दूसरी की ओर चल पड़ते हैं।'

भारतीय पाठक के लिये यह कहानी एक नए संसार के द्वार खोलती है। भारतीय सोच यही है कि अमरीका में बहुत अमीर लोग बसते हैं जिनके पास बड़े-बड़े घर हैं, गाड़ियाँ हैं और चारों ओर सुख समृद्धि है। इसके विपरीत सुधा ओम ढींगरा अपनी कहानी के केन्द्र में दो अश्वेत भिखारियों को रखती हैं; जिनकी 'जेब में वेलफेयर में मिले भोजन के कूपनों के अतिरिक्त एक डालर भी नहीं है। ये कूपन सरकार उन्हें खाने की सामग्री खरीदने के लिए देती है। कूपन बेच कर वे शराब की बोतल और सिगरेट का पैक खरीदना चाहते हैं, पर कोई खरीददार नहीं मिल रहा उन्हें। दोनों निराश हैं, परेशान हैं, हलक पानी से बहल नहीं रहा। उसे बीयर चाहिए, व्हिस्की चाहिए। लेकिन ये सब चीज़ें वे कहाँ से लाएँ?'

अपनी शराब पीने की आदत उन्हें भीख मांगने को प्रेरित करती है। यानि कि पीटर और जेम्स मजबूर भिखारी नहीं हैं; वे अय्याश किस्म के नशेड़ी हैं; जो अपनी लत के लिये कुछ भी कर गुज़रने को तैयार हैं। मगर अमेरिका में आई आर्थिक मंदी के चलते उनकी हालत बदतर होती जा रही है।

बस में बैठते ही पहली बार पीटर ने मुँह खोला, 'भाई, मंदी ने अमेरिका के लोगों को सचमुच मार डाला है। मुझे उन पर तरस आ रहा है। उनके पास हम जैसे बेघर लोगों को देने के लिए एक डालर तक नहीं हैं।'

सुधा ओम ढींगरा दोनों के बातचीत के ढंग में व्यंग्यात्मक पुट डाल कर उस पूरी स्थिति को और भी रोचक बना देती हैं, 'सिर खुजाते हुए जेम्ज़ ने कहा, 'यार, पैसे के साथ-साथ लोगों के दिल भी छोटे हो गए हैं। इंसानियत तो रही नहीं। चिलचिलाती धूप में बैठे भीख माँगते रहे। किसी को दया नहीं आई।'

टैरी के माध्यम से लेखिका अमरीकी अश्वेत

नागरिकों की मानसिकता पर भी टिप्पणी करती चलती है, 'वैसे मैं काम क्यों करूँ? हमारे बज़ुर्गों ने वर्षों इन लोगों की गुलामी की है, अब सरकार का फ़र्ज़ बनता है कि हमारा ध्यान रखे।'

इस सफल कहानी के माध्यम से सुधा ओम ढींगरा अमरीका के निम्न वर्ग के अश्वेत लोगों के जीवन से हमारा परिचय करवाती हैं। साथ ही साथ वहाँ के बेघर लोगों का सरकार कैसे ख़्याल रखती है, यह जानकारी भी सूक्ष्म तरीके से मिलती है।

(3)

'साँकल' (ज़किया ज़ुबैरी)

ज़किया ज़ुबैरी की कहानी 'साँकल' पश्चिमी देशों में माँ और पुत्र के रिश्तों पर एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। भारतीय मूल की एक माँ के अपने पुत्र के साथ रिश्ते में आए बदलाव को यह कहानी इतनी सूक्ष्मता और गहराई से चित्रित करती है कि यह हिन्दी की महत्त्वपूर्ण कहानियों में शामिल हो जाती है। बचपन में पुत्र माँ के उन आँसुओं से विचलित हो जाता है, जो कि प्याज़ काटने से माँ की आँखों में आ जाते हैं। जैसे-जैसे पुत्र बड़ा होता जाता है, उसमें बदलाव आते जाते हैं। पश्चिमी सभ्यता उस पर अपना प्रभाव दिखाती है। वह अंग्रेज़ लड़की से विवाह करता है। माँ अपनी बहू के साथ घुलमिल कर रहती है। मगर पुत्र की अपनी पत्नी से बन नहीं पाती। उसे पत्नी से ठीक वैसी ही अपेक्षाएँ हैं जैसी कि उसके ज़मीदार प्रवृति के पिता को अपनी पत्नी से उम्र भर रही हैं।

ज़किया जी की नायिका सीमा एक उच्चवर्ग की महिला है जो कि हेअर ड्रेसर से बाल ठीक करवाती है, जिसके घर में खाना बनाने वाला खानसामा है और जो कि ब्रिटेन की राजनीति में दख़ल रखती है। ऐसी पढ़ी-लिखी महिला का पुत्र अचानक उसे पिछड़ी हुई महिला घोषित कर देता है क्योंकि वह उसे अपनी गर्ल-फ्रेण्ड को रात के समय घर में रहने की इजाज़त नहीं देती। पुत्र अपनी माँ को इतनी बुरी तरह से झिंझोड़ देता है कि उसकी बाहों पर नील उभर आते हैं। सीमा की पुत्री घर पर ही है। वह जब अपने भाई को अपनी माँ पर हमला करते देखती है तो वह पुलिस को सूचित कर देती है। पुलिस आकर प्रेमिका को घर छोड़ने के लिए विवश कर देती है और पूछती है क्या पुत्र को भी बाहर निकालना है। माँ पुत्र को नहीं निकाल पाती... माँ का दिल! पुत्र के मन में माँ के प्रति बेइन्तहा नफ़रत भर जाती है।

कहानी का अंतिम दृश्य जैसे किसी नाटक का अंतिम दृश्य है। 'बेटी रात को घर में ही रह गई है। वह और उसका पति अपने पिता के कमरे में आराम से सो रहे हैं... सीमा शरीर के दर्द से लड़ रही है.... आत्मा के घाव सहला रही है.... मुँह में धनिये के बीजों का स्वाद है मगर दिल में एक डर भी है... कहीं अपने ग़ुस्से में समीर उसकी हत्या तो नहीं कर देगा ? ... नहीं .. नहीं... यह नहीं हो सकता... आख़िर पुत्र है। भला ऐसा कैसे कर सकता है। मगर दिल का डर उसे सोने नहीं दे रहा। बिस्तर पर करवटें बदल रही है... ' एकाएक बिस्तर से उठती है सीमा और भीतर से कमरे की साँकल चढ़ा देती है। सीमा का अपने दरवाज़े पर साँकल चढ़ाना जैसे माँ-पुत्र के रिश्ते पर साँकल चढ़ा देती है।

(4)

'हाइवे-४७' (अर्चना पेन्यूली)

जहाँ ज़किया ज़ुबैरी की नायिका सीमा अपने पति के ज़ुल्म सहती है मगर परिवार के साथ रहती है, विद्रोह नहीं कर पाती है। वहीं अर्चना पेन्यूली 'हाइवे-४७' की नायिका शुभ की परिस्थिति इस मामले में अलग है कि उसका पति संदीप उसे डेन्मार्क से भारत पत्र के माध्यम से ही तलाक़ की मांग करता है ताकि वह अपनी नई गोरी प्रेमिका के साथ विवाह कर सके।

शुभ एक ठेठ भारतीय नारी की तरह रो धो कर चुप नहीं बैठती। वह अपनी बात अपने पति तक सही परिपेक्ष्य में पहुँचा देती है, 'उसने संदीप के सामने एक शर्त रखी कि वह उसे व बच्चों को पहले कोपनहेगन बुलाने का इंतज़ाम करे। हिन्दुस्तान के एक पूरब प्रदेश की संकुचित समाजिक धारणा में वह तलाक के लेबल के साथ निर्वाह नहीं कर सकती। फिर दो पुत्रों को वह उनके पिता के सहयोग के बिना नहीं पाल सकती। बेटे अपने पिता के करीब रहेगें तो अच्छा रहेगा।'

कहानी में शुभ के जीवन, उसकी गुर्दों की बीमारी आदि के बारे में तो बात करती ही है, हमें यह भी पता चलता है कि संदीप का दूसरा विवाह भी असफल हो जाता है। वह वापिस शुभ के जीवन में आना चाहता है, मगर शुभ साफ़ मना कर देती है। उसकी एक नई प्रेमिका बन जाती है जिन्जर।

कहानी का सबसे अहम पल है जब शुभ का बेटा अपने पिता के पक्ष में खड़ा हो कर माँ से कहता है, 'माँ, होश में आओ,' राहुल गुस्से से बोला। 'इस प्लेयर ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा?' तुरन्त आगे बढ़ कर उसने ज़मीन से प्लेयर उठा लिया। उसे ऐसे सहलाने लगा जैसे उस पर गहरी चोट लग गई हो। शुभ ने तमतमाती दृष्टि से राहुल की तरफ़ देखा। वह रूखाई से बोला, 'अगर तुम पापा को पसन्द नहीं करती तो यह मत समझो कि हम भी उनसे नफ़रत करने लग जाएँ, हमें पापा अच्छे लगते हैं और उनकी गर्लफ्रेण्ड भी।' यहाँ अर्चना पेन्यूली बारीक़ी से दिखाती है कि युरोप में पले बड़े बच्चों की सोच कितनी अलग हो सकती है।

(5)

'आख़िरी गीत' (नीना पॉल)

सम्बन्धों की ही कहानी कहती है लेस्टर (ब्रिटेन) की नीना पॉल की 'आख़िरी गीत'। पिता द्वारा अपने परिवार को छोड़ जाने के बाद पुत्री के दिल में पिता के प्रति नकारात्मक भावनाओं का अम्बार भर जाता है। किन हालात में पुत्री का हृदय परिवर्तन होता है और ग़लतफ़हमियाँ किस ट्विस्ट से दूर होती हैं-यही इस कहानी के केन्द्र में है। चरित्र पूरी तरह ब्रिटेन के भारतवंशियों की दो पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी सोच, कर्म और प्रतिक्रियाएँ उनके संस्कारों का चित्रण करती हैं।

जब सोनल को उसकी माँ कहती है कि कुछ दिन पिता के साथ जा कर रहना है, तो सोनल भड़क जाती है, 'हक़! हक़ की बात तो मम्मी आप ना ही करिये तो अच्छा होगा। क्या उस समय हमारा हक़ नहीं बनता था ये जानने का, कि आख़िर डैडी हमें कुछ बताए बिना चले क्यों गए। वह भी मुझे मझधार में छोड़ कर। कितनी शर्म आई थी मुझे अपने दोस्तों के सामने। मैं कहीं नहीं जाऊँगी।'

सोनल का मानना है कि उसके पिता /...सिर्फ़ अपने संगीत से प्यार करते हैं या फिर..... जिसके लिए उन्होंने हमें छोड़ा। मुझे नफ़रत है उनके हरमोनियम और तानपूरे से। जिस दिन डैडी हमारी ज़िंदगी से गए मैंने उसी दिन कसम खाई थी कि अब मैं कभी नहीं गाऊँ गी।'

अच्छा संगीत कहाँ से मिल सकता है, उसके बारे में कपिल का कहना है, 'यह संगीत तो प्रकृति के कण-कण में बसा हुआ है। कभी ख़ामोशी में बैठ कर भंवरों की गुन-गुन सुनो। कबूतरों की गुटरगूं सुनो, कोयल, पपीहा इन सब की आवाज़ में तुम्हें एक रिदम भरा संगीत सुनाई देगा। इनका संगीत ले कर जो धुन बनेगी ना ऐंजल वह अपने में ही एक नायाब संगीत होगा। तुम ऐसा संगीत बना सकती हो। मैंने तुम्हारी आवाज़ में वह तड़प महसूस की है। बस तुम्हें सही रास्ते की ज़रूरत है।'

कहानी के अंत में जब सोनल को अपने पिता के उनसे अलग होने का असली कारण पता चलता है तो उसके मन से अपने पिता के प्रति विषाद ख़त्म हो जाता है और वह अपनी माँ की ओर ठीक उन्हीं निगाहों से देखती है; जिस तरह सीज़र कह रहा हो, 'ब्रूटस, तुम भी!'

कहानी के अंत का संकेत बहुत कलात्मकता से दिया गया है। सम्बन्धों की जटिलता की गुत्थियों को कहानी खोलती है।

कहानी की ज़बान बोलचाल की ज़बान है फिर भी उसमें कविता का पुट है। पिता पुत्री में दो तरह का रिश्ता पाठकों के सामने आता है-एक अणुवांशिक और दूसरा कला के माध्यम से। कहानी का अंत कहानी में सघन ऊर्जा भर देता है।

(6)

'सुबह साढ़े सात से पहले'(सुमन कुमार घई)

पश्चिमी देशों में भारतवंशी पति-पत्नी के सम्बन्धों की नई व्याख्या करते हैं कनाडावासी सुमन कुमार घई अपनी कहानी 'सुबह साढ़े सात से पहले' में। अमरीका-कनाडा में बसे भारतीय आपसी सम्बन्धों में भी पैसे की सत्ता को पूरा महत्त्व देते हैं। दरअसल पैसा कमाना ही परिभाषित करता है कि घर में सत्ता किसकी चलेगी-पति की या फिर पत्नी की। और पति को इन हालात से समझौता करने में कोई कठिनाई भी पेश नहीं आती।

'मीना ने बचपन से ही स्वधारणा बना ली थी कि वह अपनी माँ जैसा जीवन नहीं जीएगी। मीना को राजीव जैसा प्यार और आदर देने वाला ऐसा जीवन-साथी मिला जिसने मीना के बचपन की कड़वाहट को अगर समाप्त नहीं किया तो बहुत गहरे दबा अवश्य दिया था। मीना ने बचपन में जो प्रताड़ना सही थी, शायद यह उसी का परिणाम था कि वह बच्चा पैदा करना ही नहीं चाहती थी।'

'बहुत अंतर होता है समय और देश का। कहाँ साठ के दशक का भारत और कहाँ अगली सदी के दूसरे दशक का कैनेडा। सामान्यता के भी मापदंड बदल जाते हैं। परन्तु मीना के बाप के मापदंड नहीं बदले थे। भारत में रहते हुए जैसा व्यवहार पत्नी और बच्चों के साथ किया था, वह यहाँ आने के बाद भी जारी रहा था।'

'आई. टी. के शेयर गिरने शुरू हुए तो बस गिरते चले गए। कुछ सप्ताहों में कम्प्यूटर से सम्बन्धित कंपनिया बंद होने लगीं। राजीव भी इसकी चपेट में आ गया। राजीव एक बार बेकार हुआ तो बेकार ही रहा क्योंकि जब तक मार्किट सुधरी, तब तक सॉफ़्टवेयर की कंपनियाँ भारत जा चुकी थीं और हार्डवेयर की चीन।'

'राजीव की पढ़ाई का अब कोई मूल्य नहीं था। अपने मित्रों की ओर देखता तो उसका मन और भी बुझ जाता। कोई टैक्सी चला रहा था तो कोई इंश्योरेंस एजेंट बन चुका था। वह भी सोच रहा था कि क्या करे? मीना से राजीव का बुझा चेहरा नहीं देखा जाता था। और फिर एक दिन मीना ने एक सुझाव दिया और जीवन के नियम ही बदल दिए।'

'देखो राजीव, मेरी नौकरी इतनी अच्छी है और इतना तो कमा ही लेती हूँ कि तुम्हें कोई चिंता होनी ही नहीं चाहिए। आराम से घर रहो-आज के बाद तुम घरेलू पति और मैं कमाऊ पत्नी।' कहते हुए मीना मुस्कुराने लगी।

यह कहानी इस मामले में सबसे अलग है कि यह विदेश में भारतीय मूल के पति-पत्नियों के सम्बन्ध को नए अर्थ देती है। कहानी में बहुत से छोटे-छोटे ऐसे पल हैं; जो गुदगुदाते भी हैं और चुभन भी पैदा करते हैं।

(7)

'सोना लेने पी गए' (महेन्द्र दवेसर 'दीपक')

लंदन के वरिष्ठ कहानीकार महेन्द्र दवेसर 'दीपक' अपनी कहानी 'सोना लेने पी गए' में स्थापित करते हैं कि पश्चिमी देशों में बसे हुए भारतवंशी पति पत्नी के सम्बन्ध भी केवल अर्थ पर आधारित हैं। रीमा इस इलाक़े में नई-नई आई है। उसकी मित्रता कुछ महिलाओं से होती है। 'इन्हीं

इक्कीसवीं सदी की प्रवासी कहानी अपने लिये एक नई राह खोज चुकी है। अब नॉस्टेलजिया लेखकों को परेशान नहीं कर रहा। उनका अपनाया हुआ देश उनकी कहानियों के केन्द्र में हैं। उनका आम आदमी भारत का आम आदमी नहीं है। यह आदमी ब्रिटेन, अमरीका, कनाडा, या युरोप का है।

मुलाक़ातों, पार्टियों में शमीम के पति अमीन के 'कारोबारी' दौरों की कहानी खुल गई। पता चला कि जनाब ग़ैर-क़ानूनी ढंग से इंगलैंड में बसने के लिए कुछ लोगों को लाते हुए रंगे हाथों पकड़े गए और लंदन की एक जेल में चार साल के लिए आराम फ़र्मा रहे हैं। पति की अनुपस्थिति में और भी जो गुल खिलाए जा रहे हैं, उनकी चर्चा भी इन महफ़िलों में होती।'

ब्रिटिश सरकार की धज्जियाँ उड़ाने वाली शमीम एक दिन रीमा के सामने स्वीकार करती है कि, 'जब घर का अकेला कमाऊ आदमी जेल में तो सरकार उसके बीवी-बच्चों का पूरा ध्यान रखती है। दोनों लड़कियों का भत्ता तो मुझे पहले ही मिलता था, अब तो उनका दूध भी मुझे मुफ़्त मिलता है। सरकार की तरफ़ से बच्चों के नए कपड़ों के लिए भी पैसे मिलते हैं। क्योंकि मेरी अपनी कोई आमदनी नहीं है, मुझे अलग से अपना भत्ता मिलता है। मैं भी कोई कम नहीं। मैंने चार कमरे किराए पर चढ़ा रखे हैं। किराएदारों को अपने कमरों को ताला लगाने की मनाही है ताकि अगर कभी सरकारी चेकिंग हो भी जाये तो मैं पकड़ी न जाऊँ।'

एक दिन शमीम का पति अमीन उसे बताता है कि उसकी जेल की सज़ा छः महीने पहले ही समाप्त कर दी जाएगी और वह घर जल्दी वापिस आ सकेगा। शमीम को झटका लगता है। उसने अमीन की अनुपस्थिति में चार-चार किराएदार रख लिए हैं। उन भँवरों के बीच मटकती फिरती है। और उनसे मिले पैसों से उसने एक किलो भर सोने के ज़ेवर बनवा लिये हैं। उस के दिल पर बुरी गुज़रती है; जब वह हिसाब-किताब लगाने लगती है कि अमीन के जल्दी जेल से छूटने पर उसे कितने सोने का नुक़सान हुआ।

(8)

'मैं रमा नहीं हूँ' (अनिल प्रभा कुमार)

अमरीका की अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'मैं रमा नहीं हूँ' में दो ऐसी औरतों का चित्रण है जो कि भारतवंशी हैं और अमरीका में संघर्ष कर रही हैं-रमा और दीपा। मगर ज़िन्दगी के प्रति उन दोनों के रवैये एकदम विपरीत हैं। एक ओर रमा बहन हैं जो कि लेखिका के मन पर धरना देकर बैठी थीं। एक थी तस्वीर में मुस्कराती सुन्दरी और दूसरी थी वह औरत, जिससे मैं आज मिलकर आई हूँ। चित्र वाली औरत की छाया भर-प्रौढ़ छाया। गुजराती शैली की साड़ी की जगह पर ढीली सी पैंट, टी-शर्ट, कस कर बांधे बालों में सफ़ेद फूलों की जगह थी बालों की बेरहम सफ़ेदी। थका पस्त चेहरा, फिर भी मुस्कुरातीं तो उनके सफ़ेद सुन्दर दांतों की कौंध सोचने को विवश कर देती कि यह औरत मुस्कुरा कैसे लेती है?'

और दूसरी तरफ़ है दीपा-'मैं उसे खाते हुए देखती रही। उसका चेहरा सुन्दर और असुन्दर की सीमा-रेखा पर पड़ता था। कस कर पॉनीटेल की हुई थी। बड़ी-बड़ी आँखों के बावजूद उसमें कस्बाई परिपक्वता की झलक थी। उस दिन जब खुले बालों के साथ फ़ैशनेबल धूप का चश्मा और हल्की सी लिप-ग्लॉस लगाए थी, तो आकर्षक महिला लग रही थी। यह तो स्पष्ट था कि वह उमर में मुझसे छोटी थी, पर कितनी मैं जान नहीं पाई।'

रमा बहन अपने बीमार पति को जीवित देख कर ही ख़ुश है कि कम से कम सुहागन है। पति के अपाहिज होने के बाद, 'रमा बहन ने लोगों के लिए रोटियाँ बेलनी शुरु कर दीं। बच्चों की बेबी-सिटिंग, कपड़े सिलने, जो-जो वह कर सकती थीं। पति को कभी रैस्पीरेटर लगता, कभी हट जाता-वह सेवारत थीं। अचेत पड़े पति को देखती तो बस देखती रह जातीं।'

जबकि दीपा एक मॉडर्न लड़की है; महत्त्वाकांक्षी है ; जम कर झूठ बोलती है ; किसी से भी काम निकालने के लिए किसी भी हद तक जा सकती है। अनिल प्रभा कुमार की कहानी एक 'बोल्ड स्टेटमेण्ट' है क्योंकि रमा बहन के प्रति सद्भावनाएँ होते हुए भी वह दीपा को ग़लत नहीं ठहराती हैं। रमा बहन के रूप में भारत की पुरानी परम्परा वाली नारी अमरीका में ज़िन्दा है तो वहीं युवा पीढ़ी की दीपा भी अपने व्यक्तित्व की लड़ाई लड़ रही है। और दोनों ही अपनी-अपनी जगह ठीक हैं। और हाँ दीपा कहानी के अंत में घोषणा भी कर देती है, 'मैं आपको एक और बात बता देना चाहती हूँ ..' उसने होठों को भींचा, '...कि मैं रमा नहीं हूँ।' कह कर वह पलटी और लाईन में लग गई।

(9)

'अख़बारवाला' (सुदर्शन प्रियदर्शिनी)

अमरीका की उपन्यासकार सुदर्शन प्रियदर्शिनी के पास अपनी बात कहने के लिए एक कवितामयी भाषा भी है। उनकी कहानियों का अमरीका निष्ठुर भी है और अजनबी भी। अपनी कहानी 'अख़बारवाला' में वे लिखती हैं, 'वह हर दिन सोचती है कैसी है यहाँ की ज़िंदगी ? यहाँ के ताबूतगाह की तरह खड़े हुए साफ-सुथरे घर। जिनमें कोई चहल-पहल नहीं। एक सन्नाटे में लिपटी हुई ये इमारतें जैसे-धीरे धीरे सुबकती रहती हों बे-आवाज़। यहाँ चहल-पहल केवल बाग़ों, बाग़ानों, नदी-समुद्रों के किनारों पर देखी जा सकती है अन्यथा बंद कमरों में बंद ज़िंदगी; अन्दर से चमचमाते निर्जीव घर। न रसोई से उठती ख़ुशबू, न बच्चों की खिलखिलाहट, न पेड़ों पर आते बौर पर चहकती चिड़िया-जैसे सब कुछ एक कृत्रिम

आडम्बर में लिप्त हुआ सभ्यता का आडंबर। फ़्यूनरल वैन सामने खड़ी हो और पड़ोसी को उस की आहट तक न हो! चारों तरफ पूरी तरह सन्नाटा था। एक भी व्यक्ति नहीं था। आसपास आने-जाने वाले भी फ़्यूनरल वैन को देखकर रास्ता बदल रहे थे। कहीं किसी खिड़की से कोई चेहरा नहीं झाँका। किसी आँगन में बंधा कुत्ता तक नहीं भौंका।'

इस कहानी का स्थान हिन्दी कहानी की परम्परा में अनूठा होगा। सुदर्शन प्रियदर्शिनी मुस्कान के लिये एक नया बिम्ब गढ़ती हैं। ब्रिटेन में जिसे 'पोस्ट इट' कहते हैं और अमरीका में 'स्टिक नोट' उसका प्रयोग करते हुए वे लिखती हैं, ' हेलो-हाय स्टिक नोट की तरह एक तरफ से उधड़ी, दूसरी तरफ से चिपकी सी मुस्कान!'

अमरीका की सुबह की तुलना भारत की सुबह से कुछ इस प्रकार करती हैं, 'जया ने ज्योंही सुबह उठकर खिड़की पर छितरी ब्लाईंडर्स के कान मरोड़े, उजाला धकियाता हुआ अन्दर घुस आया। इस उजाले के साथ-साथ हर सुबह एक सन्नाटा भी कमरे के कोने में दुबका पड़ा-उठ खड़ा होता था। इतने वर्षों के बाद आज भी दूर अपनी खिड़की से झाँकता बरगद का पेड़, चिड़ियों की चहचाहट, रंभाती गाएँ, पड़ोसी के चूल्हे से उठता उपलों का गंधित धुआँ, मिटटी की कुल्ली में उबलती चाय का पानी-मन के किसी कोने में सुबह की दूब से उभर आते और सारी सुबह पर जैसे अबूर छिड़क देते। अन्यथा इस सड़क पर न कोई आहट, न ट्रेफ़िक की धमाधम, न चिल्लपौं, न स्कूल जाने वाली बच्चों की मीठी भोली चिटकोटियाँ ..उसकी हर सुबह एक अधूरेपन के ग्रहण से ग्रसित होती। ब्लाईंडर्स खोलने के बाद चाय का पानी चढ़ाती फिर किवाड़ खोलकर बाहर से अख़बार उठाती।'

जया यह सोच कर हैरान है कि अमरीका में पड़ोसी की मौत कितनी पराई सी गतिविधि है। जबकि भारत में अंजान व्यक्ति की अंतिम यात्रा में कोई भी शामिल होने चल देता है। सुदर्शन प्रियदर्शिनी शब्द चित्र बनाती चलती हैं। अमरीका का परायापन उस पर भी हावी होने लगता है, जब वह सोचती है, 'ओह! फिर सोच में डूब गई। गेट पर ठिठकी खड़ी थी। कपड़े बदलूँ या यही पहनूँ-क्योंकि अभी भी कहीं इच्छा थी वैन के अन्दर झाँक कर चेहरा देखने की। और सम्बन्धियों से गले मिलने की किन्तु ये तो-ड्राइक्लीन वाले कपड़े हैं-ड्राइक्लीन करवाने पड़ेंगें। दूसरे ही क्षण जया ने अपने आप को धिक्कारा। वह भी पहाड़े पढ़ने लगी। वह धड़ाधड़ गेट से निकल कर सीधे वैन के पास पहुँच गई।'

(10)

'चिड़िया' (अमरेन्द्र कुमार)

अपने देश का मुक़ाबला अमरीका से अमरेन्द्र कुमार भी करते हैं। अपनी संवेदनशील कहानी 'चिड़िया' में वे लिखते हैं, 'अमेरिका में हर ऋतु एक पहचान लिए आती है। हवा, आकाश, धूप और पत्तों का रंग बता देता है कि कौन सा मौसम है। दिल्ली में ऐसा कभी लगता नहीं था। एक मौसम दूसरे मौसम पर लदा हुआ-सा आता था जैसे कि उसके अपने हाथ पैर ही न हो। और, जब तक कि आप उसे पहचान पाए मौसम बदल जाता था। धुँध भरी सर्दी एक उदास चेहरे की तरह होती थी। उसमें पता भी न चल पाता था कि कब वसंत चुपके से आकर किधर निकल गया कि अप्रैल में धूप एकदम से तेज़ हो जाती थी जैसे कि कोई किसी को आतंकित कर देता है। लेकिन धुँध आप पहचान बना सकते हैं हर एक ऋतु से। हर मौसम इतने समय तक रहता है कि आप उसे तसल्ली से पहचान सके।'

यह कहानी एक इन्सान और एक चिड़िया की मित्रता की कहानी है। लेखक हैरानी से बताता है कि, '...लेकिन मैं चकित तब रह गया था जब मैंने अपने सप्ताह भर के जापान प्रवास में कभी भी आकाश में किसी भी चिड़िया को देखा नहीं था। किसी ने बाद में बताया कि वहाँ चिड़िया होती ही नहीं। मुझे विश्वास नहीं हुआ कि ऐसा हो भी सकता है।' मगर यहाँ अमरीका में एक चिड़िया उसके जीवन का एक अंग बन जाती है। उसके अकेलेपन और बीमारी की साथी। इस रिश्ते को अमरेन्द्र बहुत सूक्ष्मता से प्रस्तुत करते हैं। जब नायक घर पर नहीं मिलता तो चिड़िया की बेचैनी का चित्रण खासा प्रभावशाली है। और उसकी बीमारी में चिड़िया अपने पंखों से हवा करके तीमारदारी का फ़र्ज निभाती है। चिड़िया की मृत्यु का समाचार देने उसका साथी आता है। इस कहानी का विषय इस संग्रह की तमाम कहानियों से अलग है। चिड़ियों की लड़ाई में लहूलुहान हुई चिड़िया से दोस्ती का विकास क्रमिक और सहज हुआ है।

इक्कीसवीं सदी की प्रवासी कहानी अपने लिये एक नई राह खोज चुकी है। अब नॉस्टेलजिया लेखकों को परेशान नहीं कर रहा। उनका अपनाया हुआ देश उनकी कहानियों के केन्द्र में हैं। उनका आम आदमी भारत का आम आदमी नहीं है। यह आदमी ब्रिटेन, अमरीका, कनाडा, या युरोप का है। ब्रिटेन में दिव्या माथुर, शैल अग्रवाल, उषा वर्मा, कादम्बरी मेहरा, उषा राजे सक्सेना, अरुणा सभरवाल, तो अमरीका में सुषम बेदी, उमेश अग्निहोत्री, पुष्पा सक्सेना, इला प्रसाद और खाड़ी देशों में कृष्ण बिहारी एवं पूर्णिमा बेहतर लेखन कर रहे हैं। आज इन कहानीकारों को किसी प्रवासी विशेषांक की आवश्यकता नहीं है, वे भारत में लिखे जा रहे बेहतरीन लेखकों के साथ प्रकाशित होने में सक्षम हैं।

❐

सूचना

अभिनव इमरोज का दिसम्बर अंक लघुकथा विशेषांक होगा, जिसके अतिथि सम्पादक सुकेश साहनी और रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' होंगे। इस अंक के लिए 15 अक्टूबर तक लघुकथाएँ (पूरा नाम, पता, ई-मेल आई डी/फोन नम्बर भी लिखा हो) आमंत्रित हैं। लघुकथाएँ यूनिकोड, शुषा, वाकमैन चाणक्य या कृतिदेव फॉण्ट में टाइप करके वर्ड की फाइल में (पीडीएफ/जेपीजी में नहीं) इस पते पर प्रेषित कर सकते हैं:-

laghukatha89@gmail.com

डाक द्वारा लघुकथाएँ भेजने का पता है :

सुकेश साहनी

193/21, सिविल लाइन्स, बरेली-243001 (उ.प्र.)

स्वीकृत रचनाओं की सूचना 15 नवम्बर के बाद दी जा सकेगी।

BEST DEALS FLOORING

Residential & Commercial

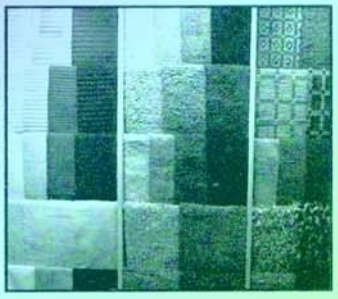

Free Delivery
Under Pad
Installation

Residential
Commercial
Industrial
Motels & Restaurants

Free Shop at
Home Service Call:
416-292-6248

WE ALSO SUPPLY

• Base Boards • Quater Rounds • Mouldings • Custom Stairs • All kinds of Trims • Carpet Binding Available

FREE - Installation - Under Padding - Delivery

Call: RAJ OR GARY 416-292-6248

130 Dynamic Drive, Unit #21, Scarborough, ON M1V 5C9

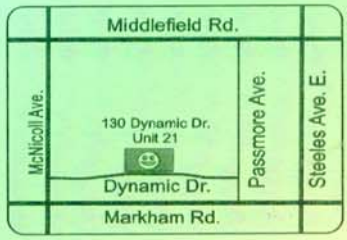

Custom Blinds • Ciramic Tiles • Hall Runner

Jaswinder Saran
Sales Representative

Direct: 416-953-6233
Office: 905-201-9977

HomeLife/Future Realty Inc.,
Brockerage
Independently Owned and Operated

205-7 Eastvale Dr., Markham, ON L3S 4N8
Highest Standard Agents...Highest Results!...

HOMELIFE HIGHER STANDARDS

REALTOR
MLS MULTIPLE LISTING SERVICE

यह आज के समय की सच्चाई है, चाहे सच्चाई परदे में छुपी हुई क्यूँ न हो!

अंकित जोशी

अंकित जोशी
ankitjoshi85@gmail.com
+91-959-474-9840

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'आग में गर्मी कम क्यों है?' कुहासे में ढँके और छुपे हुए एक अज्ञात की कहानी है। अज्ञात, जो हम सब का जाना और पहचाना हुआ है, लेकिन हम सब चाहते हैं कि वो अज्ञात ही बना रहे। समलैंगिकता जैसे संवदेनशील विषय का ये कहानी दूसरा पक्ष सामने लाती है। वो पक्ष जो अनदेखा है। कहानी संतुलित ढंग से विषय का पक्ष तथा प्रतिपक्ष दोनों सामने रखती है। विषय को दिये गये अलग ट्रीटमेंट के कारण ये कहानी विशिष्ट हो जाती है। प्यार और विश्वास के टूटने और टूट कर ख़त्म होने की इस कहानी के बैकग्राउंड में वफ़ादारी एक अहम मुद्दा बन कर उभरती है।

साक्षी का विश्वास शेखर तोड़ता है और शेखर का विश्वास जेम्स। लेकिन साक्षी और शेखर दोनों अलग-अलग परिणति तक पहुँचते हैं। एक तरफ जहाँ शेखर साक्षी को एक निम्न मध्य वर्गीय परिवार की भावनात्मक रूप से कमज़ोर औरत समझता था और सोचता था कि उसके हिस्से की सच्चाई जानने पर वो रोएगी, गिड़गिड़ायेगी, झगड़ा करेगी या कई प्रकार की दुहाई देगी वो साक्षी शेखर के सच से रूबरू होने के बाद अपने स्वाभिमान को इकट्ठा कर मज़बूती से खड़ी होकर सामना करती है, लेकिन दूसरी तरफ शेखर इन सब से बेपरवाह जेम्स के साथ अपने संबंधों को जारी रख कर अपने परिवार को दरकिनार कर देता है। बाद में वही शेखर, जेम्स के उसके साथ सम्बन्ध तोड़ लेने को सहन नहीं कर पाता और आख़िरकार अवसाद में घिरकर आत्महत्या कर लेता है। शेखर आत्महत्या करने की हिम्मत तो बटोर लेता है लेकिन साक्षी के पास वापस जाकर अपना दुःख कह पाने का साहस नहीं जुटा पाता।

भारतीय निम्न मध्यम वर्गीय परिवार से आई साक्षी अमेरिका के कल्चर में काफी वक़्त गुज़ारने के बाद भी अपने अन्दर छुपी स्त्री का चोगा नहीं उतार पाती। उसकी उड़ान उसकी हदों में है जबकि उसे उसकी परवाज़ के लिये खुला आसमान मिला है। उसकी इच्छाएँ एक आम घरेलू स्त्री जैसी ही हैं, वो चाहती है कि उसका पति शाम को ऑफिस से जल्दी घर आ जाए ताकि वो उसके साथ कुछ वक़्त बिता सके, बातें कर सके। उसके अन्दर बहती नदी उफ़ान तो ज़रूर मारती है और इस उफ़ान में वो साहिल से टकरा कर उसे सरोबार भी कर देना चाहती है लेकिन सहसा ही वो साहिल पे पसरी इक शांत मुस्कराहट को देख अपनी लहरों के वेग को अपने में ही समेट लेती है। साक्षी शेखर को संसर्ग के दौरान नीरस पाकर भी अपने में ही कमी ढूँढने की कोशिश करती है, और एक अनचाही दुविधा में घिरकर भी परिवार को सम्हाले रखती है। जब साक्षी को शेखर के बाईसेक्सुअल होने का पता चलता है तो वो अपने आप को ऐसी आग में घिरा पाती है जो होकर भी नहीं है और जिसे बुझाना उसके बस की बात नहीं है। बाहर से कच्ची दिखने वाली मिट्टी रिश्तों के दरमियान अचानक से उठी इस आग से अन्दर ही अन्दर कब पक जाती है वो ख़ुद भी नहीं जान पाती। वो शेखर से बहस ज़रूर करती है मगर तर्कसंगत अंदाज़ में। वो उसकी अभिरुचियों को समझती है और उसे मुक्त छोड़ देती है, शायद साक्षी ऐसा न कर पाती अगर शेखर के किसी महिला के साथ ऐसे सम्बन्ध होते। क्योंकि शेखर को जेम्स के हवाले करना अब उसकी मर्ज़ी पर कहाँ रह गया था।

एक आदमी के जीवन में चाहे आज भी सेक्स का स्थान रोटी, कपड़ा और मकान के बाद आता है लेकिन एक समय बाद वो इन तीन चीज़ों से भी ऊपर उठ जाता है। हम अपनी फ़ितरत के मुताबिक हर किसी को उनके आयामों में देखते हैं और हमारा उनको इस तरह देखना हमारी नज़र नहीं, नज़रिये पर निर्भर करता है। आज का समाज सिर्फ धर्म और जाति के हिसाब से ही नहीं बँटा हुआ है बल्कि सेक्स के हिसाब से भी बँटा है। अगर ये बँटवारा स्त्री और पुरुष में कर दें तो ये बँटवारा ही नहीं लगेगा, लेकिन इसे अगर हेट्रोसेक्सुअल और होमोसेक्सुअल के नज़रिये से देखें तो ये किसी खाई से कम नहीं। एक कोण से देखने पर ये सोच और मानसिकता का विकार लगता है जबकि दूसरे कोण से देखने पर ये शारीरिक संरचना और हॉर्मोन का उलझा हुआ ताना-बाना दिखता है।

इस कहानी की जड़ों में बाईसेक्सुअलिटी जैसा एक अहम मुद्दा साँस लेता है। आदमी अपनी खोजी प्रवृत्ति के कारण ही जीवित है। खोजना उसकी फितरत तो है ही उसका प्यारा शगल भी है। पैदा होने के साथ ही वो अपने आस-पास की चीज़ों को खोजना शुरू कर देता है, लेकिन अधिकतर उसकी खोज का दायरा बाहर तक ही सीमित रहता है और यक़ीन मानिये बाहर की ये दुनिया बहुत सीमित है। और वो कभी भी खुद को अपनी इस खोज के दायरे में नहीं लाता। आदमी वो सब कुछ खोजता चला जाता है जो उसके बाहर है और जब अनायास ही वो अपने अन्दर छुपे एक रहस्य को पा जाता है तो सहसा उसे विश्वास नहीं होता है। दरअसल हमने कभी शरीर, विचार और भावनाओं को अपनी खोज का हिस्सा नहीं बनाया, अगर बनाया भी तो हमेशा उन्हें प्राथमिकता की सूची से बहुत दूर रखा है।

'जेम्स उसे किसी और के लिये छोड़ गया, वह उसका अलगाव सह नहीं सका। वह जेम्स को बहुत प्यार करता था, अब उसके जीवन का कोई अर्थ व औचित्य नहीं रहा। ऐसे जीवन को समाप्त करना उसने बेहतर समझा।' शेखर की आत्महत्या

का ख़त उसकी ज़िन्दगी के खालीपन को सामने लाता है। लेकिन वो उसके दोहरे मापदंडों को भी दिखाता है। शेखर जेम्स से मिले उस दर्द को सहन ही नहीं कर सका जो उसने कभी साक्षी को दिया था। शेखर ने जब साक्षी को धोखा दिया था तो साक्षी के पास कोई विकल्प नहीं था सिवाय उस सच को स्वीकार करने के। लेकिन जेम्स के शेखर को छोड़ने के बाद भी शेखर के पास साक्षी के पास वापस लौटने का विकल्प है। शेखर साक्षी को हमेशा कमज़ोर समझता आया था जबकि वो ख़ुद अन्दर से कमज़ोर और डरा हुआ था। वो अपने हिस्से का सच साक्षी को बताने के लिये समय के इंतज़ार में रहा।

ये कहानी आधुनिक समाज में कही गई है और जिस चीज़ को इसकी भूमिका में रखा गया है वो आज के समय की सच्चाई है, चाहे सच्चाई परदे में छुपी हुई क्यूँ न हो! इस कहानी में लेखक ने कई और मुद्दों को भी रेखांकित किया है जिसमें निम्न मध्य वर्गीय भारतीय परिवार की मजबूरियाँ, विदेश में अपनों से दूर रह रही महिला की असहाय अवस्था आदि हैं। 'आग में गर्मी कम क्यों है?' में साक्षी का किरदार केंद्र में है। साक्षी का शेखर की आत्महत्या पर न रोना, अंत्येष्टि में आये लोग उसका गहरे सदमे में होना समझते हैं लेकिन सदमा तो वो पहले ही झेल चुकी है। शेखर और उसके बीच तो सब कुछ पहले ही ख़त्म हो चुका था। अब वो रोए तो क्यों रोए? उस मृत शरीर के लिए रोए जो न जाने कब से उसके लिए मृत है। यूँ तो साक्षी के लिए, शेखर और जेम्स के बीच के सम्बन्ध जानने से पहले ही शेखर का शरीर मृत हो चुका था, हाँ ये अलग बात है उसे उसका पता बाद में चला। अब शेखर के लिये आँखों से समन्दर उड़ेलने का औचित्य नहीं बनता है, वो अपने बच्चों के भविष्य के लिए ज़रूर रोती अगर वो आज अपने क़दमों खड़ी न होती। लेकिन आज वो आर्थिक रूप से अपने बच्चों को पाल-पोस सकती है। लेकिन वो फिर भी एक डर को उसके चारों ओर पसरा पाती है, उसका ये डर मानसिक न होकर सामाजिक ज़्यादा है। वो लोगों की उसकी तरफ उठने वाली उँगलियों और आने वाले उन सवालों से परेशान है जो शेखर की आत्महत्या और जेम्स के साथ उसके संबंधों पर होने वाले हैं। साथ में, वो इन सब बातों के भारत में रह रहे उसके परिवार तक पहुँचने और उसके बाद पड़ने वाले प्रभाव भी उसकी परेशानी का सबब हैं। हालाँकि वो शेखर की शारीरिक ज़रूरतों को समझकर अपने अन्दर की स्त्री से समझौता करती है। वो अपने बच्चों के लिये परेशान नज़र आती है लेकिन वो खुद को इस बात से दिलासा भी देते हुए दिखती है कि जल्द ही ये गूढ़ विषय बच्चों के पाठक्रम का हिस्सा होंगे, जिससे वो आगे चल कर पिता को समझ सकेंगे। इस सब के बावजूद साक्षी सुदूर भारत में अपने समाज, रिश्तेदारों और परिवार की सोच के दायरे को भी जानती है। और ये भी जानती है कि वो लोग शायद इस बात को अभी समझ नहीं पायेंगे।

आग में गर्मी कम क्यों है, अपने अनोखे शीर्षक से पूरा न्याय करती है और एक जानी पहचानी दुनिया के नए सच को सामने लाती है। जो साक्षी की कहानी है वो शायद कई साक्षियों की कथा है।

❐

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
चयनित कहानी

सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशित कृतियाँ:

कहानी संग्रह: कमरा नंबर 103, कौन सी ज़मीन अपनी, वसूली।

कविता संग्रह : धूप से रूठी चाँदनी, तलाश पहचान की, सफ़र यादों का।

संपादन: मेरा दावा है (काव्य संग्रह-अमेरिका के कवियों का संपादन), वैश्विक रचनाकार कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ (साक्षात्कारों पर आधारित)

अनुवाद :परिक्रमा (पंजाबी से अनूदित उपन्यास)

काव्य सी.डी.: माँ ने कहा था।

अन्य संग्रह : 25 प्रवासी संग्रहों में कविताएँ, कहानियाँ प्रकाशित।

पंजाबी में संग्रह: संदली बूआ (संस्मरण), टारनेडो (कहानी संग्रह), कई कृतियाँ पंजाबी और अंग्रेज़ी में अनूदित।

101 Guymon Court, Morrisville, NC-27560 USA
Email : sudhadrishti@gmail.com
Phone-919-678-9056(H), 919-801-0672(Mobile)

कुछ विषय ऐसे होते हैं जिन पर कहानी लिखना बहुत कठिन होता है। ऐसा ही एक विषय है समलैंगिकता। इस विषय पर बहुत कम कहानियाँ लिखी गईं हैं। या यूँ कहें कि लेखक इस पर लिखने से बचते रहे हैं। सुधा ओम ढींगरा की ये कहानी समलैंगिकता का एक और पक्ष सामने लाती है। ये दूसरे पक्ष की बात करने वाली कहानी है। कहानी पूरी संवेदनशीलता के साथ समस्या का वैज्ञानिक पक्ष उठाती है।

आग में गर्मी कम क्यों है ?

सुधा ओम ढींगरा

आत्मकथ्य

प्रज्ञाचक्षु मौसी की छत्रछाया में मेरा बचपन बीता है । उन्हें कहानियाँ सुनाने का बहुत शौक था और कहानियाँ भी वे बहुत रोचक तरीके से सुनाती थीं। घर का अलिखित नियम था कि बाहर की हर बात, हर घटना उन्हें सुनाई जाए। हम बच्चे जब उन्हें किसी घटना के बारे में बताते तो वे पूछतीं, हमें भीतर से कैसा महसूस हो रहा है, वह स्पष्ट करो। बड़े होने तक मैं उन्हें हर बात कहानी के रूप में विस्तार से अभिनय के साथ वर्णन करने लगी; जिससे मेरी भावनाएँ भी अभिव्यक्त होतीं और उन्हें भी सुन कर आनंद आता। कहानियाँ सुनते, सुनाते मैं स्वयं कहानियाँ लिखने लगी तो भीतर जो महसूस होता है, वह कहानियों में कितना उड़ेल पाती हूँ, कह नहीं सकती, लगता है हमेशा ही कुछ रह जाता है।

एक सुहानी सुबह यहाँ के भारतीय समुदाय के लिए निराशा और उदासी से लिपटी सुबह बन गई; जब मेरे शहर के टीवी समाचारों और समाचार पत्रों में दिल दहला देने वाला समाचार आया। एक भारतीय (जिसका नाम गुप्त रखा गया) ने मालगाड़ी के आगे आकर जान दे दी। बाद में पता चला कि मृतक की पत्नी के निवेदन पर बच्चों की भलाई और सुरक्षा के लिए ऐसा किया गया था। इस दुर्घटना के एक माह के भीतर ही मृतक की पत्नी अपना घर और कारें बेचकर अपने किसी रिश्तेदार के शहर में रहने चली गई। वह क्या था; जिसका पत्नी को डर था और जिसके लिए उसने शहर छोड़ दिया। दुर्घटना के इस समाचार और उसके बाद की स्थितियों ने मुझे सोचने पर विवश कर दिया। शोध शुरू हो गया। भारतीय समुदाय के एक-दो लोग ही उस परिवार को जानते थे। मृतक अंतर्मुखी था, वह किसी से मिलता जुलता नहीं था और उसकी पत्नी भी लोगों से कम मिलती थी, अपने तीन बच्चों को पालने में लगी रहती थी। बस इतना जान पाई थी कि उनके संबंधों में गड़बड़ थी।

उन्हीं दिनों मेरे पति डॉ. ओम ढींगरा ने मेल हर्मोन टेस्टास्टिरोन पर नई दवाई खोजी थी। और पुरुषों पर उस दवाई का क्या असर होता है, उसके क्लिनिकल ट्रायल चल रहे थे। उससे निकले परिणामों पर विचार-विमर्श होता और ओम जी अन्य वैज्ञानिकों के साथ हर्मोंज़ के स्वभाव, अनुपात की मात्रा और मानव जीवन पर उसके असर को लेकर तरह-तरह का परिसंवाद करते। मैं उन चर्चाओं को बड़े ध्यान से सुनती। इस विषय पर उन्हीं से लेकर मैंने बहुत से लेख और शोध पत्र पढ़े। हर्मोंज़ की मात्रा बिगड़ने से पुरुष और स्त्री के स्वभाव के परिवर्तन की गहरी जानकारी मिली। जो जानकारी मुझे हासिल हुई, न जाने कैसे उसमें दुर्घटना का समाचार मिल गया और एक कहानी आकार लेने लगी। समलैंगिक पति की पत्नी का दुःख, दर्द, पीड़ा कातने-अटेरने और बुनने लगी। इस कहानी को लिखने के बाद तक कई दिन कहानी की नायिका मेरे साथ रही। यह कहानी मेरे मन-मस्तिष्क के बहुत क़रीब है।

❐

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
चयनित कहानी

आग में गर्मी कम क्यों है ?

अंत्येष्टि गृह के कोने में फ़र्श पर वह दीवार के सहारे बैठी अपनी हथेलियों को देख रही है...

हर सुबह यही तो होता है। ... बचपन में माँ ने कहा था कि सुबह उठते ही दोनों हाथों को जोड़ कर अपनी हथेलियाँ देखा कर, भाग्य उदय होता है। तब से वह रोज़ ऐसा करती है और हाथों की लकीरों को देखने की उसे आदत सी हो गई है। उन पर विश्वास करने लगी है। घटती-बढ़ती लकीरों के साथ जीवन के उतार-चढ़ाव को वह पहचानने लगी है। हथेलियों पर अचानक कई नई उभरी लकीरों को उसने देखा था और उसके जीवन में अकस्मात कई नए मोड़ भी आए थे।

आज वह ग़ौर से उस लकीर को ढूँढ रही है जिसने उसके भाग्य को अस्त कर दिया। हथेलियाँ उसे धुँधली-धुँधली दिखाई दे रही हैं..लकीरें साफ़ नज़र नहीं आ रहीं। दाईं तरफ उसका सात वर्षीय बेटा सोनू उससे चिपक कर बैठा है और आते-जाते लोगों को देख रहा है। बाईं ओर पाँच वर्षीय बेटा जय उसकी गोद में पड़ी चार माह की बेटी के मुँह में चूसनी डालने की कोशिश कर रहा है। हालाँकि वह चुप है, रो नहीं रही, वह तब भी उसके मुँह में चूसनी डाल रहा है.... कहीं वह रो ना पड़े।

वातावरण की गंभीरता को वह समझ रहा है। नहीं चाहता कि बहन रोए और सब का ध्यान भंग हो। भारतीय समुदाय के लोग एक कोने में इकट्ठे होने शुरू हो गए हैं। उसकी सहेली मीनल मोबाईल पर पंडित जी से बात कर रही है। फ़ोन को कान से लगाए ही वह हैण्ड बैग और फूलों की टोकरी को दूसरे कमरे में रखने चली जाती है। मीनल का पति सम्पत पॉल बड़ी देर से अंत्येष्टि गृह की एक महिला के साथ बातें कर रहा है। सोनू और जय, सम्पत अंकल को बड़े गौर से देख रहे हैं। उस महिला के साथ बात करते हुए सम्पत अंकल उनकी और फ़र्श पर रखे बैग की ओर इशारा कर कुछ कह रहे हैं।

वह एकटक सामने रखे प्लास्टिक के बैग को देख रही है..बैग में उसके पति की लाश पड़ी है। अभी-अभी हस्पताल से लाई गई है। भावहीन चेहरे से वह उसे देखती जा रही है। आँखें सूनी हैं..नमीं उसके भीतर गहरे में फैलती जा रही है....पर आँखों से बाहर का रास्ता ढूँढ नहीं पाई है। प्रश्नों ने तनाव के साथ मिल कर नया मोर्चा खोल उसके मस्तिष्क को बेकाबू कर दिया है। वह इस दुर्घटना को रोक सकती थी....पर कैसे ? उसका पति उसे कभी कुछ नहीं बताता था। बच्चों के अतिरिक्त और क्या साझा रह गया था उनमें ? वह कितनी दूर चला गया था..अँधेरे की परछाईं बन गया था। उसके हर प्रश्न को वह मुस्करा कर टाल जाता था।

प्लास्टिक बैग में पड़ा हुआ भी वह ज़रूर मुस्करा रहा होगा। शरीर रेल गाड़ी से कट गया..आत्महत्या की है उसने। वह तो सोया हुआ भी मुस्कराता रहता था और वह सोचती थी कि सोए हुए इंसान के चेहरे पर इतनी शांत मुस्कुराहट कैसे हो सकती है ?

उसके पति की यही मुस्कराहट उसके साँवले रंग और उसकी आँखों में एक खूबसूरत चमक भर कर उसके व्यक्तित्व में चुम्बकीय आकर्षण पैदा कर देती थी।

उसकी नज़रों में कशिश थी। वह अनचाहे ही उसकी जकड़ में आ गई थी। कई चेहरे मोहिनी बूटी से होते हैं बस मोह लेते हैं। उसकी नटखट मुस्कान उसके भीतर-बाहर रोमांच का बसन्त खिला गई थी। उसे दुनिया बहुत खूबसूरत और रंग-बिरंगी लगने लगी थी। परी उसकी प्रिय सखी थी। उसी की शादी में वह उससे मिली थी। वह परी की बुआ का बेटा शेखर था।

निम्न मध्य वर्गीय परिवार के माता-पिता उसकी शादी के लिए काफी चिंतित थे। उन्हें जब पता चला कि परी का परिवार उसका रिश्ता शेखर के लिए चाह रहा है, साथ ही शादी का सारा खर्चा भी वे स्वयं उठाने के लिए तैयार हैं। पेशकश राहत भत्ता सी लगी और सोचने में उन्होंने ज़्यादा देर नहीं लगाई। शेखर अमेरिका की सिस्को सिस्टम कम्पनी में सॉफ्ट वेयर इंजनीयर था। परी की शादी में वह और शेखर अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान कर चुके थे। वह इसे संयोग और हाथों की लकीरों का खेल मानती रही। परी की शादी के एकदम बाद उसकी शादी हो गई। दो सप्ताह के भीतर वह नए देश और अजनबी लोगों में नव जीवन के स्वप्न व कुछ डर ले कर अमेरिका आ गई।

आज उसके सारे सपने ढह चुके हैं। परदेस में अपनों से दूर, उदास, परेशान, चर्च में अकेली बैठी पति की अंतिम बिदाई की प्रतीक्षा कर रही है। वहाँ के शांत वातावरण में कई क़दमों की आहट सुनाई दी।

भारतीय समुदाय की कुछ महिलाएँ चर्च के उसी कमरे में आ गईं, जहाँ वह शेखर पर आँखें टिकाए स्थिर बैठी है। ऐसा लग रहा है जैसे वह उस के चेहरे में कुछ ढूँढ रही है। एक बज़ुर्ग औरत ने उसके सिर पर सहानुभूति से हाथ फेरा। वह उसी तरह बिना हिले-डुले बैठी रही। महिलाएँ कुछ बोलीं नहीं, उसकी तरफ देखती हुईं बस चुपचाप साथ की दीवार से सटी हुई कुर्सियों पर बैठ गईं पारुल, साक्षी की कुलीग ने, उसकी गोद से बच्ची को ले कर अपनी बाँहों में उठा लिया। मीनल सोनू और जय को दूसरे कमरे में ले गई। उसने पालथी हटाकर अपने घुटनों को समेट लिया। दोनों बाज़ुओं से कस कर उन्हें पकड़ लिया और अपना चेहरा उस पर टिका दिया।

दीवार के साथ लगी कुर्सियों पर बैठी महिलाओं ने धीमी आवाज़ में बातचीत शुरू की

'साक्षी रो नहीं रही, इसे रुलाओ....नहीं तो शरीर रोने लगेगा। डर लगता है इसे कहीं कुछ हो ना जाए।'

'शेखर इसे जिस हालात में छोड़ गया है, रोना तो इसने अब सारी उम्र है।'

'बेचारी किस्मत की मारी, अभी नौ साल ही तो शादी को हुए हैं। तीन छोटे-छोटे बच्चे...भरी जवानी..हाय... इसे इस तरह देख कर दिल रो रहा है।'

कई महिलाओं ने रुमाल से नाक सुड़के और आँखों से निकल आए खरे पानी को सोखा।

'शेखर ने जो किया ऐसा तो अवसाद ग्रस्त लोग करते हैं, भारी निराशा में ...।'

'बाहर से कितना सभ्य-सुसंस्कृत लगता था..हँसता मुस्कराता...।'

'अरे पति-पत्नी ही एक दूसरे के बारे में बता सकते हैं कि वे कैसे हैं...? यूँ तो सब शालीन लगते हैं।'

'सुना है, एक चिट्ठी कार से मिली है और कार रेलवे फाटक के पास ही पार्क की हुई थी।'

उसे तो स्वयं भी जय के पैदा होने तक पता नहीं चला कि शेखर क्या करता है, क्या सोचता है...। जो घाव वह उसे दे गया है, उससे उठ रही टीस तेज़ दर्द बन कर अथाह पीड़ा दे रही है। इस समय वह क्या महसूस कर रही है...उसके एहसासों को कोई नहीं समझ सकता।

'दैनिक न्यूज़ एण्ड ओब्ज़र्बर में लिखा था कि गाड़ी को आते देख कर वह पटरी पर खड़ा हो गया था, ड्राइवर ने जब देखा तो गाड़ी की स्पीड कम करने में उसे समय लगा और तब तक वह टकरा गया।

मालगाड़ी थी। उसकी गति धीमी होती है। तेज़ रफ़्तार वाली यात्री गाड़ी होती तो शरीर के चीथड़े उड़ जाते।'

'भई वहाँ से तो एक ही लम्बी सी मालगाड़ी निकलती है।'

'हाँ... उसी से तो टकराया।'

'पता नहीं कितने दिनों से योजना बना रहा था। गाड़ी के समय को निश्चित कर रहा था।'

'जान लेते समय बच्चों का भी नहीं सोचा...साक्षी तो हर रोज़ परीक्षा देती थी।'

'क्या कह रहीं हैं आप मिसिज़ पाण्डेय ?'

'अरे आप लोगों को नहीं पता, अब तो तक़रीबन सब को मालूम है।'

'सब ने अपनी-अपनी कुर्सियाँ दीवार से हटा कर गोल घेरे में कर लीं ताकि बात को करीब से सुन सकें।'

'क्यों ?सब की आँखें प्रश्न वाचक थीं।'

'शेखर के किसी जेम्ज़ के साथ सम्बन्ध थे।'

'क्या ..?' सब के मुँह से यह शब्द निकला पर बड़ी दबी ज़ुबान में।

'ठीक है अगर पुरुष का साथ पसंद था तो साक्षी से शादी क्यों की...?'

'अब किस से और कौन पूछे ?'

'और साक्षी को पता कैसे नहीं चला ..?'

'तीन बच्चे साक्षी ने ऐसे आदमी के साथ कैसे पैदा कर लिए ..?'

'यह समय इन बातों का नहीं। साक्षी को हमारे साथ की ज़रूरत है। तीन बच्चों के साथ वह अकेली हो गई है इस देश में।' पारुल ने एक तरह से सब को चुप कराते हुए कहा।

'सही कहा तुमने ...। औरत पर क्या गुज़रती है, सिर्फ वही जानती है और कोई नहीं।' मिसिज़ भास्कर ने लम्बी साँस लेते हुए कहा।

'पारुल तुम साक्षी की सहेली हो..सच्चाई से बेख़बर नहीं ...आत्महत्या का कोई तो कारण होगा।' मिसिज़ ताम्बे पारुल की ओर देखते हुए बोलीं।

'आंटी, सिवाए साक्षी के सच्चाई कोई नहीं जानता। जेम्ज़ की बात भी पता नहीं कैसे लोगों तक पहुँच गई ..।'

'मुझे तो इतना पता है कि साक्षी ने पुलिस को पोलाईट रिक्वेस्ट की थी कि पत्र में लिखा हुआ अगर सार्वजनिक ना किया जाए तो वह आभारी होगी। पुलिस ने उसे मान लिया और निजता तथा पारिवारिक सुरक्षा के अंतर्गत उसे फाईल में रख कर सील कर दिया।'

'अमरीका में क्या-क्या देखने-सुनने को मिलता है ..रोंगटे खड़े हो जाते हैं ..' मीनल की सास बोलीं।

'आंटी, होता भारत में भी सब कुछ है, बस ढक लिया जाता है। औरत ही कई बार अपने लिए खड़ी नहीं होती।' पारुल रूखी सी बोली।

'ख़ैर अब तो वहाँ भी बहुत कुछ सामने आने लगा है।' मिनल ने सास को कहा।

'ओह ! गॉड। साक्षी के चेहरे की ओर देखा नहीं जा रहा।'

'पुअर साक्षी।'

'बड़ी संस्कारी है, किसी को पता नहीं चलने दिया कि उस पर क्या बीत रही है...।' कई लोग बड़े विचित्र तरीके से संवेदनाएँ व्यक्त करते हैं, यहाँ भी वही हो रहा है।

फ्यूनरल होम के एकान्त, शान्त माहौल में धीमी आवाज़ में की गई बातें भी साक्षी तक पहुँच रही हैं। उसे तो स्वयं भी जय के पैदा होने तक पता नहीं चला कि शेखर क्या करता है, क्या सोचता है...। जो घाव वह उसे दे गया है, उससे उठ रही टीस तेज़ दर्द बन कर अथाह पीड़ा दे रही है। इस समय वह क्या महसूस कर रही है...उसके एहसासों को कोई नहीं समझ सकता। बच्चों को क्या बताएगी...कि उनके डैड ने ऐसा क्यों किया ...? जो लोग आज हमदर्दी दिखा रहे हैं कल वही बातें बनाएँगे। उसके माँ-बाप पर क्या बीतेगी...बहनों की अभी शादी होनी है।

पंडित डॉ. गंगाधर शर्मा व उनकी पत्नी सरोज शर्मा अंत्येष्टि के लिए आ गये। कार से उनका सामान उठा कर भीतर लाया गया। सम्पत पॉल पानी की बाल्टी, कुछ तौलिये और शेखर के लिए नए कपड़े ले कर आया। पंडित जी की पत्नी सरोज शर्मा ने साक्षी के सिर और पीठ को बड़े स्नेह से सहलाया। घुटनों पर टिका उसका सिर उठाया। उसका माथा चूमा 'तुम क्यों मुँह छिपाती हो, तुम्हारा क्या कसूर है ?'..और उसका चेहरा देखते ही ज़रा ऊँची आवाज़ में बोलीं-'अरे कोई इसे पानी दो, इसका गला सूख रहा है। यह तो बावली हो रही है, चेहरे और आँखों में कोई भाव नहीं, नज़र कैसे ठहर गई है।' कुछ घंटों में ही साक्षी का शरीर जड़हीन सूखे तने सा ढहने को तैयार लगने लगा।

मीनल दौड़ कर पानी का गिलास लाई, साक्षी ने एक घूँट ही पानी का पिया। बच्ची ज़ोर से रो पड़ी। पारुल जिसकी गोद में बच्ची थी उसने उसे साक्षी की गोद में डालते हुए कहा 'इसे भूख लगी है, दूध पिला दे।' सरोज शर्मा (जिन्हें सभी आंटी जी कह कर बुलाते हैं) ने साक्षी को घूम कर बैठने को कहा जिससे उसकी पीठ लोगों की ओर हो गई और मुँह फ्यूनरल होम की दीवार की तरफ। उन्होंने उसकी कमीज़ ऊपर उठाने की कोशिश की। साक्षी ने यंत्रवत अपनी कमीज़ ऊपर उठा ली और वक्ष बच्ची की ओर दूध पीने के लिए बढ़ा दिया।

सम्पत पॉल के साथ राम सेठ, परिमल दास, नरेन शाह ने प्लास्टिक का बैग खोला और शेखर का बदन गीले तौलिये से पौंछने लगे। उसका कटा बदन जगह-जगह से टांके लगा कर सिल दिया गया था। सारी औरतें पहले ही वहाँ से उठ कर दूसरे कमरे में जा चुकी थीं। अब उसे नए कपड़े पहनाए जाने थे। फ्यूनरल होम वाले ताबूत ले आए। शेखर को साफ-सुथरा करके, नए कपड़े पहना कर उसे फ्यूनरल होम वालों को सौंप दिया जायेगा ताकि वे उसे अंतिम यात्रा के लिए तैयार कर दें। अमेरिका के लोग तो लाश का पूरा मेकअप तक

करवाते हैं ताकि अंतिम यात्रा में वे सुन्दर दिखें। उस ताबूत को अंत्येष्टि गृह के बड़े हॉल में रख दिया जाएगा श्रद्धांजलि पुष्प अर्पित करने के लिए।

साक्षी बच्ची को दूध पिलाती हुई सामने वाली सफ़ेद, ख़ाली दीवार की ओर देख रही है, जिस पर कोई चित्र नहीं टँगा हुआ। उसका जीवन भी इसी की तरह सूना हो गया है...शायद उसके जीवन में तो पहले से ही कुछ नहीं था, वह उसे स्वीकार नहीं कर रही थी, अब अस्वीकार का विकल्प नहीं रहा....।

'जेम्ज़'...किसी ने आवाज़ दी। साक्षी का दिल दहल गया। वह यहाँ भी आ गया। उसका दिल धौंकनी की तरह धड़कने लगा। उसने चेहरे और पीठ को घुमा कर पीछे देखा। वहीं का कोई कर्मचारी था। शेखर का जेम्ज़ नहीं था। इस प्रक्रिया में बच्ची के मुँह से उसका वक्ष छूट गया वह रोने लगी। अपने-आप को सम्भाल कर उसने उसे दूसरी तरफ किया और दूसरी छाती से दूध पिलाने लगी। दूध पीती बच्ची को देखते हुए उसके भीतर कसक उठी, इसके होश सँभालने पर वह इसे इसके बाप के बारे में क्या कहेगी ..? वह जेम्ज़ और शेखर की बनाई हुई अस्थिर और चुरमुरी छत के नीचे बच्चों को कैसे पालेगी ?

वह उस छत को बहुत मज़बूत समझती थी, जिसके साये तले शादी के कई वर्ष पलों में बीत गए थे। शेखर का प्यार, पार्टियाँ, बेहिसाब सुख। निम्न मध्यवर्गीय परिवार की साक्षी के लिए यह सब अद्भुत था। सोनू और जय के जन्म के समय उसके माँ-बाप और सास-ससुर दोनों आ गए थे। शेखर ने उन पर प्यार और उपहारों की बारिश कर दी थी। उसकी मुस्कराहट ने सब को सम्मोहित कर लिया था। साक्षी के माँ-बाप बेटी को खुश और सुखी देख कर भारत लौट गए पर उसके सास-ससुर एक साल उनके पास रहे। शेखर अक्सर देर से घर आता था।

शादी के उपरांत कुछ वर्षों तक साक्षी उसके देर से घर आने के प्रति लापरवाह रही। अब शेखर का देर से आना उसे खलने लगा। आस-पास के मर्द दिन भर बाहर रह कर शाम को घर लौट आते और अपने परिवार के साथ समय बिताते। साक्षी पड़ोस के परिवारों को सड़क पर सैर करते देखती। उसके दिल में हूक सी उठती। उसे शेखर के साथ ऐसा सुख कभी नहीं मिला था। सहनशीलता किसी दिन उसका साथ छोड़ जाती और वह उसके घर आते ही भड़क उठती।

वह हमेशा मुस्करा कर कह देता..'प्रोजेक्ट पर काम चल रहा है, सब लोग बैठे थे, मैं कैसे उठ कर आता। ऐसे में देर तो हो ही जाती है।'

सास-ससुर भी साक्षी को समझाने लगते 'बहु सुबह का गया वह शाम को थका-हारा घर आया है। किसके लिए इतनी जान मार रहा है..तुम्हारे और बच्चों के लिए। तुम प्यार देने की बजाए गुस्सा होती हो।' साक्षी शांत हो जाती। वह उनकी बहुत इज़्ज़त करती है। उन्हीं की प्रेरणा से, उसने अमेरिका में पढ़ाने का डिप्लोमा ले लिया था। वे बच्चे सम्भाल लेते और वह कॉलेज चली जाती। डिप्लोमा के बिना अमेरिका में पढ़ाया नहीं जा सकता। भारत से

शेखर ने अपने कर्त्तव्य में कभी कमी नहीं की, उसे भरपूर आर्थिक सुरक्षा दी। क्रेडिट कार्ड था उसके पास, वह जितना चाहे ख़र्च करती, वह चुपचाप बिल दे देता। घर के काम-काज और बच्चों की देखभाल के लिए वह समय नहीं दे पाता था, पर उसे कभी पूछता भी नहीं था कि दिन भर उसने क्या किया.. कहाँ गई ? उसे यह सब सामान्य नहीं लगता था, कोई पति अपनी पत्नी और बच्चों के प्रति इतना निर्लिप्त कैसे हो सकता है ?

उसने फ़िज़िक्स में एम.एस.सी की हुई है।

जय एक साल का था जब शेखर के माता-पिता वापिस चले गए। उनके जाने के बाद साक्षी बहुत अकेलापन महसूस करने लगी। शेखर काम के सिलसिले में शहर से बाहर अधिक जाने लगा था। शहर में होता तो भी देर से घर आता। घर-बाहर के सब काम करते, बच्चों को पालते-पोसते वह थक जाती। शेखर का उसे कोई सहारा नहीं था। जब भी वह उससे नाराज़ होती तो वह मुस्कराता हुआ बाँहें फैला देता, उसकी मुस्कराहट देख, उसकी बलिष्ट बाँहों के घेरे में, उसके चौड़े सीने के साथ लग कर वह सब कुछ भूल जाती थी। वह उसे दुलारता 'जानू, तुम्हारे लिए ही तो सब कुछ कर रहा हूँ, तुम्हारे और बच्चों के अतिरिक्त मेरा कौन है यहाँ ...तुम्हें अकेले छोड़ कर काम करने का मेरा भी तो दिल नहीं करता, पर क्या करूँ, नौकरी है। अच्छा मैं तुम्हारे लिए एक मेड का इंतज़ाम कर देता हूँ। काम में मदद हो जायेगी।' और ... वह पिघल जाती।

दूसरे दिन वह फिर अकेली माँ (सिंगल मदर) की तरह सब काम करती। उसे अपने सम्बन्धों में कुछ घटता महसूस होने लगा था..क्या कम हो रहा था वह समझ नहीं पा रही थी। रिश्तों के ढोस धरातल में छेद हो गया था ...जैसे कुछ रिस रहा था वहाँ से, वह उसे ढूँढ नहीं पा रही थी। शेखर के प्यार में वह कर्त्तव्य अधिक और मादकता कम पाती थी।

जिस शेखर से उसने नाता जोड़ा था, वह बदलता जा रहा था। समुद्र का उफ़ान किनारे की बालू को साथ बहा ले जाता है, यहाँ उफ़ान तो आता पर बालू साथ न बह पाती। वह इस बदलाव के बारे में बहुत सोचती। स्वयं को ही दोषी मानती, दोनों बच्चों और सास-ससुर के साथ वह इतनी व्यस्त हो गई थी कि शेखर की ओर ध्यान नहीं दे सकी। तभी वह उखड़ा-उखड़ा रहता है।

कभी-कभी उसके भीतर अपनी सोच को लेकर द्वंद्व चलता। वह सोच को तराज़ू बना लेती, स्वयं और शेखर को अलग-अलग पलड़ों में डाल कर सम्बन्धों के पलों को तोलती। शेखर ने अपने कर्त्तव्य में कभी कमी नहीं की, उसे भरपूर आर्थिक सुरक्षा दी। क्रेडिट कार्ड था उसके पास, वह जितना चाहे ख़र्च करती, वह चुपचाप बिल दे देता। घर के काम-काज और बच्चों की देखभाल के लिए वह

समय नहीं दे पाता था, पर उसे कभी पूछता भी नहीं था कि दिन भर उसने क्या किया.. कहाँ गई ? उसे यह सब समान्य नहीं लगता था, कोई पति अपनी पत्नी और बच्चों के प्रति इतना निर्लिप्त कैसे हो सकता है ? परिवार के लिए उसकी नीरसता उसे चुभने लगी थी।

रात दस बजे के करीब वह घर आता। बच्चे आठ बजे सो जाते थे। वे उन्हें सोये हुए ही देख पाता। रात तक वह भी उसका इंतज़ार कर रही होती। दिन भर की बहुत सी बातें वह उसके साथ साझा करना चाहती। उसे बच्चों की अठखेलियाँ, शरारतें, उनके मुँह से निकले छोटे-छोटे वाक्य बताना चाहती। पर वह थकी, ऊंघती आँखों को ज़बरदस्ती खोलता हुआ, अनमने मन से मुँह में कौर डालता। साक्षी महसूस करती कि उसे उसकी बातों में कोई रूचि नहीं होती थी। रोज़ -रोज़ की इस बेरुखी से वह उकता गई थी। वह भी दिन-भर की दौड़-धूप से थकी होती पर रात को उसी के लिए बन सँवर कर तरो-ताज़ा रहती।

कई बार वह चिढ़ कर झगड़ पड़ती 'कम्पनी बदल लें। किसी ऐसी कम्पनी में जाएँ, जहाँ समय पर घर तो आ सकें। प्रोजेक्ट तो समाप्त होने का नाम ही नहीं लेते।' वह उसे कुछ नहीं कहता था, नाराज़गी से भरी बातों को मुस्करा कर टाल जाता और उसे बाँहों में भर कर बिस्तर पर आ जाता और आँखें मूँद लेता। जानता था कि अब वह बोलेगी नहीं।

उसकी बाँहों के घेरे से मुक्त हो कर, वह अचंभित होती और साथ ही चिंता का नाग उसे डस जाता .... शेखर कभी कुछ कहता क्यों नहीं..वह झगड़े भी तो किस से ? हर समय मुस्कराता रहता है। जय के पैदा होने के बाद से वह अन्तर्मुखी हो गया है। घर में सब के साथ होते हुए भी वह अपने में खोया रहता है। शादी के बाद का उन्माद, रोमांस उनके जीवन से लुप्त हो गया, कहाँ गुम हो गया है .....। शेखर एक चंचल प्रेमी था। प्यार करने के उसके नए-नए तरीके होते थे। वह उसे भिन्न-भिन्न अदाओं से लुभाता था। स्वयं को कई तर्कों से समझाती-- शादी के कुछ वर्षों बाद रिश्तों में गर्माहट नहीं रहती होगी। प्यार में स्थिरता आ जाती होगी। शायद उसकी ही चाहतों ने अधिक पाँव पसार लिए हैं। हर तरह से स्वयं को शांत कर सोने की कोशिश करती। बगल में लेटे मुस्करा रहे शेखर को देख कर तरल हो जाती-काम का बोझ बहुत बढ़ गया है, तरक्की जो मिली है। इसलिए इतना थका रहता है। 'मेरा शेखर है बड़ा प्यारा।' कहते हुए उसकी मुस्कराहट चूम लेती।

सुबह उठ कर, कुछ देर के लिए वह बच्चों के साथ खेलता। वह अपने नकारात्मक विचारों को छिटक कर उमंग और उत्साह से भर जाती।

कुछ दिनों बाद वह फिर अकेलेपन के चक्रव्यूह में फँस जाती और उससे आए शून्य से घिर जाती। शेखर की बाँहों के घेरे में उसे पहले सी गर्माहट नहीं मिलती थी। ठंडापन महसूस होता। संसर्ग में भावनाओं का संवेग न होता। सहवास में शेखर की उसे अपने प्रति औपचारिकता की अभिव्यक्ति अधिक मिलती। कोमल क्षणों में भी वह कहीं खोया रहता। हर बार उसका शरीर चुगली काटता कि शेखर का दिल कहीं और था, वह उसके साथ होता हुआ भी उसके साथ नहीं था। वह तृप्त हो कर भी अतृप्त रहती।

उसे महसूस होने लगा था कि वह मानसिक संतुलन खो रही है. ..। शारीरिक रसायन अनियंत्रित हो रहे हैं। उसने अपनी डाक्टर से बात की। उसने उसके खून से लेकर सभी तरह के टेस्ट किए और साक्षी को सलाह दी कि वह नौकरी करे या अपने-आप को घर से बाहर कहीं व्यस्त रखे। उसके भीतर फैलता शून्य सकारात्मक सोच और शरीर में अच्छे रसायन का निकास कर नकारात्मक ऊर्जा का विकास कर रहा था। इस ऊर्जा को अगर समाप्त नहीं किया गया तो अवसाद उसे घेर लेगा। इससे बचने का सबसे अच्छा तरीका डाक्टर ने उसे यही सुझाया था कि अपने इर्द-गिर्द के वातावरण से कुछ घंटों के लिए दूर हो जाए। उसने नौकरी ढूँढने के लिए अंतरजाल का सहारा लिया और कई रिक्त स्थानों के लिए निवेदन पत्र भर दिये।

वेकटैक कम्युनिटी कालेज में दो सप्ताह के भीतर उसे फ़िज़िक्स पढ़ाने की नौकरी मिल गई। इंटरव्यू के बाद उसे उसी समय नियुक्ति पत्र पकड़ा दिया गया।

रात्रि भोजन के समय उसने बड़े उत्साह के साथ शेखर से अपनी ख़ुशी बांटी 'यह देखिये मेरा नियुक्ति पत्र। मुझे नौकरी मिल गई है। शाम की क्लासें मिली हैं, सोचती हूँ, मना कर दूँ, बच्चों को किस के पास छोड़ कर जाऊँ।'

शेखर ने उमंग के साथ कहा था 'मेरे पास।'

'आप घर पर होते ही कहाँ हैं ..?'

'मेरी जानू को कैरियर बनाने का मौका मिला है तो इसे हाथ से जाने नहीं देना चाहिए। मैं जो काम शाम को कम्पनी में बैठ कर करता हूँ वह घर से कर लिया करूंगा। हाँ अपने प्रोजेक्ट लीडर जेम्ज़ को घर बुलाना पड़ेगा। वह यहाँ आ कर मेरे साथ काम कर लेगा। हम दोनों मिल कर बच्चों की देख-भाल भी कर लेंगे। जेम्ज़ बच्चों का बहुत शौकीन है।' उसने पहली बार जेम्ज़ का नाम सुना था।

बच्ची दूध पी कर सो गई थी, उसने अपने अंग ढक लिए। दोनों बेटे साथ वाले कमरे से निकल कर पीछे से आकर उससे लिपट गए। इसी तरह बच्चे उससे लिपट कर जेम्ज़ अंकल की तारीफों के पुल बांधा करते थे। उसे विश्वास नहीं था कि शेखर बच्चों को संभाल सकेगा। लेकिन जेम्ज़ से मिलने के बाद वह निश्चिन्त हो कर कॉलेज जाने लगी थी। पहले दिन जब वह जेम्ज़ से मिली थी तो किसी मैगज़ीन के पृष्ठों के विज्ञापनों से निकला चेहरा लगा था। पुष्ट देह। नीली आँखें। भूरे बाल। शिष्ट और शर्मीला। व्यवहार में सभ्य। बच्चों को मिलते ही वह उनका दोस्त बन गया था। कुछ दिनों में वह भी उसकी प्रशंसिका हो गई थी।

मीनल ने सोनू, जय और उसे वहाँ से उठने के लिए कहा। बच्ची को उसकी गोद से अपनी गोद में लिया। उसे साथ वाले हॉल में चलने का इशारा किया। दोपहर के तीन बज चुके थे। पाँच बजे शेखर की मृतक देह को श्रद्धांजलि अर्पित कर अंत्येष्टी की रस्में पूरी करनी हैं।

सरोज शर्मा आंटी ने साक्षी की ओर देखते हुए मीनल को धीमी आवाज़ में कहा-'मीनल, इसे शौचालय ले जाओ, पानी-वानी पिलाओ। जाने वाला चला गया इसका ख़याल तो रखो ..वे जब बोलती हैं तो बोलती चली जाती हैं ...रो नहीं पा रही इसे शॉक लगा है। अभी इसे कुछ समझ नहीं आ रहा। जब समझ में आया तो आँसुओं को रोक नहीं पाएगी। जिस झटके से और जिस दौर से गुज़र

रही है, उस से पानी की कमी हो सकती है, बेटी ध्यान दो इसकी ओर, अभी इसकी बच्ची दूध पीती है।'

'अच्छा आंटी' कह कर मीनल साक्षी को शौचालय की ओर ले गई। वह कठपुतली सी उसके पीछे चल पड़ी। मीनल उसे वाशरूम में छोड़ कर हॉल में लौट आई। कमोड पर बैठते ही उसके पेट में मरोड़ उठने लगे। वह पेट पकड़ कर बैठ गई।

ऐसे ही मरोड़ उस दिन उठे थे, जब वह चार माह की गर्भवती थी और कॉलेज से उत्साहित घर आई थी। उस दिन क्लास केंसिल हो गई थी। वह बच्चों को सरप्राइज़ देना चाहती थी। वह दबे पाँव घर में घुसी थी। बच्चों की आवाज़ नहीं आ रही थी। घर में सन्नाटा था। उसके मास्टर बेडरूम से जेम्ज़ और शेखर की फुसफुसाहट और हल्की हँसी की आवाज़ें आ रही थीं। उसने सोचा बच्चों के साथ खेल रहे होंगे।

ज्योंही उसने दरवाज़ा खोला बिस्तर पर जेम्ज़ और शेखर अन्तरंग क्रियाओं में लीन थे। वह दृश्य उसके अन्दर की औरत को झकझोर कर, उसके अस्तित्व को जड़ों से उखाड़ गया। उसके पेट में उथल-पुथल हुई, घबरा गई वह, मरोड़ उठा था और मतली आ गई थी। वह तेज़ी से वाशरूम की तरफ भागी वर्ना वहीं कारपेट पर उल्टी कर देती। उसे अपने बदन से बदबू आने लगी थी। उसने बच्चों के कमरे में जाकर दरवाज़ा बंद कर लिया था। पूरे शरीर का पानी आँखों और रोम-रोम से बह निकला था। उसे अपनी त्वचा और अंगों से दुर्गन्ध आने लगी और वह गर्म पानी के शावर में खड़ी हो कर साबुन से रगड़-रगड़ कर बदन धोने लगी।

शेखर का धोखा उसके अंग-अंग को बींध गया था। पूरा शरीर पीड़ा से कराह रहा था। पिछले कई दिनों से उसका अंतर्ज्ञान उसे रिश्तों में आ रही दूरियों से परिचित करवा रहा था पर वह उसे अपना मानसिक विकार और शारीरिक रसायनों के अनुपात का जमा-घटाव समझती रही, वह सोचती रही कि उसके कैमिकल्स का संतुलन बिगड़ गया है। जेम्ज़ से रत्यात्मकता के बाद वह उसे स्पर्श करता रहा... उस एहसास से ही उसे फिर मतली आ गई। उसका रोष गुस्से में बदल गया, वह शेखर को लताड़ना चाहती थी, नहीं कर सकी, बच्चे सो रहे थे। शेखर अपनी मुस्कराहट में अपना दुष्कर्म छिपाता रहा। वह उसके नाजायज़ सम्बन्धों को दुष्कर्म ही कहेगी। निम्न मध्यवर्गीय संस्कारों से जकड़ा उसका मन शेखर के प्रति आक्रोश से भर गया। उसका पोर-पोर वेदना से पीड़ित था। वह किसे अपना दर्द बताए। बहते पानी के साथ वह उसे बहाने की कोशिश कर रही थी।

अमेरिका में कमरे अन्दर से बंद भी कर लो तो बाहर से एक मोटी सूई जैसी चाबी से खोले जा सकते हैं। शेखर बच्चों के कमरे को खोल कर भीतर आ गया था। उसने बाथरूम का दरवाज़ा खटखटाया 'साक्षी, बहुत देर से नहा रही हो, पानी की आवाज़ बच्चों की नींद तोड़ रही है। वे बिस्तर पर करवटें बदल रहे हैं। नीचे लिविंग रूम में आ जाओ, मुझे तुमसे बात करनी है। मैं इंतज़ार कर रहा हूँ।' विनम्रता से शेखर बोला था। बच्चों का नाम सुनते ही वह संयत हो गई थी। शावर लेते हुए ही उसने कहा था 'इस समय नहीं, मैं सुबह बात करूँगी। अभी चले जाओ प्लीज़।' वह उसी समय वहाँ से चला गया।

शावर बंद करके, बदन पौंछ कर, नाईटी पहन कर वह बाहर आ गई, बच्चों को देखने लगी। वे मासूम, भोले-भाले, गोल-मटोल दुनिया से बेख़बर गहरी नींद में सो रहे थे।

उसके पेट में हौल पड़ रहे थे और आँखें बहती जा रही थीं। शेखर की बेवफाई, धोखा उसे तार-तार कर रहा था। अगर उसने भारत फ़ोन किया तो दोनों के माँ-बाप को इस उम्र में गहरी चोट लगेगी। उसके इर्द-गिर्द के लोग, रिश्तेदारों की सोच उदारवादी नहीं, बेहद संकीर्ण है। शादी से इतर किसी और स्त्री के साथ सम्बन्धों को वे स्वीकार कर सकते हैं पर पुरुष के साथ नहीं। इस बात को वे नज़रंदाज़ नहीं कर सकेंगे। परिवारों का जीना वहाँ दूभर हो जायेगा। उसकी बहनों को शादी के लिए लड़के मिलने मुश्किल हो जाएँगे।

आधुनिक भारत में अभी भी बहुत से लोग हैं, जो इन सम्बन्धों को स्वीकार नहीं कर पाएँगे। शेखर के यथार्थ का ठोस धरातल उनके पाँव ज़ख्मीं कर देगा। उसने किसी को भी बताना उचित नहीं समझा।

उदास, थकी, परेशान वह दोनों बच्चों के मध्य में लेट गई। दोनों ने अपनी बाँहें उसके गले में डाल दीं और उस निर्मल सुख से उसकी आँखें मुंद गईं कहीं खटका हुआ, उसकी नींद टूट गई। शायद शेखर चाय बना रहा था।

वह धीरे से उठी ताकि बच्चें जाग ना जाएँ और उसने खिड़की पर से पर्दा हटा दिया। साफ़-सुथरा खुला आकाश...देखते ही आँखों को चैन मिला। पूरे आसमान पर केवल एक तारा चमक रहा था। भूले-भटकों को राह दिखाने वाला। वह खिड़की के पास हो ली। शायद उसे भी राह दिखा दे। टिकटिकी बाँध कर वह उसे देखने लगी। तारे की रोशनी उसकी आँखों की ओर बढ़ने लगी। रोशनी उसकी आँखों तक पहुँचते ही तारा गायब हो गया। उसने आँखों को झपकाया। तारा वहाँ नहीं था। उसकी बेचैनी मिट गई थी। वह उसी समय लिविंग रूम में गई। शेखर कुर्सी पर बैठा चाय पी रहा था, वह सारी रात सोया नहीं था।

उसे देखते ही वह कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और

बोला 'जानू ...'

साक्षी ने उसे वहीं रोक दिया 'मैं जानू हूँ तो जेम्ज़ को क्या कहते हैं आप ?'

'साक्षी आई ऍम सॉरी वैरी-वैरी सॉरी .. मैं नहीं चाहता था कि तुम्हें मेरे इस सम्बन्ध का इस तरह पता चले। मैं स्वयं तुम्हें बताना चाहता था।'

'फिर बताया क्यों नहीं ?'

'बस बता नहीं पाया। सही समय की तलाश करता रहा।'

'सही समय की तलाश में मेरी भावनाओं से खिलवाड़ करते रहे। अगर आपकी शारीरिक और मानसिक ज़रूरत 'स्त्री' नहीं 'पुरुष' था तो मुझ से शादी क्यों की ?'

'साक्षी मैं क़सम खाकर कहता हूँ अपनी इस शारीरिक ज़रुरत, अपनी रुचि और संवेगों का मुझे भी पता नहीं था। मैं तो लड़कियों की ओर बहुत आकर्षित होता था। तभी तो तुम्हारे साथ शादी की थी। जय के जन्म तक मैं अपने आप से अनभिज्ञ था, अपने शरीर, इसकी संरचना और इसकी इच्छाओं से अनजान था। उन्हीं दिनों जेम्ज़ मेरा प्रोजेक्ट लीडर बन कर आया था, उसे देखते ही पता नहीं मुझे क्या हुआ और बहुत कुछ होता चला गया। मैं उस बहाव में बह निकला।'

'और मैं अपने-आप को दोषी मानती रही। मेरे अंदर की औरत रोज़ टूटती और बिखरती रही। तुम क्यों मुझे समझना नहीं चाहते थे यह मैं अब जान पाई हूँ। मैं तुम्हारी व्यस्तता के आवरण में अपनी ख्वाहिशों, अपने जज़्बात को ढकती रही। मर्द हो ना, सिर्फ अपने बारे में सोचते रहे, अपनी चाहतें पूरी करने में लगे रहे। मैं तो सिर्फ औरत हूँ, मेरी औक़ात, मेरा वजूद ही क्या है ?'

'ऐसी बात नहीं साक्षी, मैं अपराध बोध से ग्रस्त हो गया था, तुम्हारे प्रति स्वयं को दोषी समझता था। तभी तुम्हें कुछ कहता नहीं था। अपनी इस कुण्ठा को लेकर मैं मनोविशेषज्ञ से कई बार मिला हूँ। उसी की सहायता से अपने-आप को समझ पाया हूँ। मेरी शारीरिक संरचना ऐसी है कि मैं दोनों लिंगों के प्रति आकर्षित हो सकता हूँ।'

'यह तो आप को पहले से पता था कि आप को दोनों लिंग आकर्षित करते हैं। आप उसे झुठला रहे थे ताकि परिवार और समाज में आपकी छवि न बिगड़े। अचानक ऐसे कैसे हो गया कि जेम्ज़ सामने आ गया तो आप बह गए ...व्हट ए लॉजिक ...साईंस पढ़ी है, अनपढ़ नहीं हूँ।'

'सच कहता हूँ मुझे पता नहीं था अपने इस एहसास का, कभी किसी पुरुष को देख कर कुछ नहीं हुआ था। कल ही तुम्हारी मुलाकात डॉ. किम्रली वेंज़रोफ़्फ़ जो टॉप की मनोविशेषज्ञ है, उससे करवाता हूँ, वही तुम्हारी इस शंका को दूर कर सकती है। उसी ने मेरी काउंसलिंग की है, तभी मैं जान पाया कि प्यार-मोहब्बत, समलिंग-विपरीतलिंग आकर्षण सब केमिकल्स का खेल है।' शेखर ने सामने पड़ी मेज़ से चाय का प्याला उठाया और अपनी बात जारी रखी 'अभी नए शोध से पता चला है कि पुरुषों में भी मेनोपाज़ होता है जिसे एनड्रोपाज़ कहते हैं और उनमें धीरे-धीरे शारीरिक परिवर्तन होते हैं, महिलाओं की तरह एकदम नहीं। बाई सेक्सुअल इंसान उम्र के किसी भी हिस्से में, स्त्री-पुरुष, दोनों की तरफ आकर्षित हो सकता है और मेरी बदकिस्मती है कि मैं बाई सेक्सुअल हूँ। आकर्षित जितना भी हो लें पर रहेंगे एक के साथ।' शेखर को होंठों से लगा गर्म प्याला आईस टी सा लगा।

'अभी नए शोध से पता चला है कि पुरुषों में भी मेनोपाज़ होता है जिसे एनड्रोपाज़ कहते हैं और उनमें धीरे-धीरे शारीरिक परिवर्तन होते हैं, महिलाओं की तरह एकदम नहीं। बाई सेक्सुअल इंसान उम्र के किसी भी हिस्से में, स्त्री-पुरुष, दोनों की तरफ आकर्षित हो सकता है और मेरी बदकिस्मती है कि मैं बाई सेक्सुअल हूँ। आकर्षित जितना भी हो लें पर रहेंगे एक के साथ।'

'मैं वैज्ञानिक हूँ, हारमोंज़ के अनुपात की मात्रा के गणित को समझती हूँ... और आप की इस शारीरिक संरचना को स्वीकार करती हूँ। बता देते तो शायद इतनी चोट ना पहुँचती।व्यथा दोनों के मध्य बैठी थी। आप से प्यार किया है, विश्वास किया होता मुझ पर। आपकी इस शारीरिक प्रक्रिया से मैं बेख़बर थी। आप इतने दिन दो रिश्तों में पिसते रहे। जिसे प्यार किया जाता है, उसे तकलीफ़ में देखना प्यार करने वाले के लिए कष्टकारी होता है.....मुझे तो आपके बिना, गृह-कार्य और बच्चों को सँभालने की आदत हो चुकी है।' शेखर आँखें मूँद कर सुन रहा था।

'अच्छा, एक विकल्प दे रही हूँ कि बच्चों के थोड़ा बड़ा होने तक जिस तरह से जीवन चल रहा है, अगर चला सकें तो हम सब के लिए बेहतर होगा। कल ही मैंने समाचार पत्र में पढ़ा था कि कैलिफोर्निया के पब्लिक स्कूलों के कोर्स में लिंग और सेक्स से जुड़ा हर नया शोध पढ़ाया जायेगा ताकि युवा पीढ़ी को इसका सही ज्ञान हो। पर हमारे बच्चे अभी बहुत छोटे हैं, उन्हें स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की जटिलताओं का पता नहीं और मैं बताना भी नहीं चाहती। यह भी नहीं चाहती कि लोगों को इस समय आप के इस सम्बन्ध का पता चले और बच्चों तक बात पहुँचे। हम दोनों के माँ-बाप इस सदमें को सह नहीं सकेंगे। जेम्ज़ के लिए मैं आप को अपने बन्धन से मुक्त करती हूँ। हाँ, अब आप हमारे बेडरूम में नहीं, अलग कमरे में सोएँगे।' दृढ़ता से कह कर वह उठ गई, बच्चों के रोने की आवाज़ आ गई थी।

शेखर हारे हुए राजनीतिज्ञ सा बैठा रह गया, जिसे वह आज तक भावनात्मक स्तर पर एक कमज़ोर औरत समझता था और कुछ भी बताने से कतराता था। डरता था कि जब भी वह उसे अपने और जेम्ज़ के बारे में बताएगा, वह रोएगी, गिड़गिड़ाएगी, लड़ेगी, झगड़ेगी और उसे कई तरह की दुहाई दे कर विचलित करेगी। अपनी दृढ़ता से वह उसे स्तब्ध और बेज़ुबान कर गई। उसके

व्यक्तित्व के इस पहलू से वह परिचित नहीं था। वह स्वयं भी अपने इस रूप से परिचित हो रही थी। विकट और कठिन घड़ियों में निम्न मध्य वर्गीय स्वाभिमान और कर्मठता जाग उठी थी।

आज़ाद हो कर शेखर घर से बेपरवाह, अपनी और जेम्ज़ की दुनिया में खो गया था। साक्षी और बच्चे गौण हो गए थे उसके लिए। उसकी बात का मान रखने के लिए वह कई-कई दिनों बाद बच्चों और उसे सूरत दिखा कर बस सामाजिक और पारिवारिक मर्यादायों के लिए घर में उपस्थिति दर्ज करवा जाता।

साक्षी ने स्थिति स्वीकार कर ली थी। उसने मीनल और पारुल की सहायता से बच्ची को जन्म दिया। वे ही उसे हस्पताल लेकर गईं और उसका ध्यान रखा। शेखर को बच्ची के बारे में एक सप्ताह बाद पता चला। उस दिन वह उसके कमरे में आया था। वह बहुत उदास, परेशान, खोया-खोया सा था। वह बच्चों में व्यस्त थी। बच्ची के जन्म के बाद वह पूरी तरह से स्वस्थ भी नहीं हो पाई थी कि उसे सब ज़िम्मेदारियाँ संभालनी पड़ीं नौकरी से उसे छुट्टी मिली हुई थी। शेखर क्यों परेशान है, वह उससे पूछ नहीं पाई थी।

उस दिन के बाद उसने उसे मुस्कराते नहीं देखा। घर वह जल्दी आने लगा था पर अधिकतर समय अपने कमरे में बिताता। बच्चों के साथ खेलता हुआ भी वह गुमसुम ही रहता। उसने उससे एक दो बार पूछा पर वह थकान का बहाना बना कर बात को टाल गया। साक्षी ने अधिक नहीं पूछा, वह अपनी ही व्यस्तताओं में उलझी हुई थी। बच्ची की डिलेवरी के समय उसने जान-बूझ कर अपने सास-ससुर को नहीं बुलाया था, घर का पर्दा उठ जाता।

पर्दा तो शेखर स्वयं ही उठा गया, उसके और पुलिस के नाम पत्र लिख कर। काश ! उसने ज़ोर डाल कर पूछा होता कि उसे परेशानी क्या थी ? शायद वह उसे बचा लेती। दुर्घटना रुक जाती.. सोचों के भंवर में वह धंसने लगी... वह उसे रोकती भी तो किस अधिकार पर, सारे अधिकार तो उसने जेम्ज़ को दे दिये थे। घर में शेखर दोस्त की तरह नहीं, अजनबी की तरह व्यवहार करता था। जबकि वह उसकी दोस्त बन गई थी। उसे उसकी चिंता होती थी।

तभी मीनल ने ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाया 'साक्षी तुम ठीक तो हो ? कब से वाशरूम में बैठी हो।' साक्षी ने मीनल की आवाज़ सुन कर स्वयं को सम्भाला, फ्लश का बटन दबाया और दरवाज़ा खोल कर बाहर आ गई। वाश-बेसिन पर हाथ-मुँह धोने लगी।

'मैंने सोचा थोड़ी देर तुम्हें अकेला छोड़ दूँ। इसलिए हॉल में चली गई थी। पर तुमने तो बहुत देर लगा दी। अब मैं शंकित हो गई थी कि कहीं तुम्हारी तबियत तो नहीं बिगड़ गई।'

साक्षी चुपचाप मुँह धोती रही.....

'पंडित जी ने अंतिम संस्कार के लिए तुम्हें बुलाया है, तुम्हारा इंतज़ार हो रहा है।'

साक्षी चुपचाप हॉल की ओर बढ़ गई। भारतीय समुदाय के लोगों ने अपने-अपने दोस्तों को ईमेल भेज कर इसकी सूचना दे दी थी। लोग बेंचों पर बैठ चुके थे। वह बच्चों को लेकर आगे की सीट पर बैठ गई। गीता का पाठ और महामृत्युंजय मन्त्रों की स्वर लहरी धीमें स्वर में सुनाई दे रही है। उसके बैठते ही पंडित जी ने गीता के कुछ श्लोक पढ़े और शरीर की नश्वरता पर बोलना शुरू किया। वहाँ बैठे सभी लोग कुछ क्षणों के लिए इस संसारिक मोह माया से दूर चले गए। सब को अपना शरीर नश्वर लगने लगा। कुछ लोगों को अपने याद आने लगे, जो उन्हें छोड़ गए थे।उनकी आँखों में पानी तैरने लगा। कई महिलाओं की दबी-घुटी सिसकियाँ, सुबकियाँ वहाँ सुनाई देने लगीं।

साक्षी अचम्भित है कि उसके भीतर तो बरसात हो रही है और उसकी आँखें सूखे की लपेट में आ चुकीं हैं। उसकी भावनाएँ, उसके संवेग किस गुफा में समा गए हैं, जहाँ से उन्हें उस तक पहुँचने का रास्ता नहीं मिल रहा। वह शेखर से प्यार करती थी। फिर वह इतनी रूखी क्यों है ? कहतें हैं जब तक मुर्दे को जलाया नहीं जाता आत्मा वहीं अपनों के आस-पास रहती है। शेखर की आत्मा भी सब देख रही है। वह उसे उसके प्रति विमुख देख कर दु:खी होगा। वह इस संसार से दु:खी गया है, वह उसकी आत्मा को शन्ति देना चाहती है।

वह निर्मम नहीं थी, फिर वह भावनारहित क्यों हो गई है...उसे लगने लगा कि शायद वह स्वयं भी जिंदा नहीं, तभी तो इतनी रूखी-सूखी और निर्लज्ज हो गई है, जिसने अपने पति के मरने पर एक आँसू नहीं बहाया। वह महसूसने लगी ... कि वह अपनी आत्मा से यह सब देख रही है। उसने आपने आप को चुटकी काटी। आउच..दर्द हुआ। वह जिंदा है।

पंडित जी का प्रवचन बंद हुआ। उन्होंने कहना शुरू किया-अब मृत शरीर को अंतिम यात्रा पर भेजने का समय आ गया है ... शेखर को सजा-धजा कर जिस ताबूत में लिटाया हुआ था, उसकी परिक्रमा करने के लिए उन्होंने साक्षी और बच्चों को फूल दिये। परिक्रमा कर बच्चों ने शेखर के पाँव छूकर फूल चढ़ाये।

साक्षी वहीं खड़ी हो गई, एक बेजान मूर्ति सी। उसका अस्तित्व शेखर का पत्र पढ़ कर चूर-चूर हो चुका था, जो पुलिस ने उसे दिया था, जिसमें उसने लिखा था--जेम्ज़ उसे किसी और के लिए छोड़ गया, वह उसका अलगाव सह नहीं सका। वह जेम्ज़ को बहुत प्यार करता था, अब उसके जीवन का कोई अर्थ व औचित्य नहीं रहा। ऐसे जीवन को समाप्त करना उसने बेहतर समझा।

ताबूत में पड़े उस इन्सान की मुस्कराहट को उसने अंतिम बार आँखों से अलविदा कहा, जिसके जीवन में उसका और बच्चों का कोई स्थान नहीं था, पर उसने उससे प्यार किया था और वह उसके बच्चों का बाप था। लोग पंक्तिबद्ध परिक्रमा कर शेखर पर फूल चढ़ाने लगे।

एक स्वर में लोगों ने राम नाम सत्य कहना शुरू कर दिया और ताबूत को पहियों पर चला कर एक बड़ी सी गाड़ी के साथ जोड़ दिया गया। सम्पत पॉल ने सोनू और जय का हाथ थाम कर कार में बिठा दिया, मीनल बच्ची को उठा कर साक्षी के साथ कार में बैठ गई। पुलिस की गाड़ियों के पीछे कारों की कतार और शेखर के शव को लिए बड़ी गाड़ी फ्यूनरल होम के उस हिस्से की ओर धीमी गति से चल पड़ी, जहाँ बिजली का बटन दबा कर दाह-संस्कार किया जाता है।

वहाँ से बाहर निकलते ही साक्षी ने जेम्ज़ को सिर झुकाए खड़े देखा।

आँखों में उतर आई नमी को अन्दर गटक लिया और होंठ भींच गए....न...अभी बहुत कुछ करना है.....।

❐

प्रवासी हिन्दी साहित्य समकालीन हिन्दी साहित्य की एक संज्ञा है...

अर्चना पैन्यूली

जन्म : १७ मई १९६३

शिक्षा: एम.एससी. बी.एड. डेनिश लेंगुएज डिप्लोमा।

प्रकाशित कृतियाँ: देश-विदेश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी/अंग्रेज़ी में कहानियाँ, लेख, कविताएँ, यात्रा संस्मरण, अनुवाद व साक्षात्कार प्रकाशित। डेनिश लेखिका कारेन ब्लिकशन की रचना का हिन्दी में रूपांतरण, नया ज्ञानोदय में प्रकाशित ।

उपन्यास : परिवर्तन, वेयर डू आई बिलांग।

पुरस्कार/ सम्मान: जून २००४- साहित्यिक संस्था धाद महिला मंच, देहरादून द्वारा उपन्यास परिवर्तन के लिए सम्मानित, अगस्त २००६ - इंडियन कल्चरल एसोशिएशन, डेनमार्क द्वारा प्रेमचंद्र पुरस्कार से सम्मानित, अगस्त २०११- इंडियन कल्चरल सोसाइटी, डेनमार्क द्वारा स्वतंत्रता दिवस समारोह पर 'प्राइड ऑफ इंडिया' सम्मान से सम्मानित , अगस्त २०१२- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त मैमोरियल ट्रस्ट द्वारा राष्ट्रकवि प्रवासी साहित्यकार पुरस्कार ।

संप्रति: इंटरनेशनल स्कूल, डेनमार्क में अध्यापन।

सम्पर्क:

Bryggergade 6, 2, 4; 2100 Copenhagen, Denmark
51/11 Haridwar Road, Race course chowk, Dehradun - 248001
Email: apainuly@gmail.com

अर्चना पैन्यूली

नई सदी के कहानी समय की चर्चा करें तो हिन्दी कहानियाँ जो विदेशों में लिखी जा रही हैं और जिसे साहित्यकारों ने प्रवासी हिन्दी कहानियों का नाम दिया है, का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। वैसे तो विगत कई वर्षों से प्रवासी हिन्दी कथाकारों ने साहित्य सर्जन किया है, मगर सन् दो हज़ार से इसकी गूँज शुरू हुई है। प्रश्न यह है कि प्रवासी हिन्दी साहित्य कहाँ से पनपा? इसका इतिहास क्या है?

प्रवासी हिन्दी साहित्य क्यों कायम हुआ?

किसी भी भाषा का सम्बन्ध उस देश की सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत से रहता है। हिन्दी इन्हीं परिवेशों के कारण अब केवल भारत की ही नहीं बल्कि एक विश्व भाषा के रूप में अच्छी तरह जानी और पहचानी जाती है। आज विश्वी में इसका तीसरा स्थाान है। सम्पूर्ण विश्व का कोई भी देश ऐसा नहीं होगा जहाँ भारतीय न पहुँचे हों। जहाँ-जहाँ भारतीय गए वहाँ-वहाँ अपनी भारतीयता की छाप छोड़ते गए। जो लोग भारत से बाहर गए, वे अपने साथ अपनी बोलियां भी लेते गए और संगठित होने के लिए उन्हें उन सारी बोलियों को एक विशिष्ट रूप देना पड़ा; इसके लिए उन्हें बहुत अधिक श्रम भी नहीं करना पड़ा। बहु-बोलियों वाले इन भारतवंशियों को विदेशों में हिन्दी को एक स्वरूप देने में न तो समय लगा और न ही संघर्ष करना पड़ा। इन्हीं बोलियों ने उनके दु:ख दर्द को बांटा और जीने की चेतना जागृत की। धीरे-धीरे इन्हीं बोलियों ने मिलकर एक समान आकार लिया; जिससे एक नई भाषा का जन्मी हुआ और उस भाषा में कविता व कहानी को नया रूप प्रदान किया। उस कविता व कहानी में उन लोगों की वेदना, अपनों से दूर होने का दंश छिपा है। उस समय जिस साहित्य की रचना हुई, उस साहित्य में उस जगह का समाज, परिवेश और संस्कृति का सम्मिलन हुआ। जिसमें हमें नये शब्द तो मिले ही, इसके साथ ही उस पैदा होते नए समाज से हमारा साक्षात्कार भी हुआ। उसमें उन्होंने अपने विचार और अनुभव साहित्य के माध्ययम से बांटे।

राष्ट्रीय नाट्य स्कूल की निदेशक एवं राजभाषा मंजूषा पत्रिका की सम्पादक गीता जोशी का कहना है कि यदि वैश्विक हिन्दी के स्वरूप को विस्तार से देखें तो आज हिन्दी का जितना विकास हमारे देश भारत में नहीं हुआ, उससे अधिक हिन्दी का विकास देश से बाहर हुआ है। वैश्विक तौर पे प्रवास के दौरान लिखे जाने वाला साहित्य ही प्रवासी साहित्य कहलाया। उस साहित्य में जो कुछ भी लिखा गया, वो उस परिवेश के अनुसार था। उसके परिवेश में तो ज़्यादा बदलाव नहीं आया। वह साहित्य हमें यह सोचने पर मजबूर कर देता है कि इस पूरी दुनिया में इंसान तो एक ही है, परन्तु। उसके सोचने के ढंग भी एक जैसा ही है। बस वो सोचता उस परिवेश में है; जहाँ वह रह रहा है।

मॉरीशस, फिजी, गयाना, सूरिनाम आदि देश ऐसे हैं; जहाँ भारतवंशियों की संख्या अधिक है, उनका साहित्य एक नए रूप में पहचान बना रहा है। भारतवंशियों की पीड़ा उनकी कहानी और कविताओं में मार्मिक ढंग से उजागर होती है। बँधुआ मज़दूरों की तरह उन्हें जहाज़ों में ठूँस-ठूँसकर गन्ने के खेतों में काम करने के लिए ले जाया गया था। उन्हें कई सब्जबाग दिखाए जाते थे। जो जहाँ मिला, कुछ मीठी बातें करके उन्हें गुमराह किया गया, परन्तु वहाँ हज़ारों मील दूर पहुँचने पर उन्हें जिन द्वीपों के बीच ले जाया गया, वह आशा के विपरीत निकले। उन्हों वहाँ बँधुआ मज़दूरी करनी पड़ी। उन्हें पशुओं की भांति रखा जाता था और यही पीड़ा उनकी कविता और कहानियों में वर्णित है।

इनकी समस्याएँ अस्तित्वन की थीं, शोषण और दु:ख की थी। इसलिए इनकी समस्याएँ इस साहित्य में बहुत मार्मिक ढंग से उकेरी गई हैं। देखा जाए तो विश्व के किसी भी कोने में गए भारतवंशी अपने साथ रामायण, महाभारत, हनुमान चालीसा, आल्हा ऊदल और जातक कथाएँ इत्यादि ले गए।

वे लोग अधिक विद्वान् तो नहीं थे परन्तु उन्होंने अपनी समझ और उस परिवेश में रहकर, परिवेश के अनुसार उन्हीं कथाओं में साहित्य को ढालकर एक नया रूप दे डाला। इस प्रकार आगे की पीढ़ी के पास अपनी विरासत को संरक्षित रखते गए, इस प्रकार उन लोक कथाओं में नई भाषा रूपों (जिनमें हिन्दी के साथ-साथ अनजाने में गढ़े गए शब्द थे) का सम्मिलन हुआ और इससे उन लोक कथाओं को नये शब्दों के साथ-साथ नया रूप भी प्राप्त हुआ।

इसी तरह अनेक विदेशी विद्वान् हुए हैं; जिन्होंने हिन्दी भाषा पर काम किया। उनका तुलनात्मक अध्ययन कर उसके व्याकरणिक गुण और दोषों को उजागर किया है, हिन्दी साहित्य को नई दिशा और विचार दिए हैं। इस प्रकार प्रवासी साहित्य के उद्भव में भारतवंशियों के योगदान के साथ-साथ विदेशी विद्वानों का योगदान भी सराहनीय है।

और देखा जाए तो आज ग्लोबलाइजेशन का समय है। ऐसे समय में अपना व्यापार बढ़ाने के लिए भी हिन्दी सीखी जा रही है, जिससे मल्टीनेशनल कम्पनियों के कार्यकर्ताओं को व्यापार की भाषा हिन्दी, में बातचीत करनी आ सके। ग्लोबलाइजेशन की वजह से परिवर्तन जल्दी आए हैं। मानदंड बदलाव। विदेशों में भारतीय परिवारों की संख्या बढ़ी है, सो हिन्दी लेखक भी बढ़े हैं।

प्रवासी हिन्दी साहित्य समकालीन हिन्दी साहित्य का एक नया विमर्श

कई कथाकारों के नाम गिनाए जा सकते हैं; जिन्होंने साठ-सत्तर के दशक से विदेशी भूमि से हिन्दी कहानियाँ लिखी हैं। साठ के दशक में जो साहित्यकार अमेरिका आए, उनमें तीन सशक्त कहानी लेखिका थीं। सोमा वीरा, डॉ. सुनीता जैन, डॉ. उषा प्रियंवदा। सुधा चंदोला सत्तर के दशक में अमेरिका से वहाँ की जीवन शैली में कहानियाँ लिखती थीं। सुरेश कुमार गोयल यूके के परिवेश में कई सालों से लिख रहे हैं। विपुल हिन्दी लेखक डॉ. अभिमन्यु अनत अस्सी के दशक से मॉरीशस

लेखन शैली सभी प्रवासी लेखकों की अपने-अपने व्यक्तित्व की आवाज़ है और अनुभव उनके एक से हैं तो भिन्न भी हैं। मुख्य बात यह है कि कौन लेखक क्या विषय, किन दर्शकों के लिए, किस ढंग से प्रस्तुत करता है।

में रहने वाले भारतीय समाज पर दरियादिली से लिख रहे हैं और सुषम बेदी ने अमेरिका पर लिखा। अन्य कई लेखक हैं; जिन्होंने विदेशों में रह कर साहित्य सर्जन किया। मगर 2000 से विश्व के विभिन्न देशों में रह रहे कई प्रवासी हिन्दी कथाकार उभर कर आए, जिन्होंने अपने 'अडोप्टिड' मुल्क के आम जीवन व आम नागरिकों पर कहानियाँ रचीं। प्रमुख नाम हैं-सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अनिल प्रभा कुमार, सुधा ओम ढींगरा, इला प्रसाद, अमरेन्द्र कुमार, तेजेन्द्र शर्मा, उषा राजे सक्सेना, दिव्या माथुर, कृष्ण बिहारी, सुमन कुमार घई एवं अर्चना पेन्यूली आदि। ये कथाकार ऐसी पीढ़ी को चित्रित करते हैं; जिन्होंने अपने जीवन का आरम्भिक समय भारत में बिताया और बाद में विदेश रवाना हुए। इन्हें स्वदेश व विदेश की भली-भांति जानकारी है। अपने देश के लोकाचार, पीड़ा, अनुभूतियाँ विकसित देशों की सुविधाएँ, ऐश्वर्य... इन कथाकारों की तेज़ चलती कलम ने हिन्दी साहित्य जगत में एक नए आयाम की प्रस्तुति की, एक नई क्रांति खड़ी की- विदेशी धरती से रचा जा रहा हिन्दी साहित्य। यह एक विशिष्टता लेकर आया और साहित्यकारों ने एक नया विमर्श प्रवासी हिन्दी साहित्य की स्थापना की। वस्तुतः प्रवासी हिन्दी साहित्य समकालीन हिन्दी साहित्य का एक नया विमर्श है।

सन 2000 से 2013, विगत तेरह वर्षों में प्रवासी हिन्दी कहानियों का काफी विस्तार हुआ, और आज प्रवासी हिन्दी कहानियाँ हिन्दी साहित्य जगत में एक चिंतन, एक आंदोलन व एक प्रगति है। अपने तेरह वर्ष की जीवन यात्रा में प्रवासी हिन्दी कहानियों ने निःसन्देह काफी मंजिलें तय कई हैं। ये कहानियाँ सशक्त सुगठित व व्याकरण सम्मत हैं। अनेकों प्रचलित कहानियाँ-कौन सी ज़मीन अपनी,बहता पानी, सुबह, कलश, पार्टनर, देह की कीमत, फ़ुटबाल, हाइवे-ई 47 आदि कहानियों में विविधता है, विश्व के विभिन्न देशों की झाँकी है। इन कथाकारों के कथा साहित्य में प्रवासी भारतीय समाज के विविध पक्ष हैं। प्रवासी लेखकों की रचनाएँ दुनिया को कुछ पलों के लिए सिकोड़ देती हैं। कहा जाता है कि अमेरिका, कैनेडा का जीवन इतिहास की किताबों से नहीं, कथाकारों की कहानियों से प्रकट होता है। विदेश की पृष्ठभूमि पर आधारित इन कहानियों में अप्रावासी भारतीयों के जीवन शैली व जीवन-संघर्षों की कहानी है।

प्रवासी हिन्दी कहानियों का स्वरूप

समय के साथ दृष्टिगोचर में बदलाव आने से लेखन में बदलाव आना स्वाभाविक है। आज जब ग्लोबलाइजेशन की वजह से विदेशों की तरफ़ लोगों का आवागमन बढ़ रहा है, विदेशों में भारतीय परिवारों की संख्या बढ़ रही है तो साहित्य के माध्यम से वहाँ के परिवेश की जानकारी पाठकों को देनी आवश्यक है। राजकीय बालिका कॉलेज की प्रिंसिपल एवं कवयित्री सरोजनी नौटियाल का कहना है, प्रवासी कहानियों की सबसे बड़ी देन यह है कि इन कहानियों ने विदेश के जीवन की सच्चाईयाँ बयाँ रहती हैं। वहाँ का खूबसूरत चेहरा, चमकदार पक्ष व स्याह पक्ष सब कुछ प्रस्तुत किया। वे पहले सोचते थे कि केवल शिक्षित व करिश्मा व्यक्तित्व के लोग ही विदेश प्रवासित होते हैं, इन कहानियों से ज्ञात होता है कि अनपढ़, खान, खलियान में काम करने वाला मज़दूर वर्ग भी विदेशों में प्रवासित होता है, लोग शरणार्थी बन कर भी जाते हैं। वहाँ भी संघर्ष, प्रतिस्पर्धा, ग़म व दुःख हैं। मनुष्य चाहे कितने ही सम्पन्न देश में रहें मगर सुख की गारंटी कहीं भी नहीं।

आज हिन्दी प्रवासी कहानियों में जो सर्जन हो रहा है, उसका मुख्य केंद्रबिंदु एक दूरस्थ स्थान की झाँकी देश-विदेश में बसे अपने भारतीयों को देनी है और साथ ही मानवीय, सामाजिक, सांस्कृतिक व मूल्यों के अंतर, टकराव व बिखराव को अभिव्यक्त व विश्लेषण करना भी है। हिन्दी प्रवासी कहानियों में भारतीय परिवेश का एक 'हाइब्रिड कल्चर' प्रकट होता है। लेखन शैली सभी प्रवासी लेखकों की अपने-अपने व्यक्तित्व की आवाज़ है और अनुभव उनके एक से हैं तो भिन्न भी हैं। मुख्य बात यह है कि कौन लेखक क्या विषय, किन दर्शकों के लिए, किस ढंग से प्रस्तुत करता है।

यूरोप, अमेरिका व कैनेडा में आकर बसने वाले

भारतीयों के अनुभव व संघर्ष कुछ और हैं। मॉरीशस, फिजी, त्रिनिदाद, गयाना, सूरिनाम आदि में बसने वालों के कुछ और तो खाड़ी प्रदेश में बसने वालों के कुछ और। फिजी, मॉरीशस, गुयाना, जमाईका आदि ऐसे देश हैं; जहाँ अंग्रेजी हुकुमत के दौरान हिन्दुस्तानियों को जो गिरमिटिया मज़दूर से प्रचलित हैं, को गन्ने की खेती के लिए बँधुआ मज़दूर बना कर लाया गया था। कालान्तर में इन्हें मजबूरन इन्हीं देशों में बसना पड़ा। भारत से गिरमिटिया मज़दूर बनाकर मॉरीशस ले जाए गए भारतवंशियों ने वहाँ जाकर उजाड़ और वीरान पड़े उस टापू को अपने परिश्रम और पुरुषार्थ से स्वर्ग बना दिया। सो इन मुल्कों में रहने वाले हिन्दी लेखकों ने अपनी रचनाओं में इन गिरमिटिया मज़दूरों की गाथा व व्यथा का खुल कर वर्णन किया है।

यूरोप व अमेरिका में अलग सेट के लोग अप्रवासित हुए। इन मुल्कों में बहुत से भारतीय विद्यार्थी पढ़ने गए और फिर वहीं बस गए। कई भारतीय रिफ्यूजी बन कर भी गए तो भारतीयों की मौजूदा नस्ल ग्लोबलाइजेशन की वजह से मल्टीनेशनल कम्पनियों में कार्य के लिए विस्थापित हो रही है। अत: यूरोप व अमेरिका में बसे हिन्दी लेखकों की रचनाएँ सामायिक अप्रवासन पहलुओं को अपनी लेखनी में उजागर करती हैं। इमीग्रेशन ईशू, एक इमिग्रेंट बन कर दूसरे मुल्क में रहना क्या है? इमीग्रेंटस की कठिनाइयाँ, उपलब्धियाँ क्या हैं, इसका भान पाठकों को प्रवासी कहानियों से सहज ही हो जाता है। साहित्यप्रेमी श्री गोविन्द प्रसाद बहुगुणा ने प्रवास में लिखी कहानियों के सन्दर्भ में टिप्पणी की है कि प्रवासी हिन्दी कहानियों से अप्रवासियों की स्थिति बड़े अच्छे से उभर कर आती है-अपने मुल्क से बाहर किसी दूसरे मुल्क में बसने वाला व्यक्ति उखड़े हुए पौधे की तरह होता है-ट्रांसप्लांटड प्लांट-प्रत्यारोपित पौधा जो अच्छी भूमि, उर्वर के बावजूद विदेश की जलवायु में पूरा जम नहीं पाता। अपने देश से एक सुदूर प्रदेश के परिवेश को अपनी राष्ट्रभाषा में लिख कर अपने देश तक पहुँचना एक प्रवासी लेखक की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

प्रवासी हिन्दी साहित्य समकालीन हिन्दी साहित्य की एक संज्ञा है। समकालीनता का अभिप्राय समय की विचार-धारा, चिन्तन, मानवमूल्य, मनोवृत्ति, भाषा का प्रयोग आदि। आजकल का मनुष्य ग्लोबल सिटीजन हो रहा है। वह दुनिया घूम रहा है। यथार्थवादी अथवा प्रेक्टिकल हो गया है। वह सीधे बात पर आना चाहता है। समाज खुल रहा है, दुनिया सिकुड़ रही है। अत: एक रचनाकार का दायित्व है कि जो कुछ समाज में हो रहा है, उसे मान्यता दे, जो बातें समाज में हैं उसे स्वीकारे। फालतू की महिमामंडन करना, तथाकथित आदर्श का मुखौटा ओढ़ने की आवश्यकता नहीं। माइग्रेशन, लिविंग रिलेशंस, कई नए मुद्दे हैं; जिनका सही चित्रण करने की आवश्यकता है।

भाषा का भी वैश्वीकरण हो रहा है। अब हमें स्वीकार कर लेना चाहिए कि अंग्रेज़ी आज एक ग्लोबल लेंगुएज है। कुछ शब्द व भाव लोग अंग्रेज़ी में बेहतर समझते हैं, तो उनका प्रयोग करने से झिझक क्यों? यह भी गौरतलब है कि आज के पाठक क्या, किस शैली व भाषा में पढ़ना चाहेंगे। भारतवर्ष की आधी से अधिक जनता युवा है। जब तक लेखक अपनी रचनाओं में युवाओं की समस्याएँ, उनके सोच-विचार व उनके जीवन में आए आधुनिकरण को नहीं दर्शाएँगे, उनको साहित्य आकर्षित नहीं करेगा।

एक प्रवासी लेखक का लेखन क्षेत्र काफ़ी फैल जाता है। विभिन्न परिवेशों, संस्कृतियों व प्रकृतियों के लोगों के साथ तालमेल बैठाते हुए उसका दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है। तेजेन्द्र शर्मा, सुधा ओम ढींगरा, सुषम बेदी... किसी भी प्रवासी हिन्दी कथाकार की रचना को पढ़ो तो उनमें एक खुलापन नज़र आता है। ये रचनाएँ ज़िन्दगी के अधिक करीब लगती हैं। उनकी लेखनी में एक नयापन, एक मार्डन अप्रोच दिखती है। कहानी के पात्र धरातल पर रहते हैं। किसी की बेवजह महिमामंडन नहीं होती। जो जैसा है वह वैसा है। भारत से विदेशों की तरफ लोगों का जो स्थानान्तरण बढ़ रहा है, उसे भी अपनी कहानियों में उतार रहे हैं। यूरोपीय-अमेरिकन जीवन शैली का परिचय पाठकों को मिलता है। पाठक लन्दन, रोम, डेनमार्क आदि घूमे बगैर वहाँ के समाज से रूबरू हो जाते हैं। प्रवासी कहानियाँ हिन्दी शब्दकोश में नए शब्द भी दे रही हैं।

बहरहाल कुछ पाठक यह भी कहते हैं कि प्रवासी हिन्दी कहानियाँ उन्हें रोचक लगती हैं, इन कहानियों में एक भिन्न परिवेश का चित्रण, एक नयापन दृष्टिगोचर होता है। पाठकों को नई, अज्ञात चीज़ों से अवगत करवाती हैं। मनोरंजन कर लेती हैं, मगर लेखकों की भाषा में पकड़ नहीं लगती, ये कहानियाँ मन में एक गहरी छाप नहीं छोड़तीं। कई साहित्यकार प्रवासी कहानियों को दूसरे दर्जे का साहित्य मानते हैं।

खैर समस्त विसंगतियों के बावजूद प्रवासी साहित्य स्वतंत्र, अपने दैनिक जीवन के अनुभवों की बात करते हुए आगे बढ़ रहा है। इसे उचित सिला देने की आवश्यकता है जिससे यह और अधिक विकसित हो सके और हिन्दी साहित्य जगत को और अधिक समृद्ध और विश्वव्यापी बना सके।

❐

Dr. Rajeshvar K. Sharda MD FRCSC
Eye Physician and Surgeon
Assistant Clinical Professor (adjunct)
Department of Surgery, McMaster University

1 Young St., Suite 302, Hamilton ON L8N 1T8
P: 905-527-5559 F: 905-527-3883
info@shardaeyeinstitute.com
www.shardaeyeinstitute.com

यह ज़िन्दगी के मुहाने पर मनमोहक मौत को हमारे सामने प्रस्तुत करती है

साधना अग्रवाल

जन्म: ३ जुलाई, १९६२

उपलब्धियाँ :

आर्य स्मृति साहित्य सम्मान - वर्ष २००५

दूरदर्शन के राष्ट्रीय पुरस्कारों एवं कार्यक्रमों की जूरी की सदस्या, साहित्य अकादेमी एवं भारतीय ज्ञानपीठ की अनेक पुस्तकों का संपादन, दूरदर्शन पर अनेक महत्त्वपूर्ण लेखकों से साक्षात्कार और साहित्यिक विमर्शों में सहभागिता, प्रिंट एवं विजुअल मीडिया से जुड़े सवालों का विश्लेषण पत्र-पत्रिकाओं में कई पत्रिकाओं में नियमित स्तम्भ लेखन, साहित्य अकादेमी द्वारा विदेशी लेखकों के भारत आगमन पर बातचीत के लिए निरंतर आमंत्रित

दूरदर्शन आर्काइव में लिप्यांतरण, विवरण और शोध में महत्त्वपूर्ण योगदान ।

प्रकाशित पुस्तकें : वर्तमान हिन्दी महिला कथा लेखन और दाम्पत्य जीवन, हमारे युग का खलनायक :राजेन्द्र यादव, साहित्य का सच; (आलोचनात्मक लेख), बेतरतीब तिथियों में कहीं मैं फिर मिलूँ, आलोचना का पुनर्पाठ, (आलोचनात्मक लेख)।

हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षाएँ प्रकाशित।

संपर्क

B19-F दिल्ली पुलिस अपार्टमेंट्स, मयूर विहार फेज-१, दिल्ली-११००९१

मोबाइल ९८९१३४९०५८

ई मेल:

agrawalsadhna2000@gmail.com

साधना अग्रवाल

तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'क़ब्र का मुनाफ़ा' पहली बार जब 'रचना समय' में छपी थी तो हिन्दी पाठकों के बीच थोड़ी सुगबुगाहट हुई थी फिर भी उनके कहानीकार को हिन्दी के कथा-आलोचकों ने गंभीरता से नहीं लिया था। बीच में तेजेंद्र शर्मा का फिर एक कहानी संग्रह भी आया। लेकिन जब 'इंडिया टुडे' के एक विशेषांक में एक सर्वेक्षण के अंतर्गत २० वर्षों की २० उत्कृष्ट कहानियों की सूची प्रस्तुत करने के लिए हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादकों से पूछा गया तो 'रचना समय' के संपादक और खुद कहानीकार हरि भटनागर ने जिन कहानियों के नाम लिए उनमें 'क़ब्र का मुनाफ़ा' भी थी। इस कहानी के उल्लेख से इतना ज़रूर हुआ कि जिन लोगों ने पहले यह कहानी नहीं पढ़ी थी, उन्होंने ढूँड़कर यह कहानी पढ़ी। फिर भी इस कहानी पर जिस तरह हिन्दी के सुधी पाठकों के बीच प्रतिक्रिया होनी चाहिए, वह नहीं हुई।

हिन्दी समाज की एक विचित्र आदत यह है कि कही-सुनी बातों से लोग ज़्यादा उत्तेजित होते हैं, खुद पढ़-पढ़ाकर निर्णय लेने पर कम ध्यान देते हैं। यही कारण है कि यह कहानी साज़िश की शिकार हुई। पिछले दिनों यमुना नगर में प्रवासी साहित्य पर आयोजित तीन दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में बोलने के लिए जब मैंने इस कहानी का चुनाव किया तो कहानी पढ़कर मैं सचमुच हैरान रह गई यह देखकर कि यह कहानी एक बिल्कुल नई थीम और नई विषयवस्तु को हमारे सामने लाती है। मेरे जानते अब तक हिन्दी में संभवत: पहले इस थीम पर कोई कहानी नहीं लिखी गई।

तेजेंद्र शर्मा शहरी ठाठ के कहानीकार हैं। 'क़ब्र का मुनाफ़ा' कहानी हमारे समय के बढ़ते बाज़ारवाद के दुष्प्रभाव को बड़ी ख़ूबसूरती से सामने ही नहीं लाती बल्कि हमारी संवेदनशीलता को भी झकझोरती है। ख़लील ज़ैदी और नजम जमाल मूलत: पाकिस्तान और हिंदुस्तान के रहने वाले हैं लेकिन लंदन में बस गए हैं। दोनों के बीच घनिष्ठ मैत्री है लेकिन विचारधारा ही नहीं, आचार-व्यवहार में भी फ़र्क है। ख़लील सिगरेट पीता है शराब नहीं और नजम शराब पीता है सिगरेट नहीं, लेकिन दोनों एक दूसरे को बर्दाश्त करते हैं। लंदन के फाइनेन्शियल सेक्टर में ख़लील की ख़ासी इज़्ज़त है। दोनों काफी धनाढ्य हैं लेकिन नौकरी से रिटायरमेंट के बाद दोनों ही कुछ नया काम करने की योजना बनाते हैं। इस बीच लंदन के पॉश इलाके कार्पेण्डर्स पार्क में क़ब्र की बुकिंग के विज्ञापन पर नजम की नज़र जाती है और वह ख़लील से कहता है, 'वो ख़ाली दस पाउंड महीने की प्रीमियम पर आपको शान से दफ़नाने की पूरी ज़िम्मेदारी अपने पर ले रहे हैं। लाश को नहलाना, नये कपड़े पहनाना, कफ़न का इंतज़ाम, रॉल्स रॉयस में लाश की सवारी और क़ब्र पर संगमरमर का प्लाक-ये सब इस बीमे में शामिल है।' ख़लील को नजम का आइडिया पसंद आता है लेकिन धार्मिक कट्टरता के मारे वह पूछता है, 'ये साला क़ब्रिस्तान शिया लोगों के लिए एक्सक्लूसिव नहीं हो सकता क्या ? वर्ना मरने के बाद पता नहीं चलेगा कि पड़ोस में शिया है सुन्नी या फिर वो गुजराती टोपी वाला। यार सोचकर ही झुरझुरी महसूस होती है। मेरा तो बस चले तो एक क़ब्रिस्तान बनाकर उस पर बोर्ड लगा दूँ शिया मुसलमानों के लिए रिजर्व्ड।'

ख़लील ज़ैदी में न केवल धार्मिक कट्टरता है बल्कि अपने स्टेटस का भी उसे पूरा ख़याल है इसलिए वह नहीं चाहता कि मरने के बाद हम किसी खानसामा, मोची या प्लंबर के साथ पड़े रहें' ख़लील की बातें उसकी पत्नी नादिरा, जो एक सोशल एक्टिविस्ट है, को पसन्द नहीं आतीं और वह ख़लील के इस तर्क को-'अपने जैसे लोगों के बीच दफ़न होने का सुख और ही है'-काटना चाहती है कि 'ख़लील अपने जैसे क्यों ? अपने क्यों नही ? आप पाकिस्तान में क्यों नहीं दफ़न होना चाहते ?

वहाँ आप अपनों के क़रीब रहेंगें क्या ज़्यादा ख़ुशी नहीं हासिल होगी ?

चूँकि ख़लील ज़ैदी का सोचना है कि चूँकि उसने अपनी पत्नी और परिवार को ज़माने की सारी सुख-सुविधाएँ, ऐशो-आराम दिए हैं जिसके लिए उसकी पत्नी को उसका कृतज्ञ होना चाहिए। लेकिन नादिरा को इन तमाम भौतिक सुविधाओं के बीच रहते हुए भी कभी सच्ची ख़ुशी महसूस नहीं होती और अपने तमाम दुख-दर्द को वह अपने साने में दबाकर बनावटी हँसी अपने ओठों पर टाँक लेती है और ख़लील के साथ ज़िन्दगी जीने का समझौता कर लेती है। उसे मालूम है कि दूसरे पुरुषों की सामंती मानसिकता की तरह ही ख़लील को भी कंट्रोल करने की बीमारी है। वह हर चीज़, हर स्थिति, हर व्यक्ति को कंट्रोल कर लेना चाहता है कंट्रोल फ्रीक। नादिरा खलील से क़ब्र का आरक्षण कराने की बात सुनकर इसलिए भी ज़्यादा चिन्तित हो जाती है कि सारी उम्र तो ख़लील जैसे इंसान के साथ बिता ली लेकिन 'मरने के बाद भी ख़लील की बगल में ही रहना होगा। क्या मरने के बाद भी चैन नहीं मिलेगा ?' उसे एक घटना की याद आती है जब वे लोग एक बार परवेज़ अहमद के घर गए थे और वहाँ बातों-बातों में नादिरा ने कह दिया था कि भारत का प्रधानमंत्री सिख, वहाँ का राष्ट्रपति मुसलमान और कांग्रेस की मुखिया ईसाई। क्या दुनिया के किसी भी और देश में ऐसा हो सकता है ?' जिसको सुनकर ख़लील अपने आपे में नहीं रह पाया और नादिरा को तलाक देने तक की धमकी दे डाली थी।

क़ब्रें आरक्षित कराने के काफ़ी समय बाद ख़लील और नजम दोनों ही इस विषय को भूल जाते हैं और नया धन्धा करने की योजना बनाते हैं। नादिरा को जब क़ब्र आरक्षण की मासिक किश्त में पैसे बढ़ाने की चिट्ठी मिलती है,वह नाराज़ हो जाती है। वह ख़लील पर क़ब्र के आरक्षण को कैंसिल करवाने के लिए ज़ोर डालती है लेकिन ख़लील उसकी बात पर ध्यान नहीं देता है। अचानक यहाँ कहानी में एक नाटकीय मोड़ आता है जब वह विज्ञापन एजेन्सी को फ़ोन करके क़ब्र का आरक्षण कैंसिल करवाने के लिए कहती है तो उसे पता चलता है कि क़ब्र का आरक्षण करवाने में भी मुनाफ़ा हुआ है। वह ख़लील से कहती है कि 'आपने साढ़े तीन सौ पाउंड एक क़ब्र के लिए जमा करवाए हैं। यानी कि दो क़ब्रों के लिए सात सौ पाउंड। और अब इन्फ्लेशन की वजह से उन क़ब्रों की क़ीमत हो गई है ग्यारह सौ पाउंड; यानी कि आपको कुल चार सौ पाउंड का लाभ।' इतना सुनते ही ख़लील की आँखों में चमक आ गई क्योंकि उसे नया धंधा मिल गया था।

बाज़ारवाद हमारी ज़िन्दगी में चुपचाप किस तेज़ी से प्रवेश कर रहा है, इसकी मिसाल है यह कहानी। यहाँ यह सवाल भी उठता है कि क्या बाज़ारवाद की इस आँधी में हमारी मनुष्यता, संवेदना कहीं खो गई है कि हम क़ब्र में भी अर्थात् मरने के बाद भी मुनाफ़े की ही बात सोचें

इस कहानी की दूसरी स्त्री पात्र नजम जमाल की पत्नी आबिदा है। आबिदा यद्यपि अपने पति नजम के विवाहेतर संबंधों को जानती है फिर भी मस्त रहती है और भरपूर ज़िन्दगी जीने की कोशिश करती है क्योंकि वह अपने मन की सारी बातें नादिरा से कहकर हल्की हो जाती है। महसूस तो नादिरा भी करती है लेकिन वह हर बात केवल अपने सीने में दबाए रखती है। दोनों जानती हैं कि उनके पतियों के पास उनके लिए कोई समय नहीं है जबकि दोनों के पति एक आम पुरुष की तरह यह सोचते हैं कि जमाने भर की सुविधाएँ मुहैया कराना ही काफी है जबकि एक स्त्री को असली ख़ुशी एक सामान्य ज़िन्दगी जीने में या एक बैडरूम के फ़्लैट में मिल सकती है। दूसरी ओर महलों में रहने के बावजूद उसे वहाँ मकबरे का सा आभास ही मिल सकता है।

आज के स्त्री-विमर्श के इस दौर में यह एक सशक्त कहानी है। जब तक एक औरत को मन की और अभिव्यक्ति की आज़ादी नहीं मिलेगी तब तक सही मायने में सारा स्त्री-विमर्श केवल दिखावा-मात्र ही होगा। नादिरा आर्थिक रूप से अपने पति ख़लील पर आश्रित है किन्तु वह दासी बनकर रहने को तैयार नहीं है। वह उस स्थिति में जीते हुए भी विद्रोह करने से चूकती नहीं है। ख़लील भी उस हव्वा की औलाद से ख़ौफ़ खाता दिखाई देता है। नादिरा के विद्रोह के फलस्वरूप ही ख़लील को पता चलता है कि क़ब्रों के बुक करवाने और बेचने में कितना लाभ हो सकता है। और उसे नया धंधा मिल जाता हैं। नादिरा का विद्रोह नारेबाज़ी वाला विमर्श नहीं है। वह सामंती सोच के सामने शालीन ढंग से अपनी बात मनवाने के लिए अपना समाजवाद इस्तेमाल करती है।

यह कहानी वहीं ख़त्म नहीं होती, जहाँ ख़त्म होती है बल्कि अपने पीछे बहुत सारे ऐसे सवालों को उठाती है जो हमारी ज़िन्दगी से गहराई से जुड़े हुए हैं। पहला सवाल धार्मिक कट्टरता है और यह कट्टरता दोनों मुस्लिम पुरुष पात्र-ख़लील और नजम में स्पष्टत: दिखाई पड़ती है। जो मृत्यु के बाद क़ब्र में होते हुए भी धार्मिक कट्टरता से दूर नहीं होना चाहते यानी शिया की बगल में सुन्नी न हो और सुन्नी की बगल में शिया न हो। दूसरा सवाल ज़्यादा अहम है और वह है कि भौतिक सुविधाओं से उत्पन्न चमक-दमक के बीच मौत को भी ख़ूबसूरती प्रदान करना, इसके लिए एक पॉश इलाके में क़ब्र

का आरक्षण ही काफी नहीं है बल्कि धूमधाम से मेकअप के साथ रॉल्स रॉयस पर चढ़कर जनाज़े का निकलना। लेकिन ख़लील और नजम की मानसिकता और धार्मिक कट्टरता के विपरीत इन दोनों की पत्नियों की सोच है। नादिरा सेक्यूलर और प्रगतिशील विचारों की है और आबिदा अपने में अलमस्त है। ग़ौर करने की बात है कि इनकी असली ज़िन्दगी मौत के बाद शुरू होती है। यह कहानी मौत जैसे भयावह यथार्थ को भी भुनाती है जबकि मौत लोगों को डराती है।

इस कहानी की थीम नई इस अर्थ में है कि यह पश्चिम का बाज़ारवाद है जहाँ विज्ञापन के सहारे मौत को भी आकर्षक और मोहक बनाया जा सकता है। क्योंकि वहाँ अपेक्षाकृत भौतिक सुविधाएँ ज़्यादा हैं इसलिए भी आपस में प्रतिस्पर्धा है। इस कहानी में मौत और क़ब्र दोनों नए विस्तार पाते हैं। लंदन बसने से पहले जहाँ तेजेंद्र की कहानियों में मौत एक दूसरे रूप में आती है वहीं लंदन प्रवास के बाद वे मौत को भी एक खिलंदड़े अंदाज़ में सामने लाते हैं यानी उनकी कहानियों में अब रचनात्मक प्रौढ़ता साफ़ दिखाई देती है। वरिष्ठ कथाकार और 'हंस' संपादक राजेन्द्र यादव की इस बात से सहमत हुआ जा सकता है कि 'क़ब्र का मुनाफ़ा' ऐसे मुसलमान दोस्तों की कहानी है जो न अपने भीतर के लखनऊ को निकाल पाये हैं, न कराची को और अपने लिए खरीदी गई क़ब्रों की जगहों को मुनाफ़े में बेचकर सफलता का संतोष पाते हैं। यह मरते-मरते विदेश से कुछ न कुछ झटक लेने का लालच है।'

लाश के मेकअप का सामान और उसका दुल्हन की तरह शृंगार करने का दावा कहानी को नए आयाम प्रदान करते हैं। कंपनी का दावा कि वे आग से झुलसे चेहरे या फिर दुर्घटना से विकृत चेहरे को भी खूबसूरत बना सकते हैं, आने वाले भविष्य की भयावह सोच को सामने लाता है। तेजेंद्र इस सब को इतने सहज ढंग से कह जाते हैं कि इसका असर कहानी पढ़ने के बाद देर तक गहरा भीतर तक बना रहता है।

दरअसल इस कहानी में मानवीय मूल्यों की टकराहट है जिसकी अनुगूँज सुदूर अतीत का स्पर्श करती हुई वर्तमान के बीच से भविष्य को भी सुनिश्चित करना चाहती है। नादिरा और ख़लील की सोच में ज़मीन आसमान का अंतर है। नादिरा ज़्यादा व्यावहारिक है जबकि ख़लील स्वप्नजीवी, इस तरह यह कहानी यथार्थ और फैंटेसी के मिश्रण से बनी है। यदि आप हिन्दी के लगभग विस्मृत कहानीकार इसराइल की कहानी 'मुर्दों का रखवाला' ('फ़र्क' संग्रह में संकलितबद्ध)को याद करें और तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'क़ब्र का मुनाफ़ा' को आमने-सामने रखकर देखें तो यह स्पष्ट होगा कि पहली कहानी में मानवीयता है जबकि दूसरी कहानी में अमानवीयता। यानी इन दोनों कहानियों में दो सांस्कृतिक मूल्यों की टकराहट है। पश्चिमी संस्कृति बाज़ारवाद की गिरफ़्त में है जबकि भारतीय संस्कृति में बाज़ारवाद की पैठ अभी उतनी गहरी नहीं हुई है। कहना न होगा कि तेजेंद्र शर्मा की यह कहानी इसलिए भी उल्लेखनीय है कि यह ज़िन्दगी के मुहाने पर मनमोहक मौत को हमारे सामने प्रस्तुत करती है।

❐

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
चयनित कहानी

क़ब्र का मुनाफ़ा

तेजेन्द्र शर्मा

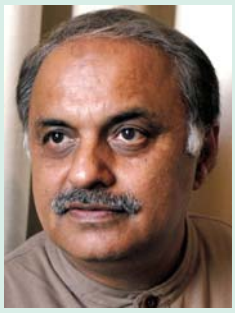

तेजेन्द्र शर्मा

जन्म: 21 अक्टूबर 1952 को पंजाब में ।

शिक्षा: बी.ए. अंग्रेज़ी, एम.ए. अंग्रेज़ी।

प्रकाशित कृतियाँ : काला सागर, ढिबरी टाइट, देह की कीमत, यह क्या हो गया !, बेघर आँखें, सीधी रेखा की परतें, तेजेन्द्र शर्मा की समग्र कहानियाँ भाग-1, क़ब्र का मुनाफ़ा, दीवार में रास्ता, सभी कहानी संग्रह। ये घर तुम्हारा है... (कविता एवं ग़ज़ल संग्रह)।

अनूदित कृतियाँ : ढिबरी टाइट, एवं कल फेर आणा नाम से पंजाबी, ईंटों का जंगल नाम से उर्दू तथा पासपोर्ट का रंगहरू नाम से नेपाली में अनूदित कहानियों के संग्रह प्रकाशित।

संपादन: समुद्र पार रचना संसार (21 प्रवासी लेखकों की कहानियों का संकलन)। यहाँ से वहाँ तक (ब्रिटेन के कवियों का कविता संग्रह), ब्रिटेन में उर्दू क़लम, समुद्र पार हिन्दी ग़ज़ल, प्रवासी संसार - कथा विशेषांक। सृजन संदर्भ पत्रिका का प्रवासी साहित्य विशेषांक।

अन्य लेखन: दूरदर्शन के लिये शांति सीरियल का लेखन ।

विशेष : वर्ष 1995 से कथाकारों के लिये इंदु शर्मा कथा सम्मान की स्थापना।

संप्रति: ब्रिटिश रेल में कार्यरत।

संपर्क :

33-A, Flat No: 2, Spencer Road, Harrow & Wealdstone, HA3 7AN (Middlesex), U.K.
Mobile: 00-44-7400313433
E-mail: kahanikar@gmail.com, kathauk@gmail.com

रचना प्रक्रिया

आम तौर पर देखा गया है कि हर लेखक का नाम किसी ख़ास रचना के साथ जुड़ जाता है। ऐसा नहीं होता कि उसका बाक़ी लेखन दोयम दर्जे का होता है। बस कोई एक रचना उसकी पहचान बन जाती है। ऐसा फ़िल्मी दुनिया में भी होता है कि किसी भी फ़िल्मकार का नाम किसी एक विशेष फ़िल्म के साथ जुड़ जाता है। मेरे साथ भी कुछ ऐसा हुआ लगता है। तेजेन्द्र शर्मा और क़ब्र का मुनाफ़ा कुछ पर्यायवाची से बन गए हैं।

जब मैं भारत से लन्दन बसने आया था तो मुझे काला सागर, ढिबरी टाइट, एक ही रंग, देह की क़ीमत, मलबे की मालक़िन और कैंसर जैसी कहानियों के लेखक के रूप में पहचाना जाने लगा था। लन्दन में बसने के बाद अभिशप्त, कोख का किराया, दीवार में रास्ता, टेलिफ़ोन लाइन, छूता फिसलता जीवन, बेतरतीब ज़िन्दगी, कल फिर आना, ओवरफ़्लों पार्किंग, ज़मीन भुरभुरी क्यों है... ? जैसी बहुत सी कहानियाँ लिखीं। मगर जो चर्चा क़ब्र का मुनाफ़ा की हुई वो शायद किसी अन्य कहानी की नहीं हुई।

कहानी लिखने की मेरी कोई एक तयशुदा प्रक्रिया नहीं है। हर कहानी के लिए घटना की आवश्यकता भी महसूस नहीं करता। कभी दो लाइनों की घटना भी बीस पृष्ठ की कहानी बन जाती है तो कभी बिना किसी घटना के ही कहानी जन्म ले लेती है-बस एक ख़्याल ज़हन में उभरना चाहिए। क़ब्र का मुनाफ़ा कहानी का जन्म भी आपसी बातचीत में ही हुआ।

हुआ कुछ यूँ कि आदरणीय ज़किया ज़ुबैरी जी ने एक बार बताया, 'शर्मा जी, कल एक पार्टी में सलीम (ज़किया जी के पति) ने एक चुटकुला सुनाया... मुझे अभी तक समझ नहीं आया कि उस चुटकुले पर हँसू... या फिर...' थोड़ी देर की चुप्पी के बाद वे फिर बोलीं, 'शर्मा जी, सलीम से किसी ने पूछा कि ज़ुबैरी साब, ज़किया आपा को इस साल बर्थ डे पर क्या गिफ़्ट देने जा रहे हैं ?... तो सलीम कहते हैं... भाई हम इस साल कुछ नहीं देंगे... जो गिफ़्ट पिछले साल दिया था, वो तो इन्होंने अब तक इस्तेमाल नहीं किया... इस पर सामने वाले ने पूछा कि ज़ुबैरी साब पिछले साल क्या गिफ़्ट दिया था ? तो सलीम ने जवाब दिया... भाई पिछले साल इनको एक क़ब्र तोहफ़े में दी थी।'

ज़किया जी के लिए यह केवल एक बात थी... एक ऐसा चुटकुला जो उन्हें चुभ गया... मगर यह चुटकुला मेरी रातों की नींद हराम कर गया... तोहफ़े में क़ब्र...! मेरे भीतर का लेखक अचानक जाग गया था... ऐसी बात उसने कभी सोची भी ना थी... मौत के साथ मज़ाक !... एक खिलन्दड़ापन... बाज़ारवाद का नया खेल कि मरने के बाद भी अपने स्टेटस के लोगों के बीच दफ़न होंगे... घर के नज़दीक एक क़ब्रिस्तान था-कार्पेण्डर्स पार्क में। वही मेरी कहानी की ज़मीन बना... उसे जा कर बहुत बार देखा... वहाँ का भूगोल, गणित, वातावरण... सभी पर निगाह रखी, परखा और समझने का प्रयास किया। कहानी के बीज तो पड़ गये थे मगर अभी तक कहानी का स्वरूप उभर कर दिमाग़ में नहीं बन रहा था।

एक दिन बेकरलू लाइन की अण्डरग्राउण्ड रेलगाड़ी में सफ़र कर रहा था तो अचानक एक पैम्फ़लेट हाथ लगा। उस पैम्फ़लेट में जो लिखा था उसने जीवन के बारे में मेरी सोच को झकझोर कर रख दिया। लाश का मेक-अप... उसे दुल्हन या दूल्हे की तरह सजाना... फिर अंतिम संस्कार के लिये बीमा पॉलीसी...आपको जैसा अंतिम संस्कार चाहिए वैसा बीमा करवा लीजिए... आप चाहे सारी उम्र लोकल ट्रेन में धक्के खाते रहे हों मगर आपकी लाश राजा की सवारी की तरह रॉल्स रॉयस में लेट कर जाएगी। फिर यह कि जो कपड़े आप सारी उम्र नहीं पहन पाए, जैसे कि अरमानी का सूट... अपना पसन्दीदा पर्फ़्यूम... बाली के जूते... यानी कि जितना गुड़ डालेंगे, अंतिम संस्कार उतना ही आला-ग्राण्ड हो जाएगा। आपकी लाश तक को सुन्दर नारियाँ

(या महिलाओं के मामले में पुरुष) नहलाएँगे... लाश के लिए ही जन्नत का इन्तज़ाम हो गया। लाश के क्रियाक्रम का बाज़ारीकरण किस हद तक किया जा सकता है... देख कर हैरान था। ज़ाहिर है कि कहानी पकने लगी थी...

क्योंकि कहानी की शुरूआत ज़किया जी और उनके पति से हुई थी... ज़ाहिर है कि कहानी के दो चरित्र उन्हीं के व्यक्तित्व से प्रभावित हैं। अन्य दो चरित्र भी उनकी मित्र और उसके पति से मिल गये... ज़किया जी को बताया कि अब कहानी लिखने जा रहा हूँ वे हैरान थीं, 'शर्मा जी, इस चुटकुले में कहानी भला कहाँ से आएगी ?' वे मेरे भीतर चल रहे तूफ़ान से परिचित नहीं थीं। कहानी का पहला ड्राफ़्ट पूरा हो गया। ज़किया जी सुन कर सन्नाटे में रह गईं... अपनी आदत के मुताबिक़ पहले ड्राफ़्ट को एक महीने के लिए रख दिया... फिर पढ़ा... संपादन, नक्काशी... वगैरह वगैरह... करके कहानी पूरी हो गई...

यह बताना चाहूँगा कि इस कहानी का पहला पाठ भारतीय उच्चायोग के ७ वें माले की कैंटीन में लंच के समय हुआ। केवल तीन श्रोता-राकेश दुबे (भारतीय उच्चायोग के हिन्दी व संस्कृति अधिकारी), आदरणीय उषा राजे सक्सेना जी एवं श्री के.बी.एल.सक्सेना जी। कहानी सुन कर राकेश भाई ने तुरन्त टिप्पणी की, 'तेजेन्द्र जी, कहानी तो अच्छी है मगर देह की क़ीमत जैसी बात नहीं।' सक्सेना जी ने कुछ विशेष नहीं कहा। मगर उषा जी ने कहा, 'तेजेन्द्र आपने एक बेहतरीन कहानी लिख दी है। यह भारत में हलचल मचा देगी।'

इस कहानी का दूसरा पाठ बर्मिंघम की एक कहानी कार्यशाला में हुआ जिसमे अन्य लोगों के अतिरिक्त रवीन्द्र कालिया एवं ममता कालिया भी मौजूद थे। कालिया जी ने कहानी पर कुछ अलग ढंग की टिप्पणी की थी, 'मैं ऐसी कहानी नया ज्ञानोदय में नहीं छाप सकता। मुझे दिल्ली में दंगे नहीं करवाने।' ममता जी ने मेरी पीठ ठोंकते हुए कहानी की तारीफ़ की थी। काश कालिया जी ने दंगों की परवाह ना की होती।

इस कहानी का तीसरा पाठ दिल्ली के हिन्दू कॉलेज में मित्र हरीश नवल के घर हुआ। जहां हरीश नवल और प्रेम जनमेजय का कहना था कि कहानी कमज़ोर है और तेजेन्द्र की कहानी देह की क़ीमत के सामने नहीं ठहरती। मगर डॉ. प्रताप सहगल (जो कि मेरे ही कॉलेज ज़ाकिर हुसैन कॉलेज में हिन्दी के प्राध्यापक रह चुके हैं) ने कहानी को हिन्दी की महत्त्वपूर्ण कहानी बताया और कहा कि तेजेन्द्र ने हिन्दी साहित्य को एक ऐसी कहानी दे दी है जिसकी गूँज लम्बे अर्से तक सुनाई देगी।

ग़लती यह हुई कि कहानी किसी पत्रिका में प्रकाशित होने से पहले जयप्रकाश मानस के कहने पर उनकी वैबज़ीन सृजनगाथा में प्रकाशित होने को दे दी। लगा जैसे कहानी मर गई हो... कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली... एक भी नहीं....

कहानी की गूँज तब सुनाई दी जब रचना समय के संपादक एवं वरिष्ठ कथाकार हरि भटनागर ने इंडिया टुडे के एक सर्वे में क़ब्र का मुनाफ़ा को पिछले बीस वर्षों की बीस श्रेष्ठ कहानियों में शामिल किया। उन्हें इस बात के लिए मित्रों की नाराज़गी भी सहनी पड़ी। मगर अब कहानी को भारत में लोग जानने लगे थे।

ऐसे में मित्र अजित राय ने इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में क़ब्र का मुनाफ़ा का पाठ रख दिया। मंच पर राजेन्द्र यादव, अशोक वाजपेयी एवं तेजेन्द्र शर्मा। डॉ. नामवर सिंह की कुर्सी खाली रह गई क्योंकि उनकी फ़्लाइट लेट हो गई थी। श्रोताओं में कुंवर नारायण, कृष्ण बलदेव वैद, असग़र वजाहत, नासिरा शर्मा, ममता कालिया, अशोक चक्रधर, विकास कुमार राय, रूप सिंह चन्देल, प्रेम जनमेजय, सुभाष नीरव, गीताश्री, अनिल जोशी आदि बहुत से मित्र मौजूद थे। मंच से राजेन्द्र यादव एवं अशोक वाजपेयी ने कहानी की प्रशंसा की और महसूस हुआ कि कहानी ने पाठकों, साहित्यकारों एवं आलोचकों के दिलों में अपनी जगह बना ली है।

उसके बाद इस कहानी का पाठ भोपाल, वर्धा, और मुंबई जैसे शहरों में भी हुआ और कहानी पाठकों तक पहुंच गई। हाल ही में हिन्दी कहानी के मूर्धन्य आलोचक डॉ. पुष्पपाल सिंह द्वारा इस कहानी को अपने हार्पर कॉलिन्स द्वारा प्रकाशित संकलन हिन्दी की क्लासिक कहानियाँ में शामिल किए जाने से एक विशेष उपलब्धि का सा अहसास हो रहा है।

❐

क़ब्र का मुनाफ़ा

'यार कुछ न कुछ तो नया करना ही पड़ेगा। सारी ज़िन्दगी नौकरी में गँवा चुके हैं। अब और नहीं की जायेगी ये चाकरी', ख़लील ज़ैदी का चेहरा सिगरेट के धुँए के पीछे धुँधला सा दिखाई दे रहा है। नजम जमाल व्हिस्की का हलका सा घूँट भरते हुए किसी गहरी सोच में डूबा बैठा है। सवाल दोनों के दिमाग़ में एक ही है-अब आगे क्या करना है। कौन करे अब यह कुत्ता घसीटी।

ख़लील और नजम ने जीवन के तैंतीस साल अपनी कम्पनी की सेवा में होम कर दिये हैं। दोनों की यारी के किस्से बहुत पुराने हैं। ख़लील शराब नहीं पीता और नजम सिगरेट से परेशान हो जाता है। किन्तु दोनों की आदतें दोनों की दोस्ती के कभी आड़े नहीं आती हैं। ख़लील ज़ैदी एक युवा अफ़सर बन कर आया था इस कम्पनी में, किन्तु आज उसने अपनी मेहनत और अक्ल से इस कम्पनी को युरोप की अग्रणी फ़ाइनेन्शियल कम्पनियों की कतार में ला खड़ा किया है। लंदन के फ़ाइनेन्शियल सेक्टर में ख़लील की ख़ासी इज़्ज़त है।

'वैसे ख़लील भाई क्या ज़रूरी है कि कुछ किया ही जाये। इतना कमा लिया अब आराम क्यों न करें।.. बेटे, बहुएँ और पोते पोतियों के साथ बाकी दिन बिता दिये जायें तो क्या बुरा है?'

'मियाँ, दूसरे के लिये पूरी ज़िन्दगी लगा दी, कम्पनी को कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया। लेकिन...कल को मर जाएँगे तो कोई याद भी नहीं करेगा। अगर इतनी मेहनत अपने लिये की होती तो पूरे फ़ाइनेंशियल सेक्टर में हमारे नाम की माला जपी जा रही होती।'

'ख़लील भाई, मरने पर याद आया, आपने कार्पेण्डर्स पार्क के क़ब्रिस्तान में अपनी और भाभी जान की क़ब्र बुक करवा ली है या नहीं? देखिये उस क़ब्रिस्तान की लोकेशन, उसका लुक, और माहौल एकदम यूनीक है। ...अब ज़िन्दगी भर तो काम, काम और काम से फ़ुर्सत नहीं मिली, कम से कम मर कर तो चैन की ज़िन्दगी जियेंगे।'

'क्या बात कही है मियाँ, कम से कम मर कर तो चैन की ज़िन्दगी जियेंगे। भाई वाह, वो किसी शायर ने भी क्या बात कही है कि, मर के भी चैन

न पाया तो किधर जाएँगे।... यार मुझे तो कोई दिक्कत नहीं। तुम्हारी भाभी जान बहुत सोशलिस्ट किस्म की औरत हैं। पता लगते ही बिफर जाएगी। वैसे, तुमने आबिदा से बात कर ली है क्या? ये हव्वा की औलादों ने भी हम जैसे लोगों का जीना मुश्किल कर रखा है। अब देखो ना....'

नजम ने बीच में ही टोक दिया,' ख़लील भाई इनके बिना गुज़ारा भी तो नहीं। नेसेसरी ईविल हैं हमारे लिये; और फिर इस देश में तो स्टेटस के लिये भी इनकी ज़रूरत पड़ती है। इस मामले में जापान बढ़िया है। हर आदमी अपनी बीवी और बच्चे तो शहर के बाहर रखता है, सबर्ब में-और शहर वाले फ़्लैट में अपनी वर्किंग पार्टनर। सोच कर कितना अच्छा लगता है।' साफ़ पता चल रहा था कि व्हिस्की अपना रंग दिखा रही है।

'यार ये साला क़ब्रिस्तान शिया लोगों के लिये एक्सक्लूसिव नहीं हो सकता क्या? .. वर्ना मरने के बाद पता नहीं चलेगा कि पड़ोस में शिया है सुन्नी या फिर वो गुजराती टोपी वाला। यार सोच कर ही झुरझुरी महसूस होती है। मेरा तो बस चले तो एक क़ब्रिस्तान बना कर उस पर बोर्ड लगा दूँ-शिया मुसलमानों के लिये रिज़र्व्ड।'

'बात तो आपने पते की कही है ख़लील भाई। लेकिन ये अपना पाकिस्तान तो है नहीं। यहां तो शुक्र मनाइये कि गोरी सरकार ने हमारे लिये अलग से क़ब्रिस्तान बना रखा है। वर्ना हमें भी ईसाइयों के क़ब्रिस्तान में ही दफ़न होना पड़ता। आपने कार्पेण्डर्स पार्क वालों की नई स्कीम के बारे में सुना क्या? वो खाली दस पाउण्ड महीने की प्रीमियम पर आपको शान से दफ़नाने की पूरी ज़िम्मेदारी अपने पर ले रहे हैं। उनका जो नया पैम्फ़लैट निकला है उसमें पूरी डिटेल्स दे रखी हैं। लाश को नहलाना, नये कपड़े पहनाना, कफ़न का इन्तज़ाम, रॉल्स रॉयस में लाश की सवारी और क़ब्र पर संगमरमर का प्लाक-ये सब इस बीमे में शामिल है।'

'यार ये अच्छा है, कम से कम हमारे बच्चे हमें दफ़नाते वक्त अपनी जेबों की तरफ़ नहीं देखेंगे। मैं तो जब इरफ़ान की तरफ़ देखता हूँ तो बहुत मायूस हो जाता हूं देखो पैंतीस का हो गया है मगर मजाल है ज़रा भी ज़िम्मेदारी का अहसास हो।... कल कह रहा था, डैड कराची में बिज़नस करना चाहता हूं, बस एक लाख पाउण्ड का इंतज़ाम करवा दीजिये। अबे पाउण्ड क्या साले पेड़ों पर उगते हैं। नादिरा ने बिगाड़ रखा है। अपने आपको अपने सोशलिस्ट कामों में लगा रखा है। जब बच्चों को मां की परवरिश की ज़रूरत थी, ये मेमसाब कार्ल मार्क्स की समाधि पर फूल चढ़ा रही थीं। साला कार्ल मार्क्स मरा तो अंग्रेज़ों के घर में और कैपिटेलिज़्म के ख़िलाफ किताबें यहाँ लिखता रहा। इसीलिये दुनियां जहान के मार्क्सवादी दोगले होते हैं। सालों ने हमारा तो घर तबाह कर दिया। मेरा तो बच्चों के साथ कोई कम्यूनिकेशन ही नहीं बन पाया।' ख़लील ज़ैदी ने ठण्डी सांस भरी।

थोड़ी देर के लिये सन्नाटा छा गया है। मौत का सा सन्नाटा। हलका सा सिगरेट का कश, छत की तरफ़ उठता धुआँ, शराब का एक हलका सा घूँट गले में उतरता, थोड़ी काजू के दाँतों से काटने की आवाज़। नजम से रहा नहीं गया, 'ख़लील भाई, उनकी एक बात बहुत पसन्द आई है। उनका कहना है कि अगर आप किसी एक्सीडेन्ट या हादसे का शिकार हो जाएँ, जैसे आग से जल मरें तो वो लाश का ऐसा मेकअप करेंगे कि लाश एकदम जवान और ख़ूबसूरत दिखाई दे। अब लोग तो लाश की आख़री शक्ल ही याद रखेंगे न। नादिरा भाभी और आबिदा को यही आइडिया बेचते हैं, कि जब वो मरेंगी तो दुल्हन की तरह सजाई जाएँगी।'

'यार नजम, एक काम करते हैं, बुक करवा देते हैं दो दो क़ब्रें हमें नादिरा या आबिदा को अभी बताने की ज़रूरत क्या है। जब ज़रूरत पड़ेगी तो बता देंगे।'

'क्या बात कही है भाई जान, मज़ा आ गया! लेकिन, अगर उनको ज़रूरत पड़ गई तो बताएँगे कैसे? बताने के लिये उनको दोबारा ज़िन्दा करवाना पड़ेगा।.. हा...हा..हा...हा.. '

'सुनो, उनकी कोई स्कीम नहीं है जैसे बाई वन गैट वन फ्री या बाई टू गैट वन फ्री ? अगर ऐसा हो तो हम अपने अपने बेटों को भी स्कीम में शामिल कर सकते हैं। अल्लाह ने हम दोनों को एक एक ही तो बेटा दिया है।'

'भाई जान अगर नादिरा भाभी ने सुन लिया तो खट से कहेंगी, 'क्यों जी हमारी बेटियों ने क्या कुसूर किया है?'

'यार तुम डरावनी बातें करने से बाज़ नहीं आओगे। मालूम है, वो तो समीरा की शादी सुन्नियों में करने को तैयार हो गई थी। कमाल की बात ये है कि उसे शिया, सुन्नी, आग़ाख़ानी, बोरी सभी एक समान लगते हैं। कहती हैं, सभी मुसलमान हैं और अल्लाह के बंदे हैं। उसकी इंडिया की पढ़ाई अभी तक उसके दिमाग़ से निकली नहीं है।'

'भाई जान अब इंडिया की पढ़ाई इतनी खराब भी नहीं होती। पढ़े तो मैं और आबिदा भी वहीं से हैं। दरअसल मैं तो गोआ में कुछ काम करने के बारे में भी सोच रहा हूँ वहाँ अगर कोई टूरिस्ट रिज़ॉर्ट खोल लूँ तो मज़ा आ जायेगा...! भाई, सच कहूँ, मुझे अब भी अपना घर मेरठ ही लगता है। चालीस साल हो गये हिन्दुस्तान छोड़े, लेकिन लाहौर अभी तक अपना नहीं लगता। ..यह जो मुहाजिर का ठप्पा चेहरे पर लगा है, उससे लगता है कि हम लाहौर में ठीक वैसे ही हैं, जैसे हिन्दुस्तान में... अछूत।'

'मियाँ चढ़ गई है तुम्हें। पागलों की सी बातें करने लगे हो। याद रखो, हमारा वतन पाकिस्तान है। बस। यह हिन्दू धर्म एक डीजेनेरेट, वल्गर और कर्रप्ट कल्चर है। हिन्दुओं या हिन्दुस्तान की बढ़ाई पूरी तरहे से एन्टी-इस्लामिक है। फ़िल्में देखी हैं इनकी, वल्गैरिटी परसॉनीफ़ाइड। मेरा तो बस चले तो सारे हिन्दुओं को एक कतार में खड़ा करके गोली से उड़ा दूँ।'

नजम के खर्राटे बता रहे थे कि उसे ख़लील ज़ैदी की बातों में कोई रूचि नहीं है। वो शायद सपनों के उड़नखटोले पर बैठ कर मेरठ पहुँच गया था। मेरठ से दिल्ली तक की बस का सफ़र, रेलगाड़ी की यात्रा और आबिदा से पहली मुलाक़ात, पहली मुहब्बत, फिर शादी। पूरी ज़िन्दगी जैसे किसी रेल की पटरी पर चलती हुई महसूस हो रही थी।

महसूस आबिदा भी कर रही थी और नादिरा भी। दोनों महसूस करती थीं कि उनके पतियों के पास उनके लिए कोई समय नहीं है। उनके पति बस पैसा देते हैं घर का ख़र्चा चलाने के लिए, लेकिन उसका भी हिसाब किताब ऐसे रखा जाता है जैसे कंपनी के किसी क्लर्क से खर्चे का हिसाब पूछा जा रहा हो। दोनों को कभी यह महसूस नहीं हुआ कि वे अपने अपने घर की मालकिनें हैं। उन्हें

समय समय पर यह याद दिला दिया जाता था कि घर के मालिक के हुक्म के बिना वे एक कदम भी नहीं चल सकतीं। आबिदा तो अपनी नादिरा आपा के सामने अपना रोना रो लेती थी लेकिन नादिरा हर बात केवल अपने सीने में दबाये रखतीं।

नादिरा ने बहुत मेहनत से अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन पैदा किया था। उसने एक स्थायी हँसी का भाव अपने चेहरे पर चढ़ा लिया था। पति की डाँट फटकार, गाली गलौच यहाँ तक कि कभी कभार की मार पीट का भी उस पर कोई असर दिखाई नहीं देता था। कभी कभी तो ख़लील ज़ैदी उसकी मुस्कुराहट से परेशान हो जाते, 'आख़िर आप हर वक्त मुस्कुराती क्यों रहती हैं? यह हर वक्त का दाँत निकालना सीखा कहाँ से है आपने। हमारी बात का कोई असर ही नहीं होता आप पर।'

नादिरा सोचती रह जाती है कि अगर वो ग़मगीन चेहरा बनाये रखे तो भी उसके पति को परेशानी हो जाती है। अगर वो मुस्कुराए तो उन्हें लगता है कि ज़रूर कहीं कोई गड़बड़ है अन्यथा जो व्यवहार वे उसे दे रहे हैं, उसके बाद तो मुस्कुराहट जीवन से ग़ायब ही हो जानी चाहिये।

नादिरा ने एक बार नौकरी करने की पेशकश भी की थी। लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए. पास है वह। लेकिन ख़लील ज़ैदी को नादिरा की नौकरी का विचार इतना घटिया लगा कि बात, बहस में बदली और नादिरा के चेहरे पर उँगलियों के निशान बनाने के बाद ही रुकी। इसका नतीजा यह हुआ कि नादिरा ने पाकिस्तान से आई उन लड़कियों के लिये लड़ने का बीड़ा उठा लिया है जो अपने पतियों एवं सास ससुर के व्यवहार से पीड़ित हैं।

ख़लील को इसमें भी शिकायत रहती है, 'आपका तो हर खेल ही निराला है! मैडम कभी कोई ऐसा काम भी किया कीजिए जिससे घर में कुछ आए। आपको भला क्या लेना कमाई धमाई से। आपको तो बस एक मज़दूर मिला हुआ है, वो करेगा मेहनत, कमाएगा और आप उड़ाइए मज़े।' अब नादिरा प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करती। जैसे ही ख़लील शुरू होता है, वो कमरा छोड़ कर बाहर निकल जाती है। वह समझ गई है कि ख़लील को बीमारी है-कंट्रोल करने की बीमारी। वह हर चीज़, हर स्थिति, हर व्यक्ति को कंट्रोल कर लेना चाहता है-कंट्रोल फ्रीक। यही दफ़्तर में भी करता है और यही घर में।

अपने अपने घरों में आबिदा और नादिरा बैठी हैं। आबिदा टी.वी. पर फ़िल्म देख रही है-लगान। वह आमिर ख़ान की पक्की फ़ैन है। उसकी हर फ़िल्म देखती है और घंटों उस पर बातचीत भी कर सकती है। पाकिस्तानी फ़िल्में उसे बिल्कुल अच्छी नहीं लगतीं। बहुत लाउड लगती हैं। लाउड तो उसे अपना पति भी मालूम होता है लेकिन इसका कोई इलाज नहीं है उसके पास। उसे विश्वास है कि नादिरा आपा कभी ग़लत हो ही नहीं सकती हैं। वह उनकी हर बात पत्थर की लकीर मानती है।

लकीर तो नादिरा ने भी लगा ली है अपने और ख़लील के बीच। अब वह ख़लील के किसी काम मे दख़ल नहीं देती। लेकिन ख़लील की समस्या यह है कि नादिरा दिन प्रतिदिन ख़ुदमुख़्तार होती जा रही है। जब से ख़लील ज़ैदी ने घर का सारा ख़र्चा अपने हाथ में लिया है, तब से वो घर का सौदा सुलुफ़ भी नहीं लाती। ख़लील कुढ़ता रहता है लेकिन समझ नहीं पाता कि नादिरा के अहम् को कैसे तोड़े।

फट पड़ा था ख़लील, 'आप तो बस हिन्दू हो गई हैं। आप सिंदूर लगा लीजिए, बिन्दी माथे पर चढ़ा लीजिए और आर्य समाज में जा कर शुद्धि करवा लीजिए।... लेकिन याद रखियेगा, हम आपको तलाक दे देंगे।' सन्नाटा छा गया था पूरी महफ़िल में।

नादिरा ख़लील के एजेण्डे से पूरी तरह वाक़िफ़ है, जानती है कि ज़मींदार ख़ून बरदाश्त नहीं कर सकता कि उसकी रियाया उसके सामने सिर उठा कर बात कर सके। परवेज़ अहमद के घर हुये बार-बे-क्यू में तो बदतमीज़ी की हद कर दी थी ख़लील ने। बात चल निकली थी प्रजातन्त्र पर, कि पाकिस्तान में ते छद्म डेमोक्रेसी है। परवेज़ स्वयं इसी विचारधारा के व्यक्ति हैं। उस पर नादिरा ने कहीं भारत को विश्व का सबसे बड़ा प्रजातंत्र कह दिया। ख़लील का पारा चढ़ गया। 'रहने दीजिए, भला आप क्या समझेंगी' बस यही कह कर एकदम चुप हो गया। नादिरा ने स्थिति को समझने में ग़लती कर दी और कहती गई, 'परवेज़ भाई मैं क्या ग़लत कह रही हूँ भारत का प्रधानमंत्री सिख, वहाँ का राष्ट्रपति मुसलमान और कांग्रेस की मुखिया ईसाई। क्या दुनिया के किसी भी और देश में ऐसा हो सकता है? '

फट पड़ा था ख़लील, 'आप तो बस हिन्दू हो गई हैं। आप सिंदूर लगा लीजिए, बिन्दी माथे पर चढ़ा लीजिए और आर्य समाज में जा कर शुद्धि करवा लीजिए।... लेकिन याद रखियेगा, हम आपको तलाक दे देंगे।' सन्नाटा छा गया था पूरी महफ़िल में। नादिरा भी सन्न रह गयी। उसने जिस निगाह से ख़लील को देखा अपने इस जीवन में ख़लील उसकी परिभाषा के लिये शब्द नहीं खोज पायेगा। फिर नादिरा ने एक झटका दिया अपने सिर को और चिपका ली वही मुस्कुराहट अपने चेहरे पर। ख़लील तिलमिलाया, परेशान हुआ और अंततः चकरा कर कुर्सी पर बैठ गया। महफ़िल की मुर्दनी ख़त्म नहीं हो पाई। परवेज़ शर्मिंदा सा नादिरा भाभी को देख रहा था। उसे अफ़सोस था कि उसने बात शुरू ही क्यों की। महफ़िल में क़ब्रिस्तान की सी चुप्पी छा गई थी।

घर में भी क़ब्रिस्तान पहुँच गया। नादिरा आम तौर पर ख़लील के पत्र नहीं खोलती। एक बार खोलने का ख़मियाज़ा भुगत चुकी है। लेकिन इस पत्र पर पता लिखा था श्री एवं श्रीमती ख़लील ज़ैदी। उसे लगा ज़रूर कोई निमन्त्रण पत्र ही होगा। पत्र खोला तो हैरान रह गई। अपने घर से इतनी दूर किसी क़ब्रिस्तान में इतनी पहले अपने लिये क़ब्र आरक्षित करवाने का औचित्य समझ नहीं पाई। क्या उसका घर एक ज़िन्दा क़ब्रिस्तान नहीं? इस घर में ख़लील क्या नरक का जल्लाद नहीं। घबरा

भी गई कि मरने के बाद भी ख़लील की बग़ल में ही रहना होगा। क्या मरने के बाद भी चैन नहीं मिलेगा?

चैन तो उसे दिन भर भी नहीं मिला। पाकिस्तान से आई अनीसा ने आत्महत्या का प्रयास किया था। रॉयल जनरल हस्पताल में दाख़ल थी। उसे देखने जाना था, पुलिस से बातचीत करनी थी। अनीसा को क़ब्र में जाने से रोकना था। अनीसा को दिलासा देती, पुलिस से बातचीत करती, सब-वे से सैण्डविच लेकर चलती कार में खाती वह घर वापिस पहुंची।

घर की रसोई में खटपट की आवाज़ें सुनाई दे रही थीं। यानि कि अब्दुल खाना बनाने आ चुका था। रात का भोजन अब्दुल ही बनाता है। ख़लील के लिये आज ख़ास तौर पर कबाब और मटन चॉप बन रहीं थीं। नादिरा ने जब से योग शुरू किया है, शाकाहारी हो गई है। उपर कमरे में जा कर कपड़े बदल कर नादिरा अब्दुल के पास रसोई में आ गई है। अब्दुल की ख़ासियत है कि जब तक उससे कुछ पूछा ना जाये चुपचाप काम करता रहता है। बस हल्की सी मुस्कुराहट उसके व्यक्तित्व का एक हिस्सा है। आज भी काम किये जा रहा है। नादिरा ने पूछ ही लिया, 'अब्दुल तुम्हारी बीवी की तबीयत अब कैसी है। और बेटी ठीक है न।'

'अल्लाह का शुक्र है बाजी। माँ बेटी दोनों ठीक हैं।' फिर चुप्पी। नादिरा को कई बार हैरानी भी होती है कि अब्दुल के पास बात करने के लिये कुछ भी नहीं होता। अच्छा भी है। दो घरों में काम करता है। कभी इधर की बात उधर नहीं करता।

ख़लील घर आ गया है। अब शरीर थक जाता है। उसे इस बात का गर्व है कि उसने अपने परिवार को ज़माने भर की सुविधाएँ मुहैय्या करवाई हैं। नादिरा के लिये बी.एम.डब्लयू. कार है तो बेटे इरफ़ान के लिये टोयोटा स्पोर्टस। हैम्पस्टेड जैसे पॉश इलाके में महलनुमा घर है। घर के बाहर दूर तक फैली हरियाली और पहाड़ी। बिल्कुल पिक्चर पोस्टकार्ड जैसा घर दिया है नादिरा को। वह चाहता है कि नादिरा इसके लिये उसकी कृतज्ञ रहे। नादिरा तो एक बेडरूम के फ़्लैट में भी ख़ुश रह सकती है। ख़ुशी को रहने के लिये महलनुमा घर की ज़रूरत नहीं पड़ती। सात बेडरूम का घर अगर एक मकबरे का आभास दे तो ख़ुशी तो घर के भीतर घुसने का साहस भी नहीं कर पायेगी। दरवाज़े के बाहर ही खड़ी रह जायेगी।

'ख़लील ये आपने अभी से क़ब्रें क्यों बुक करवा ली हैं? और फिर घर से इतनी दूर क्यों? कार्पेण्डर्स पार्क तक तो हमारी लाश को ले जाने में भी ख़ासी मुश्किल होगी।'

'भई, एक बार लाश रॉल्स राइस में रखी गई तो हैम्पस्टैड क्या और कार्पेण्डर्स पार्क क्या। यह क़ब्रिस्तान ज़रा पॉश किस्म का है। फ़ाइनेंशियल सेक्टर के हमारे ज़्यादातर लोगों ने वहीं दफ़न होने का फ़ैसला लिया है। कम से कम मरने के बाद अपने स्टेटस के लोगों के साथ रहेंगे।'

'ख़लील, आप ज़िन्दगी भर तो इन्सान को पैसों से तौलते रहे। क्या मरने के बाद भी आप नहीं बदलेंगे। मरने के बाद तो शरीर मिट्टी ही है, फिर उस मिट्टी का नाम चाहे अब्दुल हो नादिरा या फिर ख़लील।'

'देखो नादिरा अब शुरू मत हो जाना। तुम अपना समाजवाद अपने पास रखो। मैं उसमें दखल नहीं देता तुम इसमें दखल मत दो। मैं इन्तज़ाम कर रहा हूं कि हम दोनों के मरने के बाद हमारे बच्चों पर हमें दफ़नाने का कोई बोझ न पड़े। सब काम बाहर बाहर से ही हो जाए।'

'आप बेशक करिये इन्तज़ाम लेकिन उसमें भी बुर्जुआ सोच क्यों? हमारे इलाके में भी तो क़ब्रिस्तान है, हम हो जायेंगे वहाँ दफ़न। मरने के बाद क्या फ़र्क पड़ता है कि हम कहाँ हैं।'

'देखो मैं नहीं चाहता कि मरने के बाद हम किसी ख़ानसामा, मोची, या प्लंबर के साथ पड़े रहें। नजम ने भी वहीं क़ब्रें बुक करवाई हैं। दरअसल मुझे तो बताया ही उसी ने। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी ज़िन्दगी में तो तुमको बैस्ट चीज़ें मुहैय्या करवाऊँ ही, मरने के बाद भी बेहतरीन ज़िन्दगी दूँ भई अपने जैसे लोगों के बीच दफ़न होने का सुख और ही है।'

'ख़लील अपने जैसे क्यों? अपने क्यों नहीं? आप पाकिस्तान में क्यों नहीं दफ़न होना चाहते? वहाँ आप अपनों के करीब रहेंगे। क्या ज़्यादा ख़ुशी नहीं हासिल होगी?'

'आप हमें यह उल्टा पाठ न पढ़ाएँ इस तरह तो आप हमसे कहेंगी कि मैं पाकिस्तान में दफ़न हो जाऊँ अपने लोगों के पास और आप मरने के बाद पहुँच जाएँ भारत अपने लोगों के क़ब्रिस्तान में। यह चाल मेरे साथ नहीं चल सकती हैं आप। हम आपकी सोच से अच्छी तरह वाक़िफ़ है बेग़म।'

'ख़लील हम कहे देते हैं, हम किसी फ़ाइव स्टार क़ब्रिस्तान में न तो ख़ुद को दफ़न करवाएँगे और न ही आपको होने देंगे। आप इस तरह की सोच से बाहर निकलिए।'

'बेग़म कुरान-ए-पाक भी इस तरह का कोई फ़तवा नहीं देती कि क़ब्रिस्तान किस तरह का हो। वहाँ भी सिर्फ़ दफ़न करने की बात है।'

'दिक्कत तो यही है ख़लील, यह जो तीनों आसमानी किताबों वाले मज़हब हैं वो पूरी ज़मीन को क़ब्रिस्तान बनाने पर आमादा हैं। एक दिन पूरी ज़मीन कम पड़ जाएगी इन तीनों मज़हबों के मरने वालों के लिए।'

'नादिरा जी, अब आप हिन्दुओं की तरह मुतासिब बातें करने लगी हैं। समझती तो आप कुछ हैं नहीं आप तो यह भी कह देंगी की हम मुसलमानों को भी हिन्दुओं की तरह चिता में जलाना चाहिये।' ख़लील जब ग़ुस्सा रोकने का प्रयास करता है, तो नादिरा के नाम के साथ जी लगा देता है।

'हर्ज़ ही क्या है इसमें? कितना साफ़ सुथरा सिस्टम है। ज़मीन भी बची रहती है, ख़ाक मिट्टी में भी मिल जाती है।'

'देखिये हमें भूख लगी है। बाकी बात कल कर लेंगे।'

कल कभी आता भी तो नहीं है। फिर आज हो जाता है। किन्तु नादिरा ने तय कर लिया है कि इस बात को क़ब्र में नहीं दफ़न होने देगी। आबिदा को फ़ोन करती है, 'आबिदा, कैसी हो?'

'अरे नादिरा आपा कैसी हैं आप? आपको पता है आमिर ख़ान ने दूसरी शादी कर ली है। और सैफ़ अली ख़ान ने भी अपनी पहली बीवी को तलाक़ दे दिया है। इन दिनों बॉलीवुड में मज़ेदार ख़बरें मिल रही हैं। आपने शाहरूख़ की नई फ़िल्म देखी क्या? देवदास क्या फ़िल्म है!'

'आबिदा, तुम फ़िल्मों की दुनिया से बाहर आकर हक़ीकत को भी कभी देखा करो। तुम्हें पता है कि ख़लील और नजम कार्पेण्डर्स पार्क के

क़ब्रिस्तान में क़ब्रें बुक करवा रहे हैं।'

'आपा हमें क्या फ़र्क पड़ता है? एक के बदले चार चार बुक करें और मरने के बाद चारों में रहें। आपा जब ज़िन्दा होते हुए इनको सात सात बेडरूम के घर चाहिए तो मरने के बाद क्या खाली दो गज़ ज़मीन काफ़ी होगी इनके लिए। मैं तो इनके मामलों में दख़ल ही नहीं देती। हमारा ध्यान रखें बस।.... आप क्या समझती हैं कि मैं नहीं जानती कि नजम पिछले चार साल से बुश्रा के साथ वक्त बिताते हैं। आप क्या समझती हैं कि बंद कमरे में दोनों कुरान शरीफ़ की आयतें पढ़ रहे होते हैं? पिछले दो सालों से हम दोनों भाई बहन की तरह जी रहे हैं। अगर हिन्दू होती तो अब तक नजम को राखी बाँध चुकी होती।'

धक्क सी रह गई नादिरा। उसने तो कभी सोचा ही नहीं कि पिछले पाँच वर्षों से एक ही बिस्तर पर सोते हुए भी वह और ख़लील हम-बिस्तर नहीं हुए। दोनों के सपने भी अलग अलग होते हैं और सपनों की ज़बान भी। एक ही बिस्तर पर दो अलग अलग जहान होते हैं। तो क्या ख़लील भी कहीं.... वैसे उसे भी क्या फ़र्क पड़ता है। 'आबिदा, मैं ज़ाती रिश्तों की बात नहीं कर रही। मैं समाज को ले कर परेशान हूं क्या यह ठीक है जो यह दोनों कर रहे हैं?

'आपा, मुझे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। मेरे लिए यह बातें बेकार सी हैं। जब मर ही गये तो क्या फ़र्क पड़ता है कि मिट्टी कहाँ दफ़न हुई। इस बात को लेकर मैं अपना आज क्यों ख़राब करूँ? हाँ अगर नजम मुझ से पहले मर गये, तो मैं उनको दुनिया के सबसे ग़रीब क़ब्रिस्तान में ले जाकर दफ़न करूँगी और क़ब्र पर कोई कुतबा तक नहीं लगवाऊँगी। गुमनाम क़ब्र होगी उसकी। अगर मैं पहले मर गई तो फिर बचा ही क्या?'

ठीक कहा आबिदा ने कि बचा ही क्या। आज ज़िन्दा है तो भी क्या बचा है। साल भर बीत जाने के बाद भी क्या कर पाई है नादिरा। आदमी दोनों ज़िन्दा हैं लेकिन क़ब्रें आरक्षित हैं दोनों के लिए। ख़लील और नजम आज भी इसी सोच में डूबे हैं कि नया धन्धा क्या शुरू किया जाए। क़ब्रें आरक्षित करने के बाद वो दोनों इस विषय को भूल भी गए हैं।

लेकिन कार्पेण्डर्स पार्क उनको नहीं भूला है। आज फिर एक चिट्ठी आई है। मुद्रा स्फीति के साथ साथ मासिक किश्त में पैसे बढ़ाने की चिट्ठी ने नादिरा का ख़ून फिर खौला दिया है। ख़लील और नजम आज ड्राइंग रूम में योजना बना रहे हैं। पूरे लन्दन में एक नजम ही है जो ख़लील के घर शराब पी सकता है। और एक ख़लील ही है जो नजम के घर सिगरेट पी सकता है। लेकिन दोनो अपना अपना नशा ख़ुद साथ लाते हैं-सिगरेट भी और शराब भी।

' ख़लील भाई, देखिये मैं पाकिस्तान में कोई धन्धा नहीं करूँगा। एक तो आबिदा वहाँ जाएगी नहीं, दूसरे अब तो बुश्रा का भी सोचना पड़ता है, और तीसरा यह कि अपना तो साला पूरा मुल्क ही करप्शन का मारा हुआ है। इतनी रिश्वत देनी पड़ती है कि दिल करता है सामने वाले को चार जूते लगा दूँ, ऊपर से नीचे तक सब करप्ट। अगर हम दोनों को मिल कर कोई काम शुरू करना है तो यहीं इंगलैण्ड में रह कर करना होगा। वर्ना आप कराची और हम गोआ। मैं तो आजकल सपनों में वहीं गोआ में रहता हूँ क्या जगह है ख़लील भाई, क्या लोग हैं, कितना सेफ़ फ़ील करता है आदमी वहाँ।'

'मियाँ तुमको चढ़ बहुत जल्दी जाती है। अभी तय कुछ हुआ नहीं तुम्हारे अन्दर का हिन्दुस्तानी लगा चहकने। तुम साले हिन्दुस्तानी लोग कभी सुधर नहीं सकते। अन्दर से तुम सब के सब मुत्तासिब होते हो, चाहे मज़हब तुम्हारा कोई भी हो। तुम्हारा कुछ नहीं हो सकता।'

'तो फिर आप ही कुछ सोचिये ना। आप तो बहुत ब्रॉड-माइन्डेड हैं।'

'वही तो कर रहा हूँ। देखो एक बात सुनो..'

नादिरा भुनभुनाती हुई ड्राइंग रूम में दाख़िल होती है,' ख़लील, मैने आपसे कितनी बार कहा है कि यह क़ब्रें कैंसिल करवा दीजिए। आप मेरी इतनी छोटी सी बात नहीं मान सकते?'

'अरे भाभी, आपको ख़लील भाई ने बताया नहीं कि उनकी स्कीम की ख़ास बात क्या है? उनका कहना है कि अगर आप किसी एक्सीडेन्ट या हादसे का शिकार हो जाएँ, जैसे आग से जल मरें तो वो लाश का ऐसा मेकअप करेंगे कि लाश एकदम जवान और ख़ूबसूरत दिखाई दे। अब आप ही सोचिए ऐसी कौन सी ख़ातून है जो मरने के बाद ख़ूबसूरत और जवान न दिखना चाहेगी?'

'आप तो हमसे बात भी न करें नजम भाई। आपने ही यह कीड़ा इनके दिमाग़ में डाला है। हम आपको कभी माफ़ नहीं करेंगे।...'

'भाभी बात केवल इतनी ही नहीं है... उनका दावा है कि जो जो कपड़े, परफ़्यूम मेकअप आप अपने जीवन में कभी पहन नहीं पाए वे सब मुर्दे को पहनाए जाएँगे। अगर इन्स्टॉलमेण्ट थोड़ी सी बढ़ा दी जाए तो अरमानी का सूट, रौलेक्स की घड़ी, बाली के जूते... ये सब पहनाने का इन्तज़ाम भी है।... बस जितना गुड़ डालेंगी...मुर्दा उतना ही आला-ग्रैण्ड.... '

' नजम भाई आप अब एक लफ़्ज़ और नहीं बोलेंगे.... ख़लील आप अभी फ़ोन करते हैं या नहीं। वर्ना मैं ख़ुद ही क़ब्रिस्तान को फ़ोन करके क़ब्रें कैंसिल करवाती हूँ।'

'यार तुम समझती नहीं हो नादिरा, कैंसिलेशन चार्ज अलग से लगेंगे। क्यों नुक़सान करवाती हो?'

'तो ठीक है मैं ख़ुद ही फ़ोन करती हूँ और पता करती हूँ कि आपका कितना नुक़सान होता है। उसकी भरपाई मैं ख़ुद ही कर दूँगी।'

नादिरा गुस्से में नम्बर मिला रही है। सिगरेट का धुँआ कमरे में एक डरावना सा माहौल पैदा कर रहा है। शराब की महक रही सही कसर भी पूरी कर रही है। फ़ोन लग गया है। नादिरा अपना रेफ़रेन्स नम्बर दे कर बात कर रही है। ख़लील और नजम परेशान और बेबस से लग रहे हैं।

नादिरा थैंक्स कह कर फ़ोन रख देती है।'लीजिए ख़लील, हमने पता भी कर लिया है और कैन्सिलेशन का आर्डर भी दे दिया है। पता है उन्होंने क्या कहा? उनका कहना है कि आपने साढ़े तीन सौ पाउण्ड एक क़ब्र के लिये जमा करवाए हैं। यानी कि दो क़ब्रों के लिये सात सौ पाउण्ड। और अब इन्फ़लेशन की वजह से उन क़ब्रों की कीमत हो गई है ग्यारह सौ पाउण्ड यानी कि आपको हुआ है कुल चार सौ पाउण्ड का फ़ायदा।'

ख़लील ने कहा, 'क्या चार सौ पाउण्ड का फ़ायदा, बस साल भर में! ' उसने नजम की तरफ़ देखा। नजम की आँखों में भी वही चमक थी।

नया धन्धा मिल गया था !

❐

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
पुस्तकें

पुस्तकें मिलीं

❒उन्मेष ❒सपनों का साहिल ❒न भेज्यो बिदेस ❒मन के कोने से
❒मेरे भीतर महक रहा है ❒वैश्विक रचनाकारः कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ

उन्मेष
लेखिका : मानोशी
प्रकाशक : अंजुमन प्रकाशन
२, आर्य कन्या चौराहा मुट्ठीगंज
इलाहाबाद-२११००३
उत्तर प्रदेश, भारत
आवरण चित्र : अरविन्द नारले
संस्करणः प्रथम, २०१३
मूल्यः भारत २०० रुपए

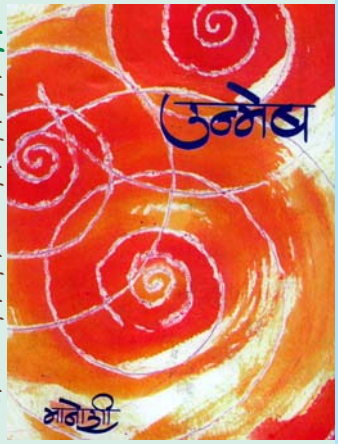

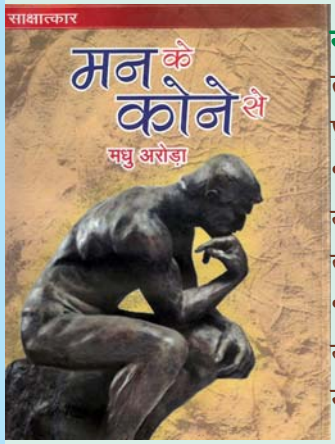

मन के कोने से
लेखिका : मधु अरोड़ा
प्रकाशक : यश पब्लिकेशंस
१ / १०७५३, गली नंबर ३,
सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा,
कीर्ति मंदिर के पास, दिल्ली-
११००३२
संस्करणः प्रथम, २०१३
मूल्यः ५९५ रुपए/

सपनों का साहिल
लेखिका : लावण्या दीपक शाह
प्रकाशक : "कविता"
भारती नगर,
मैरिस रोड,
अलीगढ़-२०२००१
संस्करणः
प्रथम, २०१२
मूल्यः २०० रुपए

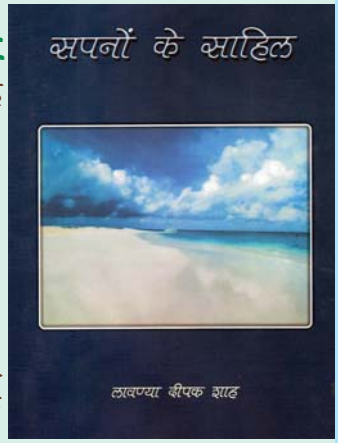

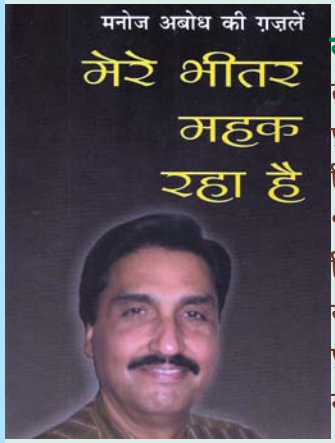

मेरे भीतर महक रहा है
लेखक : मनोज अबोध
प्रकाशक :
हिन्दी साहित्य निकेतन
१६, साहित्य विहार,
बिजनौर (उ. प्र.)
संस्करणः
प्रथम, २०१३
मूल्यः १५० रुपए

न भेज्यो बिदेस (उपन्यास)
लेखिका : सुदर्शन प्रियदर्शिनी
प्रकाशक : नमन प्रकाशन
४२३१ / १, अंसारी रोड
दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२
संस्करणः प्रथम, २०१३
मूल्यः २०० रुपए
सम्पर्क : दूरभाष-२३२४७००३

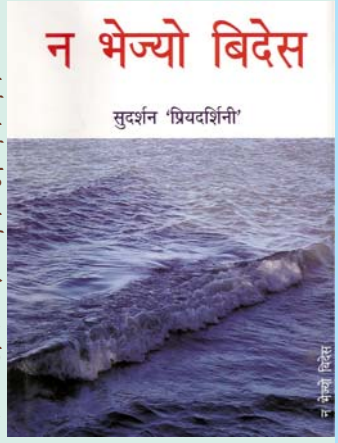

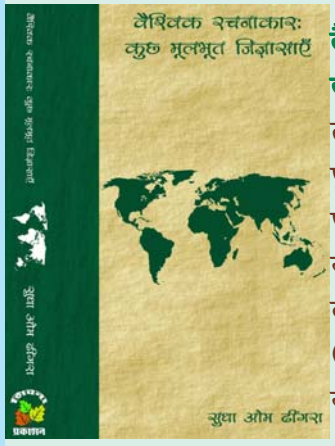

वैश्विक रचनाकारः
कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ
लेखिका : सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन
पी.सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट
बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१
(म. प्र.), संस्करणः २०१३
सम्पर्क : 07562-405545

विशेषांक
नई सदी का कथा समय
काव्यशाला

चित्र काव्यशाला

चित्रकार : अरविंद नारले

क्या हुआ!

हे मुसाफिर
क्यों देखता है मुझे
यूँ अटूक
अपने दाड़ी पर बालों
का यूँ न कर गुमान
मेरे भी कभी दिन थे
यूँ मैं सजा था कभी
आज पासा पलट गया
तो क्या
दुनिया को दिखा दूँगा
अपनी पुरानी तस्वीरें
सच ही कह रहा हूँ
कर लें यकीन यूँ ही
आज इस छोर खड़ा हूँ
तो क्या हुआ!

अदिति मजूमदार
(अमेरिका)

जोगी

ऐनक लगाए सजी है मंडी,
अन्जाने शहर में,
बिखर रही शान्ति।
कोई गंजा,
तो सर पर किसी के टोपी,
घड़ी दो बिता,
जाना है दूर नगरी।
कोई अकेला,
तो संग किसी के साथी
कोई मदमस्त,
तो कोई गंभीर।
पग संग धरे सभी,
पर साथ ना कोई,
मानस जग ऐसा,
विरला पार लगे जोगी।

अनिल पुरोहित
(टोरंटो) कैनेडा

इस चित्र को देखकर आपके मन में कोई रचनात्मक पंक्तियाँ उमड़-घुमड़ रही हैं, तो देर किस बात की, तुरन्त ही काग़ज़ क़लम उठाइये और लिखिये। फिर हमें भेज दीजिये । हमारा पता है :

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1,
e-mail : hindichetna@yahoo.ca

विलोम चित्र काव्यशाला

चित्रकार : अरविंद नारले कवि: सुरेन्द्र पाठक

इस चित्र में अब देखिये, सजे हुए दो घोड़े,
थके-थके से, भूखे प्यासे, एक दूजे से सर जोड़े,
शायद बहुत दूर से आए, उतरे इन पर से अभी सवार,
अब इनका हल्का बोझ हुआ, बहुत देर तक उठाया भार,
यही सोच रहे हैं विचारे, कब उतरे मुँह से लगाम,
वो भी घास खा ले थोड़ा, लोट-पोट कर करे आराम,
इनके बस की बात नहीं है, ये तो हैं मालिक के अधीन,
वैसे ही करना पड़ता, बने हैं उसकी ज़िंदा मशीन,
जब दे घास तब खाए घास, जब दे पानी पिए पानी,
अपने मालिक की सेवा करते, बीत रही इनकी ज़िन्दगानी।

चित्र को उल्टा करके देखें

बिना उत्तर करके देखो, खड़े हुए हैं घोड़ों के सवार,
थक गये थे सवारी करते, आराम करें यह किया विचार।
भूख लगी थी आगा जगाई, रख दिए उपर माँस के टुकड़े,
झुककर उनको ताक रहे हैं, खड़े हुए उखड़े-उखड़े,
सुलगा रहे हैं अपने पाइप, दोनों ने सुस्ताने को,
कुछ तो चाहिए था, जब तक मिले न खाने को,
दोनों ने पहना कपड़ा चश्मा, सरपर पहनी हुई है टोपी,
वेश-भूषा से देखा लगता, वन में घूम रहे दो फौजी,
एक उग्र में नवयुवक लगता, दूजा बड़ी उमर का व्यक्ति,
आराम करने को ठहर गये हैं, मंजिल अभी दूर लगती,
भूख लगी तो भूल गये हैं, घोड़ों को देना कुछ आराम,
उनकी पीठ से जीन उतारें, खोलें, उनके, मुँह से लगाम,
घोड़े बेजुबान क्या बोलें । सर हिला के करें इशारे,
मालिक के रहम करम पर, भूखे प्यासे खड़े बेचारे ।

प्रेम के विविध आयामों की रोमांचकारी अभिव्यक्ति है एन-काउन्टर ए लव स्टोरी: राजेन्द्र यादव

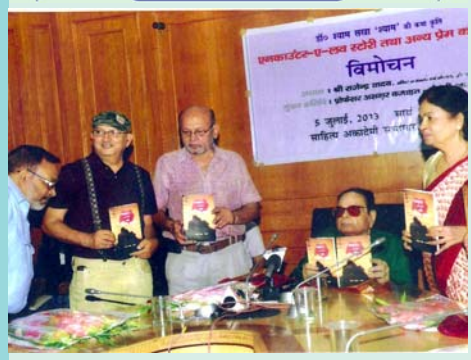

डॉ. श्याम सखा की कृति एन काउन्टर-ए-लव स्टोरी व अन्य प्रेम कहानियाँ का लोकार्पण वरिष्ठ कथाकार राजेन्द्र यादव द्वारा केन्द्रीय साहित्य अकादमी, नई दिल्ली के सभागार में किया गया। वरिष्ठ चिंतक असगर वजाहत एवं सुविख्यात कथाकार मैत्रयी पुष्पा इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में पधारे। विषय प्रवर्तन सुपरिचित कथाकार डॉ. अजय नावरिया द्वारा किया गया। अपने अध्यक्षीय सम्बोधन में राजेन्द्र यादव ने डॉ. श्याम सखा की इस कथा की कृति को प्रेम के विविध आयामों की रोमांचकारी अभिव्यक्ति कहा। उन्होंने कहा कि एक लम्बे समय के बाद हिन्दी कथा साहित्य में अनूठी प्रेम कहानियों ने दस्तक दी। असगर वजाहत ने कहा कि डॉ. श्याम सखा के इस कथा संग्रह में गज़ब की पठनीयता एवं सम्प्रेषणीयता है। उन्होंने कहा कि डॉ. श्याम की कथा शैली एक विलक्ष्ण बिम्ब विधान एवं डायनेमिक चित्रात्मकता लिए हुए है। सुपरिचित कथाकार मैत्रेयी पुष्पा ने कहा कि एक लम्बे अरसे बाद एक ऐसी पुस्तक प्राप्त हुई है; जिसने अपने आपको पूरा पढ़वा लिया है। अद्भुत कथारस है डॉ. श्याम की कथा शैली में। संग्रह की दूसरी विशेषता इसकी सहजता व स्वाभाविकता है। कहानियों के चरित्र अपने वास्तविक रूप में प्रकट होते हैं। यह कहानियाँ हमारे आस-पास की कहानियाँ प्रतीत होती हैं। यह नारी विमर्श की सशक्त कहानियाँ हैं। सुपरिचित आलोचक डॉ. अल्पना मिश्र ने इस कथा संग्रह को हिन्दी कथा साहित्य परम्परा की अनूठी निधि बताया है। कहानियों का भाव पक्ष सहजता और उदात्तता लिए हुए है। कथाकार ने बहुत ही सहज और सरल भाषा शैली में भारतीय जीवन दर्शन के गूढ़ रहस्यों की अभिव्यक्ति की है। उन्होंने संग्रह की रसभरी,खत, फूल पाती एवं थप्पड़ कहानियों पर विस्तार से चर्चा की। डॉ. नीलम रानी ने अपनी विवेचना में इसे नारी विमर्श की सशक्त कृति बताया। डॉ. श्याम की कहानियों के नारी चरित्र यथार्थपरक तो हैं ही, सामाजिक सरोकारों से भी लबरेज़ हैं। पुरुष चरित्रों की अपेक्षा नारी चरित्र अधिक परिपक्व एवं यथार्थ भाव भूमि पर खड़े प्रतीत होते हैं। डॉ. विवेक मिश्र ने बताया कि पुरुष पात्रों के दगाबाज़ चरित्र के कारण कहीं-कहीं स्वाभाविक प्रेम की अभिव्यंजना बाधित हुई है, लेकिन समग्रत: यह एक पठनीय व संग्रहणीय कथा कृति है। विषय प्रवर्तन करते हुए युवा कथाकार डॉ. अजय नावरिया ने कथा संग्रह की विलक्षणताओं को रेखांकित करते हुए चर्चा-परिचर्चा को एक दिशा प्रदान की। सूत्र वाक्य के रूप में कहा जाय तो सभी सात वक्ताओं ने इस संग्रह की पठनीयता, रोचकता एवं सम्प्रेषणनीयता की समेवत स्वर में प्रशंसा की।

-डॉ. अजय नावरिया

अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान कथाकार पंकज सुबीर को

कथा (यू के) के अध्यक्ष श्री कैलाश बुधवार ने बताया कि वर्ष २०१३ के लिए अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान कथाकार श्री पंकज सुबीर को उनके सामयिक प्रकाशन से २०१२ में प्रकाशित कहानी संग्रह महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ पर देने का निर्णय लिया गया है। इंदु शर्मा मेमोरियल ट्रस्ट की स्थापना संभावनाशील कथा लेखिका एवं कवयित्री इंदु शर्मा की स्मृति में की गयी थी। यह सम्मान श्री पंकज सुबीर को लंदन के हाउस ऑफ कॉमन्स में अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में एक भव्य आयोजन में प्रदान किया जायेगा। सम्मानित कृति के अतिरिक्त पंकज का एक कहानी संग्रह ईस्ट इंडिया कम्पनी और एक उपन्यास ये वो सहर तो नहीं प्रकाशित हो चुके हैं। पंकज सुबीर को बहुत से पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हो चुके हैं जिनमें उपन्यास ये वो सहर तो नहीं के लिए भारतीय ज्ञानपीठ नवलेखन पुरस्कार, इंडिपेंडेंट मीडिया सोसायटी (पाखी पत्रिका) द्वारा शब्द साधक जनप्रिय सम्मान, तथा वागीश्वरी पुरस्कार हैं।

वर्ष २०१३ के लिए पद्मानन्द साहित्य सम्मान बर्मिंघम के डा. कृष्ण कन्हैया को उनके कविता संग्रह किताब ज़िन्दगी की (२०१२-वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली) के लिए दिया जा रहा है। उनकी प्रकाशित रचनाओं में सूरज की सोलह किरणें, कविता-२००७ (कविता संग्रह),शामिल हैं।

-तेजेन्द्र शर्मा

तेजेन्द्र शर्मा को प्रवासी भारतीय हिन्दी भूषण सम्मान

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने वर्ष 2012 के लिये ब्रिटेन के कहानीकार तेजेन्द्र शर्मा को 'प्रवासी भारतीय हिन्दी भूषण सम्मान' प्रदान किया। उनका पुरस्कार उनकी बेटी दीप्ति शर्मा ने लखनऊ में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री अखिलेश यादव से ग्रहण किया। इस पुरस्कार के तहत मानपत्र के साथ दो लाख रुपये का चैक दिया गया।

इस सदी में युवा वर्ग नए तेवरों के साथ उभरा

'वायटूके' के शोर के बाद इक्कसवीं सदी के आगमन के साथ ही वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर पर हमला हुआ; जिससे विश्व में आतंकवाद का भय व्याप्त हो गया। तकनीकी उन्नति और वैश्वीकरण ने बाज़ारवाद, आतंकवाद और भौतिकवाद को बढ़ावा दिया। पूरे विश्व में मल्टीनेशनल कम्पनियों के विस्तार के साथ ही उपभोक्तावादी संस्कृति फैलने लगी। इस संस्कृति ने स्वदेश में परम्पराओं और संस्कारों तक को हिला कर रख दिया। ऐसे में सामाजिक उथल-पुथल होना स्वाभाविक था। पुरातन तथा नए जीवन मूल्यों के अंतर्द्वंद्वों तथा संघर्षों का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। इस सदी में युवा वर्ग नए तेवरों के साथ उभरा। पुरानी मान्यताएँ ढहीं और नए विचारों ने कथा साहित्य में नई भूमि तलाशी।

अंतरजाल के विस्तार और फैलाव ने लिखने वालों को एक ऐसा मंच दिया; जिससे कई छुपी हुई प्रतिभाएँ सामने आईं। बहुत से रचनाकार जिन्हें पत्रिकाओं में स्थान नहीं मिल पा रहा था, अपने ब्लॉग्स के माध्यम से अपनी बात कहने लगे। हिन्दी नेस्ट, अभिव्यक्ति-अनुभूति, वेब दुनिया, साहित्य कुंज वेब पत्रिकाओं ने स्वदेश के लेखकों के साथ-साथ बाहर के लेखकों को भी स्थान दिया।

इसी समय विदेशों में बहुत से कथा लेखक सामने आए। मुख्य धारा में अपना स्थान बनाए कई लेखक अभिव्यक्ति-अनुभूति की देन हैं। पूर्णिमा जी ने उन्हें खूब छापा; जब तक उनके प्रशंसकों में उनकी पहचान नहीं बन गई। पराई धरती, पराए लोगों से सामंजस्य स्थापित कर, देश-परिवेश को स्वीकृत कर, वर्षों से भीतर पड़ा मलाल, अपने से बिछुड़ने का दर्द, नए वातावरण की चुनौतियाँ, विद्रूपताएँ और विसंगतियाँ यहाँ के लेखकों की कलम पर आ बैठीं। देश-विदेश के कथा साहित्य से हिन्दी साहित्य समृद्ध होने लगा।

डॉ. अंजना संधीर ने उन्हीं दिनों अमेरिका के ४४ कथाकारों की कहानियों का एक संकलन और गुलशन मधुर तथा धनञ्जय कुमार ने पहले देशांतर फिर कथान्तर कथा संकलन निकाला। यूके से कथा यूके ने भी इस दिशा में काफ़ी काम किया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत से इतर देशों से लेखकों की एक जमात पाठकों के सामने आई। इन लेखकों ने अपने नए भावबोध, सरोकारों, संवेदनाओं, बेचैनी और कथ्यों के साथ हिन्दी साहित्य के द्वार पर दस्तक दी।

कोष्ठकों और विमर्शों में बँटे होने के कारण हिन्दी साहित्य के मठाधीशों और आलोचकों ने इन लेखकों की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया, पर इनके लेखन की भिन्नता ही इन्हें स्थान दिलवा रही है और दिलवाएगी। पारखी बैठे हैं पाठक तथा समय है इन्हें तराशने वाला। मतों और विचारधाराओं की दौड़ दौड़ते हुए हिन्दी साहित्य के कर्ता-धर्ता कभी तो रुकेंगे, कभी तो ठहरेंगे और कभी तो सोचेंगे कि विश्व में लिखा जा रहा हिन्दी साहित्य उनका अपना अंग है। साथियो, हक़ तो देना पड़ेगा। वैश्वीकरण के इस युग में वह दिन दूर नहीं.....।

बस इतना ही कहूँगी कि इस पन्ने तक आते-आते आपने हिन्दी चेतना का पूरा अंक देख लिया होगा; जिसे पंकज सुबीर ने बहुत परिश्रम से तैयार कर सजाया सँवारा है। अंक कैसा लगा, आपकी प्रतिक्रियाओं और विचारों की प्रतीक्षा रहेगी।

उन सभी लेखकों और आलोचकों का हार्दिक आभार, जिन्होंने अपने कीमती समय से कटौती कर इस अंक के लिए सामग्री भेजी और इस अंक को गरिमा प्रदान की।

आपकी मित्र
सुधा ओम ढींगरा

रचनाकार भी कुम्हार की ही तरह होता है। कुम्हार माटी के दीये बनाता है जो अंधकार से लड़ते हैं और प्रकाश फैलाते हैं। रचनाकार रचनाएँ लिखता है, ये रचनाएँ भी समाज में फैली बुराइयों के अंधकार से लड़ती हैं और ज्ञान का प्रकाश फैलाती हैं। अंधकार से लड़ना दीपक और रचना दोनों का दायित्व है।